



सम्पादक

‘कुल-भूषण’ श्री रमादत्त शुक्ल
श्री ऋतशील शर्मा

सुखार्थी
आमुष्मन्प्रवर्षी सुखस्य



भगवती भुवनेश्वरी

देवों द्वारा देवत्व-प्राप्ति के लिए,
सिद्धों द्वारा आकाश-गति के लिए
और
पन्नग, राक्षस, मर्त्य, मुनि
एवं
मोक्षार्थियों, धर्मार्थियों, अर्थार्थियों
द्वारा
यह परा-शक्ति पूजी गई है ।

जो मन्त्रार्थ-ज्ञाता,
सभी कामनाओं
और
आर्थिक सिद्धि देनेवाली,
भुवनेश्वरी विद्या
का
सर्वदा चिन्तन करता है,
उसके हाथ में
निरन्तर सब सिद्धियाँ विराजती हैं,
इसमें सन्देह नहीं !



1944

ST-77

‘चण्डी’ : वर्ष ४८ : चौथा विशेषाङ्क



सार्थ

श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य



०३३१, जिला ०१ : ०६१ ३४०९, ताम्रगोठ, मुम्बई

०३ ४४ ताम्रगोठ, ताम्रगोठ ००-४४, ताम्रगोठ

सम्पादक

‘कुल-भूषण’ रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

श्री ऋतशील शर्मा, एम० ए०



पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

शाक्त साधना पीठ

प्रयाग-६

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग,

प्रयाग-२११००६



श्री

पञ्चम-विष्णुर्नन्दन

प्रथम संस्करण

फाल्गुन पूर्णिमा, २०४६ वि० : १० मार्च, १९६०

मूल्य ₹१-०० रु०/सजिल्द मूल्य ₹५ रु०

कल्याण

०१ ०२१, लक्षण लक्षण 'पञ्चम-नन्दन'

०१ ०२१, लक्षण लक्षण 'पञ्चम-नन्दन'



मुद्रक

परा वाणी प्रेस

अलोपीबाग मार्ग,

प्रयाग-२११००६

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

पञ्चम-विष्णुर्नन्दन

१० मार्च १९६०

अनुक्रमणिका

परिचय	(पांच)
दो शब्द	(सात)
प्रथम पटल (एकाक्षरी विद्या)	१
द्वितीय पटल (चतुर्दश मन्त्र-भेद)	६
तृतीय पटल (एकाक्षरी से षोडशाक्षरी विद्या)	११
चतुर्थ पटल (तत्त्व-विद्या)	१८
पञ्चम पटल (पूजा-पटल)	२२
षष्ठ पटल (पूजा-विधि तथा न्यासादि)	३३
सप्तम पटल (कवच)	१६१
अष्टम पटल (मन्त्र-नाम-सहस्र)	१६६
नवम पटल (स्तोत्र)	१७६
दशम पटल (मन्त्र-साधन, शापोद्धार)	१७५
एकादश पटल (विश्व-विद्या)	१७८
द्वादश पटल (दीक्षा-विधि)	१८१
त्रयोदश पटल (पुरश्चरण-विधि)	१८६

चतुर्दश पटल (होम-विधि)	१६५
पञ्च-दश पटल (चक्र-पूजा)	२००
षोडश पटल (दक्षिणाचार, वामाचार)	२०५
सप्त-दश पटल (सामयिक पूजा, ग्रहण-पूजा)	२०८
अष्टादश पटल (चन्द्र-ग्रहण-पूजा)	२१२
एकोनविंश पटल (भूकम्प-पूजा)	२१६
विंश पटल (संक्रान्ति पूजन)	२२०
एक-विंश पटल (शक्ति-पूजन)	२२२
द्वा-विंश पटल (कुमारी-पूजन)	२२६
परिशिष्ट	२२६



परिचय

“श्रीभुवनेश्वरी रहस्य” का ‘प्रथम पटल’ ‘एकाक्षरी-विद्या’ (ह्रीं) नामक पटल है। यह देवी का प्रधान मन्त्र है। कारण ‘श्रीमद्-देवी-भागवत’ में देवी स्व-मुखारविन्द से कहती है कि—‘माया - बीजं हि मन्त्रो मे मुख्यः प्रिय-करस्तथा ।’

अर्थात् माया-बीज (ह्रीं) ही मेरा मुख्य एवं प्रिय-कर मन्त्र है।

‘एकाक्षरी-विद्या’ से ही अखिल मन्त्रों की उपासना का फल प्राप्त होता है, इसका प्रमाण पतञ्जलि-कृत ‘महा - भाष्य’ में भी उपलब्ध है, यथा—

‘एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः,
स्वर्गं लोके च काम - धृग् भवति ।’

अर्थात् अच्छी तरह जान लिया गया और समाचीन भाव से प्रयोग किया गया, एक ही शब्द स्वर्ग और मर्त्य दोनों लोकों में कामनाओं को देनेवाला होता है। इसलिए ‘ह्रीं’-कार शब्दात्मिका ‘एकाक्षरी विद्या’ ही सम्पूर्ण विद्योपासना - जनित फलों को देने में समर्थ है।

‘द्वितीय पटल’ में भगवती भुवनेश्वरी के चौदह भेदों का वर्णन है। जिस प्रकार चौदह भुवन हैं, वैसे ही भगवती भुवनेश्वरी के चौदह भेद हैं और उन्हीं का इस पटल में प्रतिपादन है।

‘तृतीय पटल’ में किस तिथि में कौन से नियम के साथ कौन से मन्त्र को जपने से सिद्धि प्राप्त होती है, इसी का वर्णन है। प्रथमा से लेकर पूर्णिमा तक सम्पूर्ण तिथियों में मन्त्र जपने के नियम और संक्रान्ति में मन्त्र-जप करने की विधि इस पटल में भैरव ने भवानी को बताया है।

(पाँच)

‘चतुर्थ पटल’ में ‘तत्त्व - विद्या’ का वर्णन है, जिसके जपने से जीवन में किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता। इस ‘तत्त्व - विद्या’ को ‘वृश्च - दशाक्षरी - विद्या’ भी कहते हैं तथा इसके जप में शापोद्धार, कीलक आदि की आवश्यकता नहीं होती।

‘पञ्चम पटल’ में श्रीभुवनेश्वरी का पूजन प्रकार वर्णित है।

‘षष्ठ पटल’ में साधक द्वारा पालनीय नियम और भू-शुद्धि, भूतोत्सारण, भूत-शुद्धि, प्राणायाम तथा सम्पूर्ण न्यासों के साथ पूजन की विशद विधि आदि बताई गई है।

‘सप्तम पटल’ में ‘भुवनेश्वरी कवच’, ‘अष्टम पटल’ में ‘भुवनेश्वरी मन्त्र सहस्र-नाम’ और ‘नवम पटल’ में ‘तत्त्व - विद्या - स्तोत्र’ प्रकाशित है।

‘दशम पटल’ में ‘उत्कीलन-क्रम’, ‘एकादश पटल’ में ‘ईश्वर-मन्त्र’, ‘द्वादश पटल’ में ‘दीक्षा की विधि’, ‘त्रयोदश पटल’ में ‘पुरश्चरण-विधि’ और ‘चतुर्दश पटल’ में ‘होम की विधि’ वर्णित है।

‘पञ्च-दश पटल’ में ‘चक्र-पूजा-विधि’, ‘षोडश पटल’ में ‘आचार-विधि’, ‘सप्त-दश पटल’ में ‘सूर्य-ग्रहण में पूजा करने की विधि’ और ‘अष्टादश पटल’ में ‘चन्द्र-ग्रहण-कालीन पूजन-प्रकार’ वर्णित है।

‘एकोन-विंश पटल’ में ‘भूकम्प में किस प्रकार पूजन करना चाहिए’, इसका स्पष्टीकरण है।

‘विंश पटल’ में ‘संक्रान्ति में पूजन-कर्तव्य’ किस प्रकार है, इसका स्पष्टीकरण किया गया है।

‘एक-विंश पटल’ में ‘शक्ति-पूजन’ और ‘द्वा-विंश पटल’ में ‘शरत्-कालीन नव-रात्रि में कुमारी - पूजन’ किस विधि से करना चाहिए, इसका वर्णन है।



दे शब्द

महर्षि वेद-व्यास ने 'श्रीमद्-देवी-भागवत' में भगवतो भुवनेश्वरी के चरित का चित्रण विशद रूप से किया है। इस वर्णन से यह ज्ञात होता है कि जब पृथ्वी जल-मग्न हो गई, तो संसार की रचना करने के लिए भगवती ने ही 'ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर' को प्रेरित किया और उन्हें अपना अद्भुत चमत्कार भी दिखाया।

'ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर' त्रि-देव अपने मन में यह समझ बैठे थे कि सृष्टि, स्थिति और संहार के कार्यों पर उन्हीं का अधिकार है, किन्तु देवी द्वारा 'सृष्टि-पूर्व' जल-मग्न लोकों का यथा-पूर्व दर्शन कराए जाने पर वे चमत्कृत हो उठे। देखिए 'देवी-भागवत', स्कन्ध ३, अध्याय ३, श्लोक ३१।

उस समय त्रि-देवों ने भगवती भुवनेश्वरी के जिस अपूर्व रूप का दर्शन किया, उसका वर्णन वेद-व्यास ने वहाँ निम्न प्रकार से किया है—

रक्त - माल्याम्बर - धरा, रक्त-गन्धानुलेपना ।
सुरक्त-नयना - कान्ता, विद्युत्-कोटि-सम-प्रभा ॥
सु-चारु - वदना रक्त - दन्तच्छद - विराजिता ।
रमा-कोट्यधिका कान्त्या, सूर्य-बिम्ब-निभाखिला ॥
पाशांकुश - वराभीष्ट - धरा श्रीभुवनेश्वरी ।
अदृष्ट-पूर्वा दृष्टा सा, सुन्दरी स्मित - भूषणा ॥

[सात]

अर्थात् रक्त - पुष्प की माला धारण किए हुई, रक्त-चन्दन लगाए हुई, लाल आँखोंवाली, करोड़ों बिजली की कान्ति के समान प्रभावाली, सुन्दर मुखारविन्दवाली, लाल दन्त-पंक्ति से सुशोभिता, करोड़ों लक्ष्मी की कान्ति से भी अधिक कान्तिवाली, सूर्य - बिम्ब के समान प्रदीप्ता, वर-अंकुश-पाश और अभय को धारण करनेवाली, मन्द-मुस्कान-वाली, अपूर्व परमा सुन्दरी देवी भुवनेश्वरी को देखकर 'ब्रह्मा-विष्णु-महेश' चकित हो गए, क्योंकि वैसा विलक्षण स्वरूप उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था ।

प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं विलक्षण स्वरूपवाली भगवती भुवनेश्वरी की पूजा-विधि, मन्त्र-भेद, कवच, नाम-साहस्र स्तोत्रादि, मन्त्र-साधना आदि रहस्य-पूर्ण विषयों पर सरल हिन्दी-अर्थ-सहित विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

हमें विश्वास है कि पुस्तक-रूपी इस विवेचन से भगवती-भक्तों का विशेष उपकार होगा ।

—सम्पादक

प्रयाग,
फाल्गुन पूर्णिमा, २०४६
१० मार्च, १९६०



[आठ]



* श्रीपर-देवतायै नमः *

सार्थ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य

प्रथमः पटलः



ॐ चिद्-रूपं यद्-रूपं शून्यं स्वरूपम्,

रूपै रूप्यं योगिभिः सर्व-संस्थम् ।

जीयाच्छम्भोस्त्रैपुराख्यं

महः,

तन्नासन्नो सत्-सन्न स चित्र-चित्रम् ॥१॥

चित्-रूप, शून्य-स्वरूप, आत्म-रूप आदि, जिसे योगी सर्वत्र देखते हैं, वह भगवान् शम्भु का त्रिपुर-रूपो प्रकाश है, जिसे न तो सत् कह सकते हैं, न असत् और न ही सदसत् । वह स्थायी है ॥१॥

श्रीशैल-राज-शिखरे नाना-द्रुम-लताकुले ।

वसन्त - लक्ष्मी - निलये समासीनमुमा-पतिम् ॥२॥

एकदा देवमीशानं शशि - शेखरमीश्वरम् ।

उमाश्रितार्ध - वपुषं देव - दानव - सेवितम् ॥३॥

ध्यानासक्ताक्षि-त्रितयं जटा-जूट-लतारुणम् ।

भस्माङ्ग - राग - धवलं नारायण-नमस्कृतम् ॥४॥

ब्रह्मादि - देव-प्रणतं गन्धर्व - जन-वन्दितम् ।

यक्ष - राक्षस - नागेन्द्र-दैत्येन्द्र-कुल - पूजितम् ॥५॥

भैरवं भैरवाकारं गिरीशं परमेश्वरम् ।

उत्थाय नम्र-नता भूत्वा पर्यपृच्छत् पार्वती ॥६॥

जो अनेक प्रकार के वृक्षों से खचित और वसन्त-कालीन लक्ष्मी अर्थात् अनेक प्रकार के पुष्पों से सुसज्जित हिमाचल में विराजमान, अर्ध-नारीश्वर-रूप को धारण किये हुए, देव तथा दानवों से सुसेवित, तीन नेत्रवाले, जटा-जूट-रूपी लता से अरुणाभ एवं ध्यान-मग्न हैं और जिनका शरीर भस्मोद्धूलन से धवल-वर्ण हो रहा है तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता-गण जिनकी वन्दना कर रहे हैं, गन्धर्व-जन जिन्हें प्रणाम कर रहे हैं, यक्ष, राक्षस, नागेन्द्र और दैत्याधिराज के कुल जिनकी उपासना कर रहे हैं, जो भयङ्कर तथा भय को उत्पन्न करनेवाले शरीर को धारण किये हुए हैं, उन उमा-पति, ईशान, गिरीश, परमेश्वर आदि विशेषण-विशिष्ट शिवजी से पार्वतीजी उठकर अत्यन्त नम्र-भावापन्न होकर प्रश्न करती हैं ॥२-६॥

श्रीपार्वत्युवाच—

भगवन्, सर्व-लोकेश, सर्व - लोक - नमस्कृत !

गुणातीत, गणाध्यक्ष, भूतेश्वर, महेश्वर ॥७

सृजस्यवसि नित्यं त्वं, संहारस्यमितं जगत् ।

चराचरं महेशान ! श्रुतं सर्वं भवन्मुखात् ॥८

महेश ! श्रोतुमिच्छामि भुवनेशी-रहस्यकम् ।

वद शीघ्रं दयाम्भोधे ! यद्यहं प्रेयसी तव ॥९

श्रीपार्वती ने कहा—हे चतुर्दश-लोकेश्वर तथा लोक-मण्डल से नमस्कृत, निर्गुण, गणेश्वर, भूतेश्वर, महेश्वर भगवन् ! आप निरन्तर इस अपार जगत् का सृजन, पालन और संहार करते हैं । हे महेशान ! आपके मुख से सम्पूर्ण चर तथा अचर के विषय मैं सुन चुकी हूँ । अब मैं भुवनेश्वरी के रहस्य को सुनना चाहती हूँ ! हे दया-सागर ! यदि मैं आपकी प्रियतमा हूँ, तो शीघ्र बताइये ॥७-९॥

श्रीभैरव-उवाच—

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि रहस्यमिदमद्भुतम् ।

भुवनेश्याश्च सर्वस्वं सार - भूतं मम प्रिये ॥१०

श्री भैरव जी ने कहा—हे मेरी प्रिय भगवति ! भगवती भुवनेश्वरी का सर्वस्व, जो उसका यथार्थ सार है, ऐसे अद्भुत रहस्य को मैं कहता हूँ, सुनो ॥१०॥

लक्ष-वार-सहस्राणि वारिताऽसि पुनः पुनः ।
 स्त्री-स्वभावान् महा-देवि ! पुनस्त्वं परिपृच्छसि ॥११
 अद्य भक्त्या तव स्नेहाद् वक्ष्यामि परमाद्भुतम् ।
 भुवनेशी-रहस्याख्यं तन्त्र-राजं महेश्वरि ॥१२
 सर्वागमैक - मुकुटं सर्व - सार - मयं ध्रुवम् ।
 सर्व - मन्त्र - मयं दिव्यं सर्वैश्वर्य-फल - प्रदम् ॥१३
 एकाक्षरी या देवेशि ! भुवनेशी महेश्वरी ।
 हृदि लेखेव जागति प्राण-शक्तिरियं परा ॥१४
 हल्लेखा कथ्यते तस्मान् मायानुऽचिन्त्य वै भवत् ।
 अनया रहिताः सर्वे निर्जीवा मन्त्र-राशयः ॥१५
 अतस्तु सर्व - मन्त्राणामियमुद् - बोधिनी मता ।
 शृणुष्ववाहितो भूत्वा तामेकाक्षर - रूपिणीम् ॥१६

मैंने करोड़ों बार इसे पूछने से तुम्हें मना किया है, तथापि स्त्री-
 सुलभ स्वभाव से तुम पुनः पूछ रही हो । तुम्हारी भक्ति और स्नेह
 से आज मैं भुवनेश्वरी-रहस्य नामक तन्त्र-राज को कहता हूँ । हे
 प्रिये ! यह सम्पूर्ण आगमों का मुकुट और सबका सार, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों
 को देनेवाला, मन्त्रों से युक्त, दिव्य फलों का दाता है । भुवनेश्वरी
 की जो एकाक्षरी विद्या है, वह हृदय की लेखा के समान चैतन्य
 रहती है और यही परा-शक्ति तथा प्राण-शक्ति भी है । अतः माया-
 बीज होने से वह हल्लेखा कही जाती है । इस हल्लेखा (माया-बीज)
 के बिना सम्पूर्ण मन्त्र निर्जीव रहते हैं । यही एकाक्षरी विद्या सम्पूर्ण
 मन्त्रों को जाग्रत करनेवाली शक्ति है । हे महेश्वरि ! तुम एकाग्र-
 चित्त होकर उस एकाक्षरी विद्या को सुनो ॥११-१६॥

कथयामि महा-देवि ! भुवनेशीं महेश्वरि !
 माया-बीजं नाम - मध्ये, नमो मन्त्रान्तिमं वदेत् ॥१७
 एकाक्षरीयं वितता भुवने भुवनेश्वरी ।
 अनया सदृशी विद्या नास्त्यन्या ज्ञान-साधने ॥१८

नात्र चित्त - विशुद्धिर्वा नारि-मित्रारि-दूषणम् ।

न वा प्रयास - बाहुल्यं समया ससयादिकम् ॥१६

हे महादेवि ! मैं भुवनेश्वरी मन्त्र कहता हूँ । माया-बीज (ह्रीं), मध्य में नाम 'भुवनेश्वर्यै' व अन्त में 'नमः' कहे । चौदह भुवनों में यह एकाक्षरी विद्या विस्तृत है । इस विद्या के समान दूसरी कोई विद्या ज्ञान-साधन में समर्थ नहीं है । इसमें न तो चित्त-शुद्धि की आवश्यकता है, न अरि, मित्र, शत्रु आदि दोष ही हैं और न सामयिक सम्प्रदायों जैसे इसमें अधिक प्रयास ही वांछित हैं ॥१७-१६॥

देवैर्देवत्व - विधये सिद्धैः खेचर - सिद्धये ।

पन्नगैः राक्षसैर्मर्त्यैर्मुनिभिश्च मुमुक्षुभिः ॥२०

कामिभिर्धर्माभिश्चार्थ-लिप्सुभिः सेविता परा ।

न वसु-व्यय - बाहुल्यं काय-क्लेश - करं तथा ॥२१

देवों द्वारा देवत्व-प्राप्ति के लिये, सिद्धों द्वारा आकाश-गति के लिये और पन्नग, राक्षस, मर्त्य, मुनि एवं मोक्षार्थियों, धर्मार्थियों और अर्थार्थियों द्वारा यह परा-शक्ति पूजी गई है । इसकी उपासना में धन-व्यय की अधिकता और शारीरिक कष्ट नहीं है ॥२०-२१॥

य एनां चिन्तयेन् मन्त्री सर्व-कामार्थ-सिद्धिदाम् ।

तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्व - सिद्धिर्न संशयः ॥२२

गद्य - पद्य - मयी वाणी सभायां तस्य जायते ।

तस्य दर्शन - मात्रेण वादिनो निष्कृतादराः ॥२३

अग्नेः शैत्यं जल-स्तम्भं गति-स्तम्भं दिवस्वतः ।

दिवा-रात्रि-व्यत्ययं च वशी - कर्तुं क्षमो भवेत् ॥२४

सभी कामनाओं और आर्थिक सिद्धि देनेवाली इस विद्या का जो मन्त्रार्थ-ज्ञाता चिन्तन करता है, उसके हाथ में निरन्तर सब सिद्धियाँ विराजती हैं, इसमें सन्देह नहीं । सभा में उसकी गद्य-पद्य-मयी वाणी निकलती है और विवाद करनेवाले उसके दर्शन-मात्र से ही सम्मान-रहित हो जाते हैं । वह अग्नि को शीतल करने में, जल की गति और सूर्य की गति रोकने में, दिन को रात्रि में तथा रात्रि को दिन में परिणत करने में और वशीकरण में समर्थ हो जाता है ॥२२-२४॥

राजानोऽपि हि दासत्वं भजन्ते किं प्रयोजनाः ।

सर्वस्यैव जनस्येह वल्लभः कीर्ति - वर्द्धनः ॥२५

अन्ते च भजते देवी - गणत्वं दुर्लभं नरः ।

चन्द्र - सूर्य - समो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि ॥२६

शासक लोग भी उसके दास हो जाते हैं। अन्य की क्या बात ! वह इस संसार में सबका प्यारा होकर यशस्वी होता है और अन्त में दुर्लभ देवी-गण की पदवी को प्राप्त करता है। चन्द्र-सूर्य के समान तेजस्वी होकर वह दस सहस्र कल्पों तक स्वर्ग में रहता है। ॥२५-२६॥

न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् यो वेत्ति भुवनेश्वरीम् ।

अस्य मन्त्रस्य देवेशि ! ऋषिशक्तिरुदाहृतः ॥२७

छन्दश्च देव - देवेशि ! गायत्री देवता स्मृता ।

भुवनेशो महेशानि ! सुर - सङ्घ - निषेविता ॥२८

शिवो बीजं स्मृतं देवि ! ईकारः शक्तिरुच्यते ।

रकारः कीलकं देवि ! धर्म - कामार्थ - मुक्तये ॥२९

विनियोगो महा-देवि ! कीर्तितोप्यङ्ग-कल्पनाम् ।

षड् - दीर्घ - युक्त - बीजेन कुर्याच्च साधकोत्तमः ॥३०

जो भुवनेश्वरी को जानता है, उसके लिए संसार में कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं है। हे देवेशि ! इस मन्त्र के ऋषि शक्ति हैं, छन्द गायत्री है और देवता भुवनेश्वरी हैं, जिनकी सेवा सारा देव-मण्डल करता है। हे देवि ! 'ह' बीज है, 'ई' शक्ति है एवं 'र' कीलक है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये इसका विनियोग है। हे महा-देवि ! बीजाक्षर के छः दीर्घ स्वर-युक्त वर्णों से श्रेष्ठ साधक अङ्ग-कल्पना (कर-न्यास और अङ्ग-न्यास) करें ॥२७-३०॥

इदं रहस्यं परमं सर्व - तन्त्र - रहस्यकम् ।

नाभक्ताय प्रदातव्यं गोपनीयं स्व - योनि - वत् ॥३१

यह रहस्य तन्त्रों के सभी रहस्यों में श्रेष्ठ है। भक्ति-हीन व्यक्ति को न बताना चाहिये, अपितु सर्वथा गुप्त रखना चाहिए ॥३१॥

द्वितीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् ! सर्व - धर्मज्ञ ! सर्व - लोक - नमस्कृत !

तत्त्वं यद् भुवनेश्वर्यास्तत् वद त्वं जगत् - प्रभो ॥१॥

हे अखिल जगत् से नमस्कृत ! हे सभी धर्मों के ज्ञाता ! हे जगन्नाथ ! भुवनेश्वरी का जो तत्त्व है, उसे आप कहिये ॥१॥

श्रीभैरव उवाच—

चतुर्दशात्मिका विद्या भुवने भुवनेश्वरी ।

तस्या श्रीभुवनेश्वर्याः भेदा भुवि चतुर्दश ॥२॥

श्री भैरव बोले—हे लोकेश्वरि ! चतुर्दश भुवनों में भुवनेश्वरी चतुर्दशात्मिका हैं । पृथ्वी पर श्री भुवनेश्वरी के चौदह भेद हैं ॥२॥

रमार्ण समस्ताक्षरं काम - राजं,

तथा पञ्च-वर्णाङ्कितं नाम देव्याः ।

ततो ठ-द्वयं देवि ! मन्त्रावसाने,

स्मृतो भेद मन्त्रो मयाऽऽद्यो दशार्णः ॥३॥

हे देवि ! पहला भेद मुझे दशाक्षर मन्त्र स्मरण है—रमार्ण—(श्रीं), समस्ताक्षर (ह्रीं), काम-राज—(क्लीं) और देवी का पाँच वर्णोंवाला नाम (भुवनेश्वरी), उसके बाद मन्त्र के अन्त में दो ठकार (स्वाहा) = श्रीं ह्रीं क्लीं भुवनेश्वरी स्वाहा ॥३॥

तारं माया वाग्-भवं काम-राजं,

शक्तिर्मध्ये नाम पञ्चाक्षरीयम् ।

अन्ते दद्यान्नीरमेष स्मृतस्ते,

मन्त्रोद्धारो देवि ! भेदो द्वितीयः ॥४॥

द्वितीय भेद—तार—ॐ, माया—ह्रीं, वाग्भव—ऐं, काम-राज—क्लीं, शक्ति-बीज—सौं, नाम—‘भुवनेश्वरी’, अन्त में ‘स्वाहा’ = ॐ ह्रीं ऐं क्लीं सौं भुवनेश्वरी स्वाहा ॥४॥

व्यक्षं वाग्-भवः रमा-मद-शार्णम्,

शक्ति - शून्य - शरदूर्ध्व - मातृकाः ।

नाम ठ-द्वयमथो महेश्वरि,

भेद एष गदितस्तृतीयकः ॥५॥

तृतीय भेद—व्यक्ष—‘अ, उ, म्’—इन तीन अक्षरों से बना—ॐ, वाग्-भव—ऐं, रमा—श्रीं, मद (काम)—क्लीं, शार्ण (शक्ति)—सौं, शून्य—शरद्-ऊर्ध्व—मातृका—ह्रसौं, नाम—‘भुवनेश्वरी’, दो ठकार—स्वाहा=ॐ ऐं श्रीं क्लीं सौं ह्रसौं भुवनेश्वरी स्वाहा ॥५॥

तारार्णं सकला रमार्ण-मदनौ शक्तिस्तथा वाग्-भवम्,

तार-द्वन्द्वमथो रमार्ण-द्वितयं मध्येऽभिधां विन्यसेत् ।

अन्ते वाग्-भव-मन्मथौ शरदथो नीरं च भेदः स्मृतो,

मन्त्राणां भुवनेश्वरो - प्रिय-तरो दुर्गे ! चतुर्थो मया ॥६॥

चतुर्थ भेद—तारार्ण—ॐ, सकला—ह्रीं, रमार्ण—श्रीं, मदन—क्लीं, शक्ति—सौं, वाग्भव—ऐं, तार-द्वन्द्व—ॐ ॐ, रमार्ण-द्वितय—श्रीं श्रीं, मध्य में नाम—भुवनेश्वरी, अन्त में वाग्-भव—ऐं, मन्मथ—क्लीं, शरद्—सौं, नीर—स्वाहा=ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सौं ऐं ॐ ॐ श्रीं श्रीं भुवनेश्वरी ऐं क्लीं सौं स्वाहा ॥६॥

तारं लक्ष्मीर्मन्मथः शक्ति-बीजं,

माया-बीजं नाम-मध्ये शिवायाः ।

तारं कूर्चं त्रिष्ठकारं वनं च,

भेदः प्रोक्तः पञ्चमो विश्व - मातः ॥७॥

पञ्चम भेद—तार—ॐ, लक्ष्मी—श्रीं, मन्मथ—क्लीं, शक्ति-बीज—सौं, माया-बीज—ह्रीं, नाम—भुवनेश्वरी, तार—ॐ, कूर्च—ह्रं, तीन ठकार—ठः ठः ठः, वन—स्वाहा=ॐ श्रीं क्लीं सौं ह्रीं भुवनेश्वरी ॐ ह्रं ठः ठः स्वाहा ॥७॥

व्यक्षरं माया वाग् - भवं शक्तिः,

मन्मथं लक्ष्मीर्नाम च मध्ये ।

ठ - द्वयमन्ते पार्वति ! भेदः,

षष्ठो गोप्यो निगदित एषः ॥८॥

षष्ठम भेद-त्र्यक्षर-ॐ, माया-ह्रीं, वाग्-भव-ऐं, शक्ति-सौं,
मन्मथ-क्लीं, लक्ष्मी-श्रीं, नाम-भुवनेश्वरी, दो ठकार=ठः ठः या
स्वाहा=ॐ ह्रीं ऐं सौं क्लीं श्रीं भुवनेश्वरी ठः ठः (स्वाहा) ॥८॥

तारक - शक्तिर्मन्मथ - लक्ष्मीः,

वाग्-भव-माया-विगलित-कूर्चम् ।

नाम च मध्ये ठ - द्वयमन्ते,

भेदः प्रोक्तः सप्तम एषः ॥६॥

सप्तम भेद-तारक-ॐ, शक्ति-सौं, मन्मथ-क्लीं, लक्ष्मी-श्रीं,
वाग्-भव-ऐं, माया-ह्रीं, कूर्च-हूं, नाम-भुवनेश्वरी, ठ-द्वय-ठः ठः या
स्वाहा=ॐ सौं क्लीं श्रीं ऐं ह्रीं हूं भुवनेश्वरी ठः ठः (स्वाहा) ॥६॥

त्रासोत्तलसन् मदन वाग्भव शक्ति माया,

काली-त्रयं तट - युगं ह्यभिधा च मध्ये ।

काली ठकार - त्रितयं तुरगं वनं च,

भेदोऽष्टमो निगदितस्तव प्रीति-वृद्धयै ॥१०॥

अष्टम भेद-त्रास-ॐ, मदन-क्लीं, वाग्भव-ऐं, शक्ति-सौं, माया-
ह्रीं, काली-त्रय-क्रीं क्रीं क्रीं, तट-युग-हूं हूं, अभिधा (नाम)-भुवनेश्वरी,
काली-क्रीं, तीन ठकार-ठः ठः ठः, तुरग-फट्, वन-स्वाहा-ॐ क्लीं
ऐं सौं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं भुवनेश्वरी क्रीं ठः ठः ठः फट् स्वाहा ॥१०॥

त्रासो माया मन्मथं कूर्चं काली,

माया लक्ष्मीर्वाग्भवं शक्ति - कामाः ।

नामार्ण वै कूर्चं फट् नीरमन्ते,

भेदः प्रोक्तो नवमो गोपनीयः ॥११॥

नवम भेद-त्रास-ॐ, माया-ह्रीं, मन्मथ-क्लीं, कूर्च-हूं, काली-
क्रीं, माया-ह्रीं, लक्ष्मी-श्रीं, वाग्भव-ऐं, शक्ति-सौं, काम-क्लीं, नाम-
भुवनेश्वरी, कूर्च-हूं, फट्, नीर-स्वाहा=ॐ ह्रीं क्लीं हूं क्रीं ह्रीं श्रीं
ऐं सौं क्लीं भुवनेश्वरी हूं फट् स्वाहा ॥११॥

तारं मारं कमला सकला च, कूर्चं शून्यं शरदाख्यमीश्वरि !

तीरं नीरमवसानके मनोर्भेद एष गदितः दशमस्ते ॥१२॥

दशम भेद-तार-ॐ, मार-क्लीं, कमला-श्रीं, सकला-ह्रीं, कूर्च-हूं,
शून्य-शरद्-हसौं, आख्य-भुवनेश्वरी, तीर-हूं, नीर-स्वाहा = ॐ क्लीं
श्रीं ह्रीं हूं हसौं भुवनेश्वरी हूं स्वाहा ॥१२

व्यक्षं माया मार - लक्ष्मी तटं च,

काली-युग्-वाग्भवं वासना शक्ति-नाम ।

काली कूर्चं फट् हरं देवतायाः,

मन्त्रः प्रोक्तो देवि ! चैकादशोऽयम् ॥१३

एकादश भेद-व्यक्ष-ॐ, माया-ह्रीं, मार-क्लीं, लक्ष्मी-श्रीं, तट-
हूं, काली-युग्-क्लीं क्लीं, वाग्भव-ऐं, वासना (शक्ति)-सौं, नाम भुवने-
श्वरी, काली-क्लीं, कूर्च-हूं, फट्, हर-स्वाहा = ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं हूं
क्लीं क्लीं ऐं सौं भुवनेश्वरी क्लीं हूं फट् स्वाहा ॥१३

व्यक्षं वाग्भवं शरत् कमलार्णम्,

काम-नाम भुवनेश्वरी न्यसेत् ।

तार - कूर्चं हर - नीरकमन्ते,

भेद एष गदितस्तु द्वादशः ॥१४

द्वादश भेद-व्यक्ष-ॐ, वाग्भव-ऐं, शरत्-सौं, कमला-श्रीं, काम-
क्लीं, नाम-भुवनेश्वरी, तार-ॐ, कूर्च-हूं, हर-फट् नीर-स्वाहा =
ॐ ऐं सौं श्रीं क्लीं भुवनेश्वरी ॐ हूं फट् स्वाहा ।

ततः प्रणव-वाग्भवौ शरदनङ्ग-माया रमा,

वियद्-यत्-गता शरत् तट-युगं च मध्येऽभिधाम् ।

पुनः प्रणव - वाग्भवं हर-वने तव प्रीतये,

त्रयोदश-तमो मया निगदितस्तु भेदोत्तमः ॥१५

त्रयोदश भेद-प्रणव-ॐ, वाग्भव-ऐं, शरत्-सौं, अनङ्ग-क्लीं,
माया-ह्रीं, रमा-श्रीं, वियद्-यत्-हसौं, शरत्-सौं, तट-युग-हूं हूं,
अभिधा-भुवनेश्वरी, प्रणव-ॐ, वाग्भव-ऐं, हर-फट्, वन-स्वाहा =
ॐ ऐं सौं क्लीं ह्रीं श्रीं हसौं सौं हूं हूं भुवनेश्वरि ॐ ऐं फट्
स्वाहा ॥१५

तारं शरन्मदन वाग्भव काम - राजम्,

शक्तिर्वधूस्तट - रमा सकला च काली ।

मध्येऽभिधां प्रणव-कूर्चं हरं तथाऽयं,

भेदश्चतुर्दश - तमो गदितो भवान्याः ॥१६

चतुर्दश भेद-तार-ॐ, शरत्-सौः, मदन-क्लीं, वाग्भव-ऐं, काम-राज-क्लीं, शक्ति-सौः, वधू-स्त्रीं, तट-हूं, रमा-श्रीं, सकला-ह्रीं, काली-क्रीं, अभिधा-भुवनेश्वरी, प्रणव-ॐ, कूर्च-हूं, हर-फट् स्वाहा = ॐ सौः क्लीं ऐं क्लीं सौः स्त्रीं हूं श्रीं ह्रीं क्रीं भुवनेश्वरी ॐ हूं फट् स्वाहा ॥ १६

इति श्री भुवनेश्वर्याः सर्व - तन्त्रेषु गोपिताः ।

चतुर्दश मया भेदाः कथिताः परमेश्वरि ॥१७

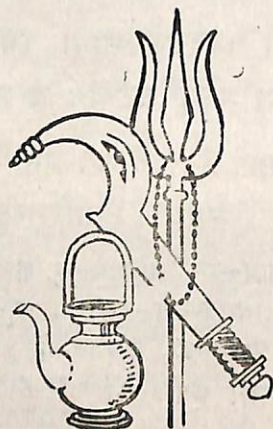
हे परमेश्वरि ! भुवनेश्वरी के ये चौदह भेद सभी तन्त्रों में गुप्त हैं, जो मैंने कहे हैं ॥१७

एतेषां देव-देवेशि ! ऋष्यादि पूर्व-वत् स्मृतम्,

इदं रहस्यं परमं भक्त्या तव मयोदितम्,

सर्वस्वं भुवनेश्वर्याः गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१८

हे देव-देवेशि ! इन मन्त्रों के ऋषि आदि पूर्व-वत् ही हैं । यह रहस्य मैंने तुम्हारी भक्ति से कहा है । श्री भुवनेश्वरी का यह रहस्य यत्न-पूर्वक गुप्त रखना चाहिए ॥१८॥



तृतीयः पटलः

श्रीभैरवोवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि भेदानन्यान्महेश्वरि !

एकादि-षोडशाणान् तान् सर्व-कामार्थ-सिद्धिदान् ।

प्रयोग-सहितान् देवि ! भुवनेशी-प्रियान् परम् ॥१॥

श्री भैरव बोले—हे देवि, महेश्वरि ! धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सभी की सिद्धि देनेवाले, भुवनेश्वरी के एकाक्षर से लेकर षोडशाक्षर तक के अन्य भेदों को मैं प्रयोग-सहित कहता हूँ, तुम सुनो ॥१॥

रवौ दर्श-दिने मन्त्री प्राङ्-मुखः साधकोत्तमः ।

एकाक्षरीं जपेद् विद्यां धर्म-कामार्थ-सिद्धये ॥२॥

मन्त्रज्ञ उत्तम साधक प्रतिपदा-तिथि-युक्त रविवार को पूर्वाभिमुख होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए एकाक्षरी विद्या का जप करे ॥२॥

हकारो वह्नि-संयुक्तो वाम-नेत्रेन्दु-संयुतः ।

ततोऽभिधां नमः प्रान्ते प्रोक्तेयमेक-वर्णिका ॥३॥

एकाक्षरी विद्या का यह उद्धार है । वह्नि-‘र’ से युक्त हकार-‘ह’ में वाम-नेत्र-‘ई’ और इन्दु-‘’, तब अभिधा (नाम)-‘भुवनेश्वरी’ और अन्त में ‘नमः’ लगाने से यह एकाक्षरी विद्या कही है=ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥३॥

आग्नेयाभि-मुखो भूत्वा चन्द्रे भद्रा-दिने शुभे ।

द्व्यक्षरीं साधको जप्त्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥४॥

साधक भद्रा-तिथि-युक्त सोमवार को आग्नेय कोण की ओर मुख करके दो अक्षरवाली विद्या का जप कर सभी कामनाओं को प्राप्त करता है ॥४॥

लक्ष्मीं मायां महा-देवि ! ततो नाम वदेत् ततः ।

नतिरियं महेशानि ! द्व्यक्षरी परि-कीर्तिता ॥५॥

लक्ष्मी-‘श्री’, माया-‘ह्रीं’, फिर नाम-‘भुवनेश्वरी’, तब नति-‘नमः’ । हे महेशानि ! यह दो अक्षरवाली कही गई है = श्रीं ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥५॥

दक्षिणाभि-मुखो भूत्वा भौमे जपाद्वि साधकः ।

व्यक्षरीं प्रजपेद् भक्त्या सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥६॥

मङ्गल के दिन दक्षिणाभिमुख होकर साधक भक्ति-पूर्वक व्यक्षरी का जप करे, तो सभी कामनाओं को प्राप्त करता है ॥६॥

तारं रमा काम - राजो डेऽन्तं नाम समुद्धरेत् ।

प्रान्ते नतिः समाख्याता व्यक्षरीयं महेश्वरि ॥७॥

तार-‘ॐ’, रमा-‘श्रीं’, काम-राज-‘क्लीं’, डेऽन्त नाम-‘भुवनेश्वर्यै’ और अन्त में ‘नमः’—यह व्यक्षरी प्रसिद्ध है = ॐ श्रीं क्लीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥७॥

नैऋत्याभि-मुखो भूत्वा चतुर्थ्या सौम्य-वासरे ।

चतुर्वर्णात्मिकां विद्यां जपेन्मन्त्री स्व-शक्तितः ॥८॥

चतुर्थी-तिथि-युक्त बुधवार को नैऋत्य कोण की ओर मुख कर चार अक्षरवाली विद्या का यथा-शक्ति जप करे ॥८॥

प्रणवं च तथा माया कमला मन्मथस्तथा ।

अन्ते विश्वं नाम मध्ये विदध्याच्च सुरेश्वरि ॥९॥

प्रणव-‘ॐ’, माया-‘ह्रीं’, कमला-‘श्रीं’, मन्मथ-‘क्लीं’, नाम-भुवनेश्वरी और अन्त में नमः = ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥९॥

पश्चिमाभि-मुखो भूत्वा पञ्चम्यां गुरु-वासरे ।

पञ्चाक्षरीं जपेन्मन्त्री कलावीप्सित-दायिनीम् ॥१०॥

साधक पञ्चमी-तिथि-युक्त गुरुवार को पश्चिम दिशा की ओर मुख कर कलियुग में अभीष्ट फल देनेवाली पञ्चाक्षरी का जप करे ॥१०॥

तारं लक्ष्मीं वाग्भवं कामो मायाभिधा तथा ।

डेन्ता नतिरियं प्रोक्ता देवि ! पञ्चाक्षरी मया ॥११॥

तार-‘ॐ’, लक्ष्मी-‘श्री’, वाग्भव-‘ऐं’, काम-‘क्लीं’, माया-‘ह्रीं’,
डेज्ता (चतुर्थ्यन्त) अभिधा (नाम)-‘भुवनेश्वर्यै’ और ‘नमः’=ॐ श्रीं
ऐं क्लीं ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥११॥

वायव्याभि-मुखो भूत्वा शुक्रे षष्ठ्यां सुरेश्वरि !

षष्ठाक्षरीं महा - विद्यां प्रजपेत् साधकोत्तमः ॥१२

षष्ठी-तिथि-युक्त शुक्रवार को वायव्य कोण की ओर मुख कर
उत्तम साधक षष्ठाक्षरी विद्या का जप करे ॥१२॥

तारं लक्ष्मीः परा कामो वाग्भवं शक्तिरेव च ।

अभिधा नति-संयुक्ता प्रोक्ता षष्ठाक्षरी परा ॥१३

तार-‘ॐ’, लक्ष्मी-‘श्री’, परा-‘ह्रीं’, काम-‘क्लीं’, वाग्भव-‘ऐं’,
शक्ति-‘सौः’ और अभिधा (नाम) से युक्त नति-‘नमः’ । यह श्रेष्ठ
षष्ठाक्षरी कही है = ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः भुवनेश्वर्यै नमः ॥१३॥

उत्तराभि-मुखो भूत्वा सप्तम्यां शनि-वासरे ।

सप्ताक्षरीमिमां विद्यां प्रजपेत् साधकोत्तमः ॥१४

सप्तमी-तिथि-युक्त शनिवार को उत्तर दिशा की ओर मुखकर
साधक इस सप्ताक्षरी विद्या का जप करे ॥१४॥

प्रणवं कमला माया कामो वाग्भव एव च ।

शक्तिर्मायाऽभिधा प्रान्ते नतिः सप्ताक्षरी मता ॥१५

प्रणव-‘ॐ’, कमला-‘श्री’, माया-‘ह्रीं’, काम-‘क्लीं’, वाग्भव-
‘ऐं’, शक्ति-‘सौः’, माया-‘ह्रीं’, अभिधा (नाम) और अन्त में ‘नमः’-
यह सप्ताक्षरी है = ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥१५॥

ईशानाभि-मुखो भूत्वा अष्टम्यां रवि-वासरे ।

अष्टाक्षरीं महा-विद्यां प्रजपेत् साधकोत्तमः ॥१६

रविवार को अष्टमी-तिथि में ईशान कोण की ओर मुख कर
उत्तम साधक अष्टाक्षरी महा-विद्या का जप करे ॥१६॥

तारं लक्ष्मीः परा कामो वाग्भव शक्तिरेव च ।

कामो मायाऽभिधा प्रान्ते नतिरष्टाक्षरी मता ॥१७

तार-‘ॐ’, लक्ष्मी-‘श्री’, परा-‘ह्री’, काम-‘क्ली’, वाग्भव-‘ऐ’, शक्ति-‘सौः’, काम-‘क्ली’, माया-‘ह्री’, अभिधा (नाम) और अन्त में नति-‘नमः’ । यह अष्टाक्षरी है = ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः क्लीं ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥१७॥

प्राङ्-मुखस्तु पुनर्भूत्वा नवम्यां चन्द्र-वासरे ।

देवीं नवाक्षरीं जप्त्वा लभते सिद्धिमुत्तमाम् ॥१८॥

पुनः सोमवार को नवमी-तिथि में पूर्व की ओर मुख कर साधक नवाक्षरी विद्या का जप कर उत्तम सिद्धि प्राप्त करता है ॥१८॥

तारं लक्ष्मीः परा कामो वाक्-कामो शक्तिरेव च ।

वाक्-छक्तिरभिधा विश्वं सम्प्रोक्त्यं नवाक्षरी ॥१९॥

तार-‘ॐ’, लक्ष्मी-‘श्री’, परा-‘ह्री’, काम-‘क्ली’, वाक्-‘ऐ’, काम-‘क्ली’, शक्ति-‘सौः’, वाक्-‘ऐ’, शक्ति-‘सौः’, भुवनेश्वरी का नाम, अन्त में ‘नमः’ । यह नवाक्षरी है = ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं क्लीं सौः ऐं सौः भुवनेश्वर्यै नमः ।

दशम्यामग्नि-कोणस्थो मङ्गले साधको जपेत् ।

दशाक्षरीं महा-विद्यां साक्षाद् ब्रह्म-स्वरूपिणीम् ॥२०॥

दशमी-तिथि-युक्त मङ्गल के दिन साधक आग्नेय कोण की ओर मुख कर साक्षाद्-ब्रह्म-स्वरूपिणी दशाक्षरी विद्या का जप करे ॥२०॥

प्रणवं सकला लक्ष्मीः कामो वाक्-छक्ति-कालिके ।

कूर्चं माया-द्वयं नाम विश्वं प्रोक्ता दशाक्षरी ॥२१॥

प्रणव-‘ॐ’, सकला-‘ह्री’, लक्ष्मी-‘श्री’, काम-‘क्ली’, वाक्-‘ऐ’, शक्ति-‘सौः’, कालिका-‘क्री’, कूर्च-‘हूं’, माया-द्वय-‘ह्रीं ह्रीं’ नाम-भुवनेश्वरी, विश्व-‘नमः’ । यह दशाक्षरी कही है = ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं सौः क्रीं हूं ह्रीं ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥२१॥

एकादश्यां बुध - दिने दक्षिणाभि - मुखो नरः ।

एकादशाक्षरीं विद्यां प्रजपेद् भक्ति - पूर्वकम् ॥२२॥

एकादशी-युक्त बुधवार को दक्षिण दिशा की ओर मुख कर मनुष्य भक्ति-पूर्वक एकादशाक्षरी विद्या का जप करे ॥२२॥

तारं माया रमा कामो वाक्-छक्ति-काम-वाग्भवाः ।

शक्तिर्माया कला नाम विश्वमेकादशाक्षरी ॥२३॥

तार-‘ॐ’, माया-‘ह्रीं’, रमा-‘श्रीं’, काम-‘क्लीं’, वाक्-‘ऐं’,
शक्ति-‘सौः’, काम-‘क्लीं’, वाग्भव-‘ऐं’, शक्ति-‘सौः’, माया-‘ह्रीं’
कला-‘ह्रीं’, नाम-भुवनेश्वरी, विश्व-‘नमः’-यह एकादशाक्षरी है =
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं सौः क्लीं ऐं सौः ह्रीं ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥२३॥

नैऋत्याभि-मुखो भूत्वा द्वादश्यां गुरु - वासरे ।

साधकः प्रजपेद् विद्यां द्वादशाक्षर - रूपिणीम् ॥२४॥

द्वादशी-युक्त गुरुवार को नैऋत्य दिशा की ओर मुख कर साधक
द्वादशाक्षरी विद्या का जप करे ॥२४॥

तार - द्वयं परा - युग्मं लक्ष्मी - युगलमेव च ।

काम - वाग्भव - शक्तयः सर्वं युगलमेव च ॥

नाम डेन्तं विश्वमन्ते प्रोक्तं द्वादशाक्षरी ।

सर्व-काम - प्रदा देवि ! सर्व - दुःख - निवारिणी ॥२५॥

तार-द्वय-‘ॐ ॐ’, परा-युग्म-‘ह्रीं ह्रीं’, लक्ष्मी-युगल-‘श्रीं श्रीं’,
काम-युगल-‘क्लीं क्लीं’, वाग्भव-‘ऐं ऐं’, शक्ति-युगल-‘सौः सौः’,
डेन्तःनाम-भुवनेश्वर्यै, अन्त में विश्व-‘नमः’ । यह द्वादशाक्षरी विद्या
कही है = ॐ ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं ऐं ऐं सौः सौः भुवनेश्वर्यै
नमः । हे देवि ! यह द्वादशाक्षरी विद्या सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाली
तथा समग्र दुःख-निवारिणी है ॥२५॥

पश्चिमाभि - मुखो भूत्वा त्रयोदश्यां कर्वेदिने ।

साधको देवतां ध्यात्वा जपेत् त्रयोदशाक्षरीम् ॥२६॥

शुक्रवार की त्रयोदशी के दिन पश्चिम दिशा की ओर मुख कर
साधक देवी का ध्यान कर त्रयोदशाक्षरी विद्या का जप करे ॥२६॥

प्रणवं शिव - वह्नी च द्वितीय - स्वर - संयुते,

बिन्दु-युक्ते कालिका च माया-श्री-वाक्-छरस्तथा ।

कामो रमा परा वाणी शक्तिः कामोऽभिधा ततः,

डेन्ता विश्वं समाख्याता कामो त्रयोदशाक्षरी ॥२७॥

प्रणव-ॐ, शिव (ह), वह्नि (र), द्वितीय-स्वर (आ), संयुते (ह्रा), विन्दु-युक्ते-ह्रां, कालिका-‘क्री’, माया-‘ह्रीं’, मा-‘श्रीं’, वाक्-‘ऐं’, शरत्-‘सौः’, काम-‘क्लीं’, रमा-‘श्रीं’, परा-‘ह्रीं’, वाणी-‘ऐं’, शक्ति-‘सौः’, काम-‘क्लीं’, अभिधा (नाम) डेऽन्ता-भुवनेश्वर्यै, विश्व-‘नमः’=ॐ ह्रां क्रीं ह्रीं श्रीं ऐं सौः क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं सौः क्लीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥२७॥

उत्तराभि-मुखो भूत्वा साधकः शनि - वासरे ।

चतुर्दशात्मिकां विद्यां जपेत् साधक - सिद्धिदाम् ॥२८

शनिवार चतुर्दशी तिथि के दिन साधक उत्तर दिशा की ओर मुख कर सिद्धि प्रदान करनेवाली चतुर्दशाक्षरी विद्या का जप करे ॥२८॥

तार-द्वयं काम - युग्मं शक्ति - द्वन्द्वं रमा-युग्मं,

वाग्-युगं शक्ति - युग्मं च माया - युग्मं तथैव च ।

नाम डेऽन्तं च विश्वं च प्रोक्ता चतुर्दशात्मिका ॥२९

तार-द्वय-‘ॐ ॐ’, काम-युग्म-‘क्लीं क्लीं’, शक्ति-द्वन्द्व-‘सौः सौः’, रमा-युग्म-‘श्रीं श्रीं’, वाग्-युग्म-‘ऐं ऐं’, शक्ति-युग्म-‘सौः सौः’, माया-युग्म-‘ह्रीं ह्रीं’, डेऽन्त नाम-भुवनेश्वर्यै, विश्व-नमः । यह चतुर्दशाक्षरी कही गई = ॐ ॐ क्लीं क्लीं सौः सौः श्रीं श्रीं ऐं ऐं सौः सौः ह्रीं ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥२९॥

अमायां पूर्णिमायां च जपेत् पञ्च - दशाक्षरीम् ।

ईशानाभि - मुखो भूत्वा रवि - वारे च साधकः ॥३०

अमावास्या और पूर्णिमा-युक्त रविवार को साधक ईशान-कोण की ओर मुख कर पञ्च-दशाक्षरी विद्या का जप करे ॥३०॥

तारं रमा प्रणवो लक्ष्मीर्माया वाक् कला तथा ।

वाणी-कामौ शक्ति-कामौ शक्तिः काली - युगं परा ।

नाम डेऽन्तं नमो देवि ! प्रोक्ता पञ्च - दशाक्षरी ॥३१

तार-ॐ, रमा-श्रीं, प्रणव-ॐ, लक्ष्मी-श्रीं, माया-ह्रीं, वाक्-ऐं, कला-ह्रीं, वाणी-ऐं, काम-क्लीं, शक्ति-सौः, काम-क्लीं, शक्ति-सौः, काली-युग्म-क्रीं क्रीं, परा-ह्रीं, डेऽन्त नाम-भुवनेश्वर्यै, नमो-नमः ।

हे देवि ! यह पञ्च-दशाक्षरी कही गई = ॐ श्रीं ॐ श्रीं ह्रीं ऐं
ह्रीं ऐं क्लीं सौं : क्लीं सौं : क्रीं क्रीं ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥३१॥

विद्यां यो जपते भूमाविमं च षोडशात्मिकाम् ।

तस्य देवि ! कलौ देवी स्व - पदं भुवि दास्यति ॥३२

हे देवि ! इस षोडशाक्षरी विद्या को कलि-काल में जो जपता है,
उसे भगवतो इस भू-लोक में अपना पद देंगी ॥३२॥

प्रणवं सकला लक्ष्मी - मारौ वाग्भव - शक्तिके ।

प्रासादः प्रणवश्चैव प्रासाद-शक्ति-वाग्भवाः ॥

कामो मा सकला तारं माया नाम नतिस्तथा ।

महा - देवि ! गुह्य - तरा प्रोक्त्यं षोडशाक्षरी ॥३३

प्रणव-ॐ, सकला-ह्रीं, लक्ष्मी-श्रीं, मार-क्लीं, वाग्भव-ऐं,
शक्ति-सौं, प्रासाद-ह्यौं, प्रणव-ॐ, प्रासाद-ह्यौं, शक्ति-सौं, वाग्भव-
ऐं, काम-क्लीं, मा-श्रीं, सकला-ह्रीं, तार-ॐ, माया-ह्रीं, नाम
भुवनेश्वरी, नति-नमः । हे महा-देवि ! यह बड़ी गुप्त षोडशाक्षरी
कही गई = ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं सौं : ह्यौं ॐ ह्यौं सौं : ऐं क्लीं श्रीं
ह्रीं ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः ॥३३॥

राज्यं देयं शिरो देयं न देया भुवनेश्वरी ।

भुक्ति-मुक्ति - प्रदा तस्य षोडशो भुवनेश्वरी ॥३४

राज्य देय है, शिर देय है, षोडशाक्षरी विद्या देने योग्य नहीं है ।
यह भुवनेश्वरी भोग-मोक्ष-दायिनी है ॥३४॥

इत्येवं पटलो देवि ! गुह्याद् गुह्य-तरो मतः ।

अभक्ताय न दातव्यो गोपनीयः स्व-योनि-वत् ॥३५

हे देवि ! यह पटल गुप्त से भी गुप्त है । जो भक्त न हो, उसे न
देना चाहिए और अपनी योनि के समान इसे छिपाना चाहिए ॥३५॥



चतुर्थः पटलः

श्रीदेव्युवाच-

देव - देव - महेशान ! दया - त्रैगुण्य - मानस !

श्रीदेव्या भुवनेश्वर्यास्तत्त्व - विद्यां ब्रवीषि मे ॥१॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देवाधिदेव ! हे त्रिगुणात्मक दयालु मनवाले, हे महेश्वर ! श्री भुवनेश्वरी देवी की तत्त्व-विद्या मुझे बतायें ॥१॥

श्रीभैरव उवाच-

तत्त्व - विद्यां ब्रवीम्यद्य तव भक्त्या वरानने !

कलावीप्सित - दात्रीयं न कस्य कथिता मया ॥२॥

हे वरानने ! मैं आज तुम्हारी भक्ति के कारण तत्त्व-विद्या बताता हूँ । कलियुग में मनोऽभिलषित कामना को प्रदान करनेवाली इस विद्या को मैंने किसी से नहीं कहा ॥२॥

एकाक्षरीति विख्याता भुवने भुवनेश्वरी ।

अत ऊर्ध्वं परं बीजं तत्त्व - रूपं न विद्यते ॥३॥

भुवन में यह एकाक्षरी भुवनेश्वरी प्रख्यात है । इससे श्रेष्ठ तत्त्व-रूपवाला बीज (मन्त्र) नहीं है ॥३॥

परन्तु तव भक्त्याऽद्य तत्त्व - विद्यां ब्रवीम्यहम् ।

परन्तु तुम्हारी भक्ति से आज मैं इस तत्त्व-विद्या को कहता हूँ ।

श्रुत्वा परस्मै नो वाच्या तत्त्व-विद्या सुरेश्वरि !

चेद् वदिष्यसि देवेशि ! न तत्-फलमवाप्स्यसि ॥४॥

हे सुरेश्वरि ! इस तत्त्व-विद्या को सुनकर किसी और को न बताये । यदि बता दिया, तो उसका फल न मिलेगा ॥४॥

चन्द्र - शक्तिः परा - बीजं तथैव तत्त्व-रूपिणी ।

माया - बीजं समुद्धृत्य सकलागम - निश्चिता ॥५॥

ततश्च साधको दद्यात् तथैव भुवनेश्वरि !

माया - बीजं समुद्धृत्य तत्त्व - विद्येयमाहता ॥६॥

चन्द्र-ऐं, शक्ति-सौं, परा-ह्रीं, तत्त्व-रूपिणी, माया-ह्रीं, भुवनेश्वरि,
माया-ह्रीं=ऐं सौं: ह्रीं तत्त्व-रूपिणी ह्रीं भुवनेश्वरि ह्रीं ॥५-६॥

अस्य श्रीभुवनेश्वर्यास्तत्त्व - विद्या - मनो स्मृतः ।

भैरवो ऋषिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितः ॥७

धीतत्त्व - रूपिणी देवी भुवनेशी प्रकीर्तिता ।

देवता चैव ह्रीं बीजं हूं शक्तिः समुदोरिता ॥८

ह्रः कीलकं महा - देवि ! प्रोक्तं च वीर-साधने ।

विनियोगः स्मृतो देवि ! तत्त्व-विद्या जपस्य वै ॥९

भुवनेश्वरी की इस तत्त्व-विद्या मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द अनु-
ष्टुप्, देवता श्रीतत्त्व-रूपिणी भुवनेशी देवी, बीज ह्रीं, शक्ति हूं,
कीलक ह्रः और विनियोग वीर-साधन में बताया गया है = ॐ अस्य
श्रीभुवनेश्वरी-तत्त्व-विद्या-मन्त्रस्यः भैरव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः,
श्री-तत्त्व-रूपिणी भुवनेश्वरी देवता, ह्रीं बीजं, हूं शक्तिः, ह्रः कीलकं,
वीर-साधने जपे विनियोगः ॥७-९॥

ह्यामित्यादि चरेन् न्यासं हृदयादि-षडङ्गकम् ।

अन्यां देवि ! प्रवक्ष्यामि तत्त्व - विद्यां महेश्वरि ॥१०

‘ह्रां’ इत्यादि से हृदयादि षडङ्ग-न्यास करे—

ह्रां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ह्रीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
हूं	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
ह्रं	अनामाभ्यां हुं	कवचाय हुं
ह्रौं	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ह्रः	करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

हे महेश्वरि ! दूसरी तत्त्व-विद्या बताता हूं ॥१०॥

दण्डिकेश्वर-शरत्-परास्ततो देवि ! नाम भुवनेश्वरी कृशा ।

तत्त्व-रूपिणि पराक्षरं शिवे ! तत्त्व-मूलकमनुस्तिथि-संख्यः ॥११

दण्डिकेश्वर-ह्रसौं, शरत्-सौं, परा-ह्रीं, नाम-भुवनेश्वरी,
कृशा-ह्रीं, तत्त्व-रूपिणि, पराक्षर-ह्रीं=ह्रसौं सौं: ह्रीं भुवनेश्वरी
ह्रीं तत्त्व-रूपिणि ह्रीं ॥११॥

अस्याः ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वैः ज्ञातं सुरेश्वरैः ॥१२॥

इस विद्या का ध्यान कहता हूँ, जिसे सभी देवेश्वर जानते हैं ॥१२॥

ध्यानम्—स्मरेद् रवीन्द्रग्नि-विलोचनां ताम्,

सत्-पुस्तकं जाप्य-वर्णं दधानाम् ।

सिंहासनां मध्यम-पत्र - संस्थाम्,

श्रीतत्त्व-विद्यां परमां भजामि ॥

सूर्य, चन्द्र और अग्नि जिनके नेत्र-स्वरूप हैं, पुस्तक और जप-माला लिये हुए सिंहासन के मध्य में बैठी हैं, उन परम तत्त्व-विद्या को स्मरण कर मैं उनकी उपासना करता हूँ ।

तत्त्व-विद्येयमाख्याता मया पञ्च-दशाक्षरी ।

राज्यं देयं शिरो देयं न देया भुवनेश्वरी ॥१३॥

यह पन्द्रह अक्षरों की तत्त्व-विद्या मैंने कही है । राज्य देय है, शिर भी देय है परन्तु भुवनेश्वरी की यह विद्या देय नहीं है ॥१३॥

अस्याः श्रीतत्त्व-विद्यायाः न विघ्नो न च दूषकः,

अन्या दोषा न विज्ञेया उत्कीलनादि-कर्मणाम् ।

बिना देवि महेशानि ! पुरश्चरण - कर्मणा ॥१४॥

पञ्च - दश च लक्षाणि सहस्राणि तथैव च ।

अस्याः श्रीतत्त्व - विद्यायाः पुरश्चरणमुच्यते ॥१५॥

नातः पर-तरा विद्याऽप्यन्या काऽस्ति मही-तले ।

विख्याता तत्त्व-विद्येयं प्रभाव-सहिता कलौ ॥१६॥

इस तत्त्व-विद्या में न कोई विघ्न है और न कोई दोष । हे देवि ! उत्कीलन आदि कर्मों के बिना इसका पुरश्चरण होता है ।

इस तत्त्व-विद्या का पुरश्चरण १५ लाख और १५ हजार जप से होता है ।

इस विद्या से श्रेष्ठ अन्य विद्या पृथ्वी में नहीं है । यह तत्त्व-विद्या कलियुग में प्रभाव को देनेवाली है ॥१४-१६॥

श्रीदेव्युवाच-

प्रीताऽस्मि भवता शम्भो ! विद्यायाः कथनेन च ।

धन्याऽस्मि कृत-कृत्याऽस्मि प्रसादात् तव शङ्कर ॥१७

श्रीदेवी बोलीं--हे शम्भो ! इस विद्या के कहने से मैं आपसे प्रसन्न हूँ । हे शङ्कर ! आपके प्रसाद से मैं धन्य और कृतार्थ हो गई हूँ ॥१७

श्रीभैरव उवाच-

इत्येषः पटलो देवि ! तत्त्व - विद्या - प्रकाशकः ।

न देयः कस्यचिद् देवि ! गोपनीयः प्रयत्नतः ॥१८

श्रीभैरव जी ने कहा--हे देवि ! यह पटल तत्त्व-विद्या का प्रकाशक है । इसे किसी को न देना चाहिए । यत्न-पूर्वक इसे गुप्त रखना चाहिये ॥१८



पंचमः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

देव - देव ! महा - देव ! यद्यहं प्रेयसी तव ।

पटलं भुवनेश्वर्याः पूजायाः मे प्रकाशय ॥१॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देवाधि-देव महादेव ! यदि मैं आपकी प्रियतमा हूँ, तो भुवनेश्वरी के पूजन का पटल मुझे बतायें ॥१॥

श्रीभैरवोवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देवि ! गुह्य-तमोत्तमः ।

येन विज्ञान - मात्रेण साधको भैरवो भवेत् ॥२॥

श्रीभैरव ने कहा—हे देवि ! अति उत्तम और गोपनीय कहूँगा, जिसके जानने मात्र से साधक भैरव बन जाता है ॥२॥

एकाक्षरी महा-विद्या श्रीविद्या भुवनेश्वरी ।

चतुर्दशात्मिका देवि ! तथा च षोडशात्मिका ॥३॥

तत्त्व-विद्यात्मिका देवि ! महा-रत्नेश्वरीति च ।

विद्येयं भुवनेश्वर्याः प्रभाव-सहिता कलौ ॥४॥

एकाक्षरी महा-विद्या, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी-विद्या, चतुर्दशात्मिका विद्या, षोडशात्मिका विद्या, तत्त्व-विद्या, महा-रत्नेश्वरी-विद्या—भुवनेश्वरी की ये विद्याएँ कलियुग में प्रभाव-शालिनी हैं ॥३-४॥

स्वर्ग - भोग-प्रदा चैव राज्य - भोग - प्रदा तथा ।

सकृदुच्चारिता विद्या ब्रह्म-हत्यां व्यपोहति ॥५॥

स्वर्ग-सुख और राज्य-सुख को देनेवाली इस विद्या का एक बार उच्चारण करने से ब्रह्म-हत्या जैसा पाप नष्ट करती है ॥५॥

सर्व-सौख्य-प्रदा देवि ! लोके सौभाग्य-दायिनी ।

अस्याः स्मरण-मात्रेण सिद्धयोऽष्टौ करे स्थिता ॥६॥

दुर्भगा सुभगा नूनं दुःखिता सुखिता भवेत् ।
 वन्ध्याऽपि लभते पुत्रं स्व-वंश-परिवर्द्धनम् ॥७
 निर्धनो धनमाप्नोति मूका वाचमवाप्नुयात् ।
 मूर्खोऽपि याति चैतन्यं सु-विद्यात्वमवाप्नुयात् ॥८
 यां यां प्रार्थयते सिद्धिं हठात् तां तां समाप्नुयात् ।
 देवि ! सिद्धिर्भवेत् पुंसां जरा - मरण - वर्जिता ॥९

हे देवि ! यह विद्या सभी सुखों को देनेवाली है तथा संसार में सौभाग्य-दात्री है। इस विद्या के स्मरण-मात्र से अष्ट-सिद्धियाँ कर-गत हो जाती हैं। अभागा भाग्य-वान् हो जाता है, दुःख में पड़ा हुआ सुखी हो जाता है, वन्ध्या भी वंश को बढ़ानेवाला पुत्र पाती है। निर्धन धन पाता है, मूंगा वाणी पा लेता है। मूर्ख भी अच्छी विद्या प्राप्त करता है। जिस-जिस सिद्धि की प्रार्थना की जाती है, उस-उस को साधक पा जाता है। हे देवि ! लोगों को वृद्धावस्था और मृत्यु से रहित सिद्धि मिलती है ॥६-९॥

विधानं च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि ! यथाक्रमम् ।

ब्राह्मे मुहूर्तेऽप्युत्थाय साधको भक्ति - संयुतः ।

प्रक्षाल्य पाणि-पादौ च स्वासनोपरि संविशेत् ॥१०

अब मैं इसका विधान क्रमानुसार कहता हूँ, सुनो-साधक ब्राह्म-मुहूर्त में शय्या त्याग कर हाथ-पैर धोकर भक्ति-पूर्वक अपने आसन पर बैठे ॥१०॥

स्व-शिरस्थं गुरुं शान्तं ध्यायेत् तन्नाम-पूर्वकम् ।

सप्रियां तन्मनुं जप्त्वा स्तुत्वा स्तोत्रेण वै तथा ॥११

तदाज्ञां शिरसा लब्ध्वा ध्यायेत् कुण्डलिनीं ततः ।

तामारोहावरोहेण क्रमेण परि - भाव्य च ॥१२

जप्त्वा स्व - मन्त्रे च ततो जपश्चैव बहिस्ततः ।

गच्छेन्मूलादिकं कृत्वा दन्त-धावनमाचरेत् ॥१३

नदी-तीरं ततो गत्वा स्नान-सन्ध्यादिकं चरेत् ।

गृहीत्वा जल - कुम्भं वै गृह-यागं समर्चयेत् ॥१४

अपने शिरस्थ प्रशान्त स-पत्नीक गुरु का नाम लेकर उनका ध्यान करे। उनके मन्त्र का जप कर स्तोत्र से उनकी वन्दना करे। तब उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर कुण्डलिनी का ध्यान करे। आरोह और अवरोह-क्रम से भावना करे। अपने इष्ट-मन्त्र का जप कर बाहर जाये और शौचादि कर दाँतों को स्वच्छ करे। तब नदी किनारे जाकर स्नान, सन्ध्या आदि करे। जल-पूर्ण कलश को लाकर घर का पूजन करे ॥११-१४॥

द्वारपालान् प्रविश्यान्तः स्वासनं शोधयेत् सुधीः ।

स्वीकृत्य संविदां कृत्वा भूतोपसरणं ततः ॥१५

प्राणायाम - त्रयं कुर्यात् साधको नन्दन - युतः ।

भूत-शुद्धिं ततः कृत्वा प्राणान् प्राण-विधिं ततः ॥१६

ततः ऋष्यादिकं कृत्वा मातृका-न्यासमाचरेत् ।

सारस्वतेन मार्गेण दशधा सर्व - सिद्धये ॥१७

मन्त्र-न्यासं ततः कुर्याद् देवता-भाव-सिद्धये—

द्वारपालों का पूजन कर पूजा-गृह में प्रवेश करे। आसन-शुद्धि कर संविदा (विजया) को ग्रहण कर भूतोत्सारण करे। आनन्द-मय होकर साधक पूरक-कुम्भक-रेचक इन तीन प्राणायामों को करे। तब भूत-शुद्धि कर प्राणों को संयत करे। तब ऋष्यादि-न्यास कर सारस्वत-मार्ग से दशधा मन्त्र-न्यास करे, जिससे देवता-भाव और सभी सिद्धियों की प्राप्ति हो ॥१५-१७॥

हृल्लेखां मूर्ध्नि वदने गगनां हृदयाम्बुजे ।

रक्तां करालिकां गुह्ये महोच्छ्रमां पद-द्वये ॥१८

ऊर्ध्वं प्राग् - दक्षिणोदीच्य-पश्चिमेषु मुखेषु च ।

सद्यादि-ह्रस्व-बीजाद्या न्यस्तव्या भूत-सप्रभाः ॥१९

अङ्गानि विन्यसेत् पश्चात् ज्ञाति-युक्तानि षट्-क्रमात् ।

ब्रह्माणं विन्यसेद् भाले गायत्र्या सह संयुतम् ॥२०

सावित्र्या सहितं विष्णुं कपोले दक्षिणे न्यसेत् ।

वागीश्वर्या समायुक्तं वाम-गण्डे महेश्वरम् ॥२१

श्रिया धनपति न्यसेत् वाम-नासाग्रके पुनः ।

रत्या स्मरं मुखे न्यस्य पुष्ट्या गण-पतिं न्यसेत् ॥२२

सव्य - कर्णोपरि निधी कर्ण - गण्डान्तरालयोः ।

न्यस्तव्यं वदने मूलं पुनश्चैतांस्तनौ न्यसेत् ॥२३

कण्ठ-मूले स्तन-द्वन्द्वे वामांसे हृदयाम्बुजे ।

सव्यांसे पार्श्व - युगले नाभि - देशे च देशिकः ॥२४

भालांस - पार्श्व - जठरे पार्श्वांस - परके हृदि ।

ब्रह्माण्याद्यास्तनौ न्यस्या विधिना प्रोक्त-लक्षणाः ॥२५

मूलेन व्यापकं देहे पीठ - न्यासं ततश्चरेत् ।

पुनश्च व्यापकं देहे न्यस्य देवीं विचिन्तयेत् ॥२६

हृल्लेखायै नमः मूर्ध्नि, गगनायै नमः हृदयाम्बुजे, रक्त-करालिकायै
नमः गुह्ये, महोच्छ्वासायै नमः पद-द्वये । इन्हीं चार मन्त्रों से क्रमशः
ऊपर, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम मुखों में न्यास करे ।

गायत्री-सहित ब्रह्मणे नमः भाले, सावित्र्या सह विष्णवे नमः
कपोले, वागीश्वरी-सहित महेश्वराय नमः दक्षिण-नासायां, श्री-
सहित-धनपतये नमः वाम-नासायां, रति-सहित काम-देवाय नमः
मुखे, गणपतये नमः नासिका-पुटे, सव्य-कर्णोपरि निधये नमः ।

इन्हीं मन्त्रों से गण्डान्तराल में, मुख में मूल-मन्त्र से, फिर गणपति
और निधि—इन दोनों से स्तन-द्वन्द्व में । वामांस, हृत्-कमल, सव्यांस,
उभय पार्श्व, नाभि-देश, कपाल, उदर और हृदय में ब्रह्माणी आदि
देवियों के नाम-मन्त्रों से न्यास करे ।

मूल-मन्त्र से सारे शरीर में व्यापक न्यास करे । तब पीठ-न्यास
कर अपने को देवी-रूप भावना करे ॥२०-२६
ततो ध्यायेद्, यथा—

उद्यदिन-द्युतिमिन्दु-किरीटां, तुङ्ग-कुचां नयन-त्रय-युक्ताम् ।

स्मेर-मुखीं वरदाकुश-पाशाऽभीति-करीं प्रभजे भुवनेशीम् ॥

प्रातःकालीन सूर्य की कान्ति के समान कान्ति-मती, मुकुट में
चन्द्रमा, उन्नत उरोज और तीन नेत्रोंवाली, मुख पर मुस्कान, हाथ

में वर, अंकुश, पाश और अभय धारण करनेवाली भुवनेश्वरी का मैं ध्यान करता हूँ ।

अन्यच्च—

सिन्दूराहण-विग्रहां त्रि-नयनां माणिक्य-मौलि-स्फुरत्—
तारा-नायक-शेखरां स्मित-मुखीमापीन-वक्षोरुहाम् ॥
पाणिभ्यामलि-पूर्ण-रत्न-चषकं सम्बिभ्रतीं शाश्वतीम् ।
सौम्यां रत्न-घटस्थ-मध्य-चरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ॥

शरीर सिन्दूर जैसा अरुण-वर्णवाला, तीन नेत्रोंवाली, मुकुट में माणिक्य, मस्तक पर चन्द्रमा, मुस्कान से युक्त मुख, पुष्ट उरोजोंवाली, दोनों हाथों में सुरा-पूर्ण रत्न-जटित पान-पात्र-धारिणी, सौम्य स्वरूपा, रत्न-जटित घटों के मध्य चरण रखे हुई पराम्बिका भुवनेश्वरी का मैं ध्यान करता हूँ ।

अन्यच्च—

श्यामाङ्गीं शशि-शेखरां निज-करैर्नीलं च रक्तोत्पलम् ।
रत्नाढ्य-चषकं गुणं भय-हरं सम्बिभ्रतीं शाश्वतीम् ॥
मुक्ता-हार-लसत्-पयोधर-नतां नेत्र-त्रयोल्लासिनीम् ।
वन्देऽहं सुर-पूजितां हर-वधूं रक्तारविन्द - स्थिताम् ॥

श्याम-वर्णा, मस्तक पर चन्द्रमा, अपने हाथों से रक्त-कमल, रत्न-जटित पान-पात्र, गुण और अभय-धारिणी, मुक्ता-हार से सुशोभिता, पयोधरों से भुकी हुई, तीन नेत्रों से शोभिता, देवताओं द्वारा सम्पूजिता, रक्त-कमल पर बैठी, शिव-वधू भगवती की मैं वन्दना करता हूँ ।

अन्यच्च—

उद्यच्चन्द्र - सहस्र - रश्मि - सदृशीं वल्लीन्दु-सूर्येक्षणाम्,
माद्य-सिन्धु-विघूर्णितेक्षण-युगां वीणा-रवत्याकुलाम् ।
माला-पुस्तक-सिन्धु-पात्र-कमलान् दोर्भिवहन्तीं मुदा,
ध्यायेऽहं भुवनेश्वरीं शव-गतां सर्वादि-देवैः स्तुताम् ॥

उदीयमान सहस्रों चन्द्रों की किरणों के समान कान्ति-मती, अग्नि-चन्द्र-सूर्य-रूपी नेत्र-त्रया, मधु के सागर जैसे चञ्चल नेत्रोंवाली, वीणा-ध्वनि में आसक्ता, माला, पुस्तक, पान-पात्र और कमल हाथों में

सानन्द धारण करनेवाली, शवासीना, सभी देवों से वन्दिता भुवनेश्वरी का मैं ध्यान करता हूँ ।

यद्वा—

सरोज-नयनां चलत्-कनक-कुण्डलां शैशवोम्,

धनुर्जय - वटो - करामुदित - सूर्य-कोटि-प्रभाम् ।

शशाङ्क-कृत-शेखरां शव-शरीर-संस्थां शिवाम्,

स्मरामि भुवनेश्वरीं विमुख-वाङ्-मुख-स्तम्भनीम् ॥

कमल-नेत्रा, स्वर्ण-ताटङ्क-धारिणी, तरुणी, हाथों में धनुष और जप-माला, उदय-कालीन कोटि सूर्यो जैसी कान्ति-मती, मस्तक पर चन्द्रमा, शवासना, शत्रु की वाणी और मुख को स्तम्भन करनेवाली भुवनेश्वरी को स्मरण करता हूँ ।

अपि च—

वीणा-वादन-तत्परां त्रि-नयनां त्रैलोक्य-रक्षा-पराम्,

माध्वी-पान-परायणां शव-गतां मन्द-स्मितां चिन्मयीम् ।

माया-बीज-विभूषितां शशि-कलां चूडां लसत्-कुण्डलाम्,

ध्यायेऽहं भुवनेश्वरीं भगवतीं शैवेन सम्पूजिताम् ॥

वीणा-वादन में तत्परा, तीन नेत्रोंवाली, त्रैलोक्य-रक्षा में लीन, माध्वी-पान-चतुरा, ईषद्-हास्य - मुखी, चित्-स्वरूपा, माया-बीज से समलंकृता, चन्द्र-कला और कुण्डल से शोभिता, शिव से सम्पूजिता, शवासना भगवती भुवनेश्वरी का मैं ध्यान करता हूँ ।

इति ध्यात्वा हृदम्भोजे देवीं श्रीभुवनेश्वरीम्,

मानसैरुपचारैश्च पूजयित्वा यथा-विधि ।

कृत्वाऽन्तर्यजनं देवि ! सामान्यार्घ्यं ततश्चरेत् ॥२७॥

इस प्रकार हृदय-कमल में देवी भुवनेश्वरी का ध्यान कर यथा-विधि मानसिक उपचारों से देवी भुवनेश्वरी का पूजन कर, अन्तर्यामि करके सामान्यार्घ्य की स्थापना करे ॥२७॥

घट - पूजादिकं कृत्वा यन्त्र - पूजां समाचरेत् ।

यन्त्रं मन्त्रं तथा पूजां गुप्तां गोप्य - तमां कुरु ॥२८॥

हे देवि ! घट का पूजन आदि कर यन्त्र की पूजा करे । यन्त्र, मन्त्र और गुप्त पूजा को अति गोपनीय रखना चाहिए ॥२८॥

यन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु देवि ! फल-प्रदम् ॥२६

त्रिकं षट्-कोणमुद्धृत्य नाग - पत्रं च षोडशम् ।

वृत्तं चतुर्द्वार - युतं यन्त्रोद्धारमिदं प्रिये ॥३०

हे देवि ! फल-दायक यन्त्रोद्धार बताता हूँ—त्रिकोण, षट्-कोण, अष्ट-दल, षोडश-दल, वृत्त, चतुर्द्वार—यही उद्धार है ॥२६-३०॥

अथवाऽन्य - प्रकारेण कथयामि स - विस्तरम्—

पद्ममष्ट - दलं बाह्ये पदम् षोडशभिर्दलैः ।

विलिखेत् कर्णिका-मध्ये षट्-कोणमति-सुन्दरम् ॥३१

अथवा दूसरे प्रकार से कहता हूँ—अष्ट-दल कमल के बाह्य षोडश-दलवाला कमल, कर्णिका के मध्य में षट्-कोण लिखे ॥३१॥

ततः सम्पूजयेत् पीठं नव-शक्ति-समन्वितम्—

जयाख्या विजया पश्चादजिता ह्यपराजिता ।

नित्या विलासिनी दोग्ध्री च धीरा मङ्गला नव ॥३२

‘सर्व-शक्ति’-पदं प्रोच्य डेऽन्तं च कमलासनम् ।

नमः इत्यासनं पूज्य तद् - बीजादिकं शिवे ॥३३

बीजाद्यमासनं दत्वा मूर्ति तेनैव कल्पयेत् ।

तस्यां सम्पूजयेद् देवीमावाह्यावरणः क्रमात् ॥३४

तब नव-शक्तियों से युक्त पीठ की पूजा करे—

१ ॐ ह्रीं जयायै नमः, २ विजयायै, ३ अजितायै, ४ अपराजितायै, ५ नित्यायै, ६ विलासिन्यै, ७ दोग्ध्र्यै, ८ धीरायै, ९ मङ्गलायै ।

‘ह्रीं सर्व-शक्ति-कमलासनाय नमः’ से आसन देकर बीज-मन्त्र से भगवती के स्वरूप का ध्यान कर यन्त्र में उनका आह्वान कर क्रमशः आवरण-पूजा करे ॥३२-३४॥

मध्यमात् प्राक्-याम-सौम्य-पश्चिमेषु यथा-क्रमम् ।

हृल्लेखाद्याः समभ्यर्च्याः पञ्च-भूत-सम - प्रभाः ॥३५

वर-पाशांकुशाभीति - धारिण्याः सित - भूषणाः ।

आग्नेयादिषु स्थानेषु पूजयेदङ्ग - देवताः ॥३६

त्रिकं सम्पूज्य षट्-कोणे यजेन् मिथुन-देवताः—

मध्यम से लेकर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा में क्रमशः पञ्च-भूतों के समान कान्ति-मती हृल्लेखादि की पूजा करे। वर, पाश, अंकुश, अभय-धारिणी, शुभ्र-भूषणोंवाली, अङ्ग-देवताओं का पूजन आग्नेयादि स्थानों में करे ॥३५-३६॥

षट्-कोण में तीन शक्तियों की पूजा कर मिथुन (युगल) देवताओं का पूजन करे—

इन्द्र-कोणे लसद् - दण्ड-कुण्डिकाक्ष - गुणाभयाम् ।

गायत्रीं पूजयेन् सन्त्री ब्रह्माणमपि तादृशम् ॥३७

रक्ष-कोणे चक्र-शङ्ख - गदा-पद्मज - धारिणीम् ।

सावित्रीं पीत - वसनां यजेद् विष्णुं च तादृशम् ॥३८

वायु-कोणे परश्वाक्ष - मालाभय - वरान्विताम् ।

यजेत् सरस्वतीमाद्यां रुद्रं तादृश - लक्षणम् ॥३९

इन्द्र-कोण में दण्ड, कुण्डिका, अक्ष-माला और अभय-धारिणी गायत्री के साथ ब्रह्मा का, नैऋत्य-कोण में शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणी, पीत-वस्त्रा सावित्री के साथ विष्णु का, वायव्य-कोण में परशु-अक्ष-माला-अभय-वर-धारिणी आद्या सरस्वती के साथ रुद्र का पूजन करे ॥३७-३९॥

वह्नि-कोणे यजेद् रत्न-कुम्भ-रत्न - करण्डकम् ।

कराभ्यां विभ्रतं पीनं तुन्दिलं धन - नायकम् ॥४०

आलिंग्य सव्य - हस्तेन वामेनाम्बुज - धारिणीम् ।

धनदाङ्कु - समारूढां महा-लक्ष्मीं प्रपूजयेत् ॥४१

आग्नेय-कोण में कुबेर की गोद में बैठी, रत्न-कुम्भ और रत्न-पेटी दोनों हाथों में लिए, धन के स्वामी को दाएँ हाथ से आलिङ्गन किए, बाएँ हाथ में कमल लिए महा लक्ष्मी का पूजन करे ॥४०-४१॥

वारुणे मदनं बाण - पाशांकुश - शरासनाम् ।

धारयन्तं जपारक्तं पूजयेद् रक्त - भूषणाम् ॥४२

सव्येन पतिमाश्लिष्य वामेनाम्बुज - धारिणीम् ।

पाणिना रमणाङ्कुस्थां रतिं सम्यक् समचयेत् ॥४३

पश्चिम में काम-देव और वाण-पाश-अंकुश-धनुष लिये, रक्ताभूषणों से विभूषिता, दाएँ हाथ से पति को आलिङ्गन किए, बाँएँ हाथ में कमल लिए, काम-देव को गोद में बैठी रति का पूजन करे ॥४२-४३॥

ईशाने पूजयेत् सम्यक् विघ्न - राजं प्रियान्वितम् ।

सृणि-पाश - धरं कान्ता - वराङ्गस्य कराङ्गुलिम् ॥४४

साध्वो-पूर्ण-कपालाद्यां विघ्न-राजं दिगम्बरम् ।

पुष्करे विगलद् रत्न-स्फुरच्चषक - धारिणम् ॥ ४५

सिन्दूर - सदृशाकारामुद्दाम - मद - विश्रमाम् ।

धृत-रक्तोत्पल-धरामन्यं पाणिना तद्-भुजं स्पृशन् ॥४६

आश्लिष्ट-कान्तामरुणां पुष्टिभर्चे दिगम्बराम् ।

कर्णिकायां निधौ पूज्यौ षट्-कोणस्याथ पार्श्वयोः ॥४७

ईशान-कोण में प्रिया के साथ वाण और पाश-धारी, अनेक रत्न एवं चम्पक पुष्प लिए, दिगम्बर विघ्न-राज गणेश का पूजन करे । वर-अंकुश-माध्वो-रस से पूर्ण नर-कपाल लिए, दिगम्बरा, सिन्दूर-वत् रक्त-वर्णा, एक हाथ में रक्त-कमल लिए, दूसरे हाथ से गणपति की भुजा को स्पर्श करती हुई आलिङ्गित कान्ता पुष्टि का पूजन कर्णिका में करे । षट्-कोण के दोनों ओर निधियों का पूजन करे ॥४४-४७॥

अङ्गानि केशरेष्वेताः पश्चात् पत्रेषु पूजयेत् ।

अनङ्ग - कुसुमा पश्चादनङ्ग - कुसुमाऽऽतुरा ॥४८

अनङ्ग - मदना तद् - वदनङ्ग - मदनातुरा ।

भुवन - पाला गगन - वेगा चैव ततः परम् ॥४९

शशि - रेखा च गगन - रेखा चेत्यष्ट - शक्तयः ।

पाशाङ्कुश - वराऽभीति-धारिण्योऽरुण - विग्रहाः ॥५०

केशरों में उक्त अङ्ग-देवताओं की पूजा करने के बाद अष्ट-दलों में पूजा करे—ॐ अनङ्ग-कुसुमायै नमः, ॐ अनङ्ग-कुसुमातुरायै नमः, ॐ अनङ्ग-मदनायै नमः, ॐ अनङ्ग-मदनातुरायै नमः, ॐ भुवन-पालायै नमः, ॐ गगन-वेगायै नमः, ॐ शशि-रेखायै नमः, ॐ गगन-रेखायै नमः । ये अष्ट-शक्तियाँ पाश-अंकुश-अभय-धारिणी रक्त-वर्णा हैं ॥४८-५०॥

ततः षोडश - पत्रेषु कराली विकराल्युमा ।

सरस्वती श्रीदुर्गेशा लक्ष्मीः श्रुतिः स्मृतिर्धृतिः ॥५१

श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडश - शक्तयः ।

खड्ग-खेटक - धारिण्यः श्यामा पूज्याश्च मातरः ॥५२

तव सोलह दलों में—ॐ कराल्यै नमः, ॐ विकराल्यै नमः, ॐ उमायै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ श्रियै नमः, ॐ दुर्गायै नमः, ॐ ईशायै नमः, ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ श्रुत्यै नमः, ॐ स्मृत्यै नमः, ॐ धृत्यै नमः, ॐ श्रद्धायै नमः, ॐ मेधायै नमः, ॐ मत्यै नमः, ॐ कान्त्यै नमः, ॐ आर्यायै नमः—इन खड्ग-खेटक-धारिणी श्याम-वर्णा षोडश शक्तियों का पूजन करे ॥५१-५२॥

पद्माद् बहिः समभ्यर्च्या शक्तयः परि-चारिकाः—

प्रथमाऽनङ्ग - रूपा स्यादनङ्ग - मदनातुरा ।

अनङ्ग - भुवन - वेगाऽनङ्ग - भुवन - पालिका ॥५३

स्यात् सर्व - मदनांगाऽनङ्ग - वेदनाऽनङ्ग-मेखला ।

चषकं ताल - वृन्तं च ताम्बूलं छत्रमुज्ज्वलम् ॥५४

चामरे चम्पकं पुष्पं विभ्राणा कर - पङ्कजैः ॥५५

कमल के बाहर भगवती की परिचारिका शक्तियों का पूजन करे । यथा—ॐ अनङ्ग-रूपायै नमः, ॐ अनङ्ग-मदनातुरायै नमः, ॐ अनङ्ग-भुवन-वेगायै नमः, ॐ अनङ्ग-भुवन-पालिकायै नमः, ॐ अनङ्ग-मदनाङ्गायै नमः, ॐ अनङ्ग-वेदनायै नमः, ॐ अनङ्ग-मेखलायै नमः । ये अपने कर-कमलों में पान-पात्र, ताम्बूल, छत्र, चामर और चम्पक पुष्प लिए हैं ॥५३-५५॥

सर्वाभरण - संदीप्तां गुरु - पङ्क्ति - त्रयं यजेत् ।

सर्वाभरण - सन्दीप्तान् लोक-पालान् बहिर्यजेत् ।

वज्रादीनपि तद-बाह्ये देवी-प्रीत्यर्थमर्चयेत् ॥५६

इत्थं सम्पूज्य देवेशीं पुनर्विन्दौ प्रपूजयेत् ।

आसनाद्यैरुपचारैर्नाना-नैवेद्य - संयुतैः ॥५७

ततो होम - विधिं कुर्याद् बटुकादींश्च तर्पयेत् ।

ऋष्यादिकं पुनः कृत्वा जपं कुर्याद् यथा - विधि ॥५८

सर्वाभूषणों से प्रकाशित गुरु-पंक्ति-त्रय का पूजन करे। सम्पूर्ण आभरणों से उज्ज्वल लोकपालों का बाहर पूजन करे। उनके बाहर देवी-प्रीत्यर्थ वज्रादि आयुधों का पूजन करे। फिर बिन्दु में आसनादि नाना उपचारों तथा विविध नैवेद्यों से पुनः देव-देवेशी की पूजा करे। तब होम सम्पन्न कर, बटुकादि को सन्तुष्ट कर पुनः ऋष्यादि न्यास करके यथा-विधि जप करे ॥५६-५८॥

पठित्वा कवचं नाम - सहस्रं स्तोत्रमेव च ।

गुह्येति मन्त्र-राजेन फलं समर्पयेत् ततः ॥५९

पात्राण्युत्साद्य विधि - वदितः पूर्वं ततः पठेत् ।

गुरु-स्तोत्रं पुनर्जप्त्वा पात्र - वन्दनमाचरेत् ॥६०

कवच, सहस्र-नाम और स्तोत्र का पाठ कर 'गुह्याति-गुह्य' मन्त्र से देवी को फल-समर्पण करे। फिर पात्रों का विधि-वत् विसर्जन कर 'इतः पूर्वं' इत्यादि का पाठ करे। गुरु-स्तोत्र का पुनः पाठ कर पात्र-वन्दना करे ॥५९-६०॥

बहिर्गत्वा समभ्यर्च्य सन्तर्प्योच्छिष्ट - भैरवम् ।

पूजा-गृहे समागत्य शान्ति - स्तोत्रं पठेत् ततः ॥६१

श्रीवीर - वन्दन - स्तोत्रं पठित्वा हृदयाम्बुजे ।

देवीमुद्रास्य विहरेद् यथा - वत् साधकोत्तमः ॥६२

बाहर जाकर उच्छिष्ट भैरव का पूजन कर और उन्हें तृप्त कर हाथ-पैर धोकर पूजा-घर में आकर शान्ति-स्तोत्र का पाठ करे। वीर-वन्दन का स्तोत्र पढ़कर हृदय में देवी का विसर्जन कर साधक यथा-विधि विहार करे ॥६१-६२॥

इत्येष पटलो देवि ! पूजायाः सर्व - साधनः ।

गुह्याद् गुह्य-तरो देवि ! गोपनीयः स्व-योनि-वत् ॥६३

हे देवि ! समग्र साधनों का दाता यह पूजा का पटल अत्यन्त गुप्त है। इसे सर्वथा गोपनीय रखना चाहिए ॥६३॥

षष्ठः पटलः

श्री भैरव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि पूजा-पद्धतिमुत्तमाम् ।

तत्त्वं श्रीभुवनेश्वर्याः गद्य-पद्य-स्वरूपिणीम् ॥१॥

श्री भैरव ने कहा—हे देवि ! गद्य-पद्यात्मिका उत्तम पूजा-पद्धति को कहता हूँ, सुनो । यह श्री भुवनेश्वरी का तत्त्व-स्वरूप है ॥१॥

तत्र श्रीमान् साधकेन्द्रः ब्राह्मे मुहूर्त्ते शयन-तलाद्दुत्थाय, कर-चरणौ प्रक्षाल्य, रात्रि-वाससी त्यक्त्वा, शुद्ध-वाससी परिधायाचम्य, मनसा शुचिर्भूत्वा, निजासने समुपविश्य, निज-शिरसि श्वेत-वर्णाधोमुख-सहस्र-दल-कमल-कर्णिकान्त-गन्त-चन्द्र-मण्डलोपरि स्वगुरुं, शुक्ल-वर्णं, शुक्लालङ्कार-भूषितं, ज्ञानानन्द-मुदित-मानसं, सच्चिदानन्द-विग्रहं, चतुर्भुजं, ज्ञान-मुद्रा-पुस्तक-वराभय-करं, त्रि-नयनं, प्रसन्न-वदनेक्षणं, सर्व-देव-देवं, वामांगे वाम-हस्त-धृत-कमलया, रक्त-वसनाभरणया, स्व-प्रियया, दक्ष-भुजेनालिङ्गितं, परम-शिव-स्वरूपं ध्यात्वा, तच्चरण-युगल-कमल-विगलदमृत-धारया स्वात्मानं प्लुतं विभाव्य, मानसोपचारैराराध्य—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हस्रक्त्रं हस-क्षमलवरयूं सहस्रक्त्रं सहस्रक्षमलवरयीं हस्रौं ह्रौं श्रीमच्छ्री-अमुकानन्द-नाथ-श्रीपादुकां श्रीअमुकाम्बा-श्रीपादुकां च पूजयामि नमः—इति दशधा विमृश्य, दण्डवत् प्रणामं मनसा कुर्यात् । तत्र प्रणाम-मन्त्रो । यथा—

श्रीमान् साधक ब्राह्म-मुहूर्त्ते में शय्या से उठकर हाथ-पंर धोकर, रात्रि के वस्त्र उतारकर, शुद्ध वस्त्र पहनकर, आचमन कर, मन से पवित्र होकर, आसन पर बैठ, शिर में श्वेत-वर्ण अधो-मुख सहस्र-दल-कमल की कर्णिका के मध्य-गत चन्द्र-मण्डल के ऊपर, शुक्ल-वर्ण, स्वच्छ अलङ्कारों से अलंकृत, ज्ञानानन्द से प्रसन्न-चित्त, सच्चिदानन्द-

[३३]

स्वरूप, चतुर्भुज, ज्ञान-मुद्रा, पुस्तक, वर और अभय हाथों में लिए, तीन नेत्रवाले, प्रसन्न-मुख और दृष्टिवाले, सम्पूर्ण देवताओं के देवता, बाईं ओर बाँयें हाथ में कमल लिए, रक्त-वस्त्राभूषण से विभूषिता अपनी प्रिया द्वारा दाहिने हाथ से आलिङ्गित, परम-शिव-स्वरूप गुरु का ध्यान कर, उनके चरण-कमलों से निकली हुई अमृत की धारा से अपने को आप्लावित भावना कर मानसोपचारों से उनकी आराधना कर निम्न मन्त्र से दस बार पूजन कर उन्हें प्रणाम करे—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रे हसक्षमलवरयूं सहखफ्रे सहक्षम-
लवरयीं हसौं स्हाँ श्रीमच्छ्री-अमुकानन्दनाथ-श्रीपादुकां
श्रीअमुकाम्बा-श्रीपादुकां च पूजयामि नमः ।

ॐ नमामि सद्-गुरुं शान्तं प्रत्यक्षं शिव-रूपिणम् ।

शिरसा योग-पीठस्थं मुक्ति-कामार्थ-सिद्धये ॥ १

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्द-विग्रहम् ।

यस्य सान्निध्य-मात्रेण चिदानन्दायते परम् ॥ २

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३

अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।

तत्-पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुः साक्षान्महेश्वरः ।

गुरुरेव जगत् सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ५

नमस्ते नाथ, भगवन् ! शिवाय गुरु-रूपिणे ।

विद्यावतार-संसिद्धयै स्वीकृतानेक-विग्रहः ॥ ६

नवाय नव-रूपाय परमार्थैक-रूपिणे ।

सर्व-ज्ञान-तमो-भेद-भानवे चिद्-घनाय ते ॥ ७

स्वतन्त्राय दया-क्लृप्त-विग्रहाय परात्मने ।

पर-तन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्य-रूपिणे ॥ ८

ज्ञानिनां ज्ञान-रूपाय प्रकाशाय प्रकाशिनाम् ।

विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम् ॥ ६

पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कर्यामुपर्यधः ।

सदा सच्चित्त-रूपेण विधेहि भवदाश्रयम् ॥ १०

प्रत्यक्ष शिव-रूप, योग-पीठ में विराजमान, शान्त, सद्-गुरु को मैं सिद्धि के लिए नमन करता हूँ ॥१॥

निजानन्द-रूप शरीर-धारी, जिनके सम्पर्क मात्र से ही परम-चिदानन्द की प्राप्ति होती है, परमानन्द-मय श्रीगुरु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२॥

अज्ञान-रूपी अन्धकार को ज्ञान-रूपी अञ्जन की शलाका से दूर-कर, जिन्होंने नेत्रों को खोलकर दिव्य-ज्ञान का प्रकाश दिखाया है, उन श्रीगुरु को प्रणाम करता हूँ ॥३॥

अखण्ड-मण्डलाकार चराचर ब्रह्माण्ड में जो व्याप्त है, उस तत्त्व को जिन्होंने दिखाया है, उन श्रीगुरु को प्रणाम ॥४॥

गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु साक्षात् महेश्वर हैं । गुरु ही सारा विश्व हैं । उन श्रीगुरु को प्रणाम ॥५॥

हे भगवन् ! हे नाथ ! विद्या के आविर्भाव की सिद्धि के लिए अनेक स्वरूपों को धारण करनेवाले गुरु-रूपी शिव ! आपको प्रणाम ॥६॥

नवीन शरीर को धारण करनेवाले, केवल परमार्थ-स्वरूप, समस्त अज्ञान-रूपी अन्धकार को भेदन करने में सूर्य-सदृश चैतन्य-स्वरूप आपको प्रणाम ॥७॥

दया की मूर्ति, स्वतन्त्र, भक्तों के लिये पर-तन्त्र अर्थात् भक्तों के अधीन रहनेवाले, परमात्मा-स्वरूप, भव्य से भी भव्य रूपवाले आप-को प्रणाम ॥८॥

ज्ञानियों के लिए ज्ञान-स्वरूप, प्रकाशवालों के लिए प्रकाश-स्वरूप, विवेकियों के लिए विवेक-स्वरूप, विमर्शियों के लिए विमर्श-स्वरूप आपको प्रणाम ॥९॥

मैं आपको सामने से, दोनों ओर से, पीछे से, ऊपर से और नीचे से नमस्कार करता हूँ । आप सदा अपने सच्चित्त से मुझे अपना आश्रय प्रदान करें ॥१०॥

इति श्रीगुरुं प्रणम्य, सुप्रसन्नं विभाव्य, मनसा तदाज्ञां गृहीत्वा, मूलाधारे स्वर्ण-वर्ण-चतुर्दल-कमल-कर्णिकान्तर्गत-त्रिकोण-चक्रान्तर-शृङ्गाटकोपरि परां शक्तिं कुण्डलिनीमुद्य-द्दिनकर-सहस्र-भास्वरां, विद्युत्-कोटि-सन्निभां, सकल-मन्त्र-मातरं, पञ्चाशद्-वर्ण-विग्रहामष्टात्रिशत्-कला-रूपिणीं, सर्व-प्राणि-जीवानां त्रि-धाम-धामानां, सर्पाकारामूर्ध्व-मुखीं, सार्द्ध-त्रिवलयां, विस-तन्तु-तनीयसीं, सुप्तां विभाव्य, गुरूपदिष्ट-निज-सहज-नादेन प्रबोधयित्वा । तत्र—‘वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः’ इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य—

इस प्रकार गुरु को प्रणाम कर यह समझे कि वे प्रसन्न हैं और मन से उनकी आज्ञा लेकर मूलाधार में सोने की तरह चमकती हुई, चार-दल वाले कमल की कर्णिका में त्रिकोण-चक्र में शृङ्गाटक के ऊपर परमा शक्ति कुण्डलिनी को, जो उदय-कालीन हजारों सूर्य के समान कान्ति-मती और करोड़ों बिजलियों के समान चमकीली, पचास वर्णों के स्वरूपवाली, सम्पूर्ण मन्त्रों की माता, अड़तीस कला-रूपिणी, प्राणी-मात्र की जीव-स्वरूपिणी, तीनों लोकों को प्रकाशित करनेवाली, सर्पाकारा, ऊर्ध्व-मुखी, साढ़े तीन फेरोवाली, कमल-नाल के तन्तु-समान सूक्ष्म-रूपिणी है, सोई हुई ध्यान कर गुरु द्वारा उपदिष्ट अपने सहज नाद से उसे जगाकर, वहाँ ‘वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः’ इन मन्त्रों से प्रदक्षिणा-क्रम से मूलाधार के चारों दलों में पूजन कर मध्य में मूल-मन्त्र से पूजा करे ।

‘हंसः’ इति मन्त्रेण सर्वत्रोत्थाप्य, ततः स्वाधिष्ठाने लिङ्ग-मूले विद्रुम-वर्णे षट्-दल-कमले तां नीत्वा, तत्र ‘वं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः’—इति पत्रेषु मध्ये मूलेन चाश्चर्य—

‘हंसः’ मन्त्र से सर्वत्र कुण्डलिनी का उत्थान करे । तब लिङ्ग-मूल में स्थित मूँगे जैसे रंगवाले स्वाधिष्ठान-चक्र के षट्-दल-कमल में कुण्डलिनी को ले जाकर वहाँ—‘वं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः,

रे नमः, लं नमः' से क्रमशः छः दलों में पूजन कर मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे ।

ततो मणिपुरे नाभौ नील-वर्णे दश-दल-कमले तां नीत्वा, तत्र—'डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः', इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च प्रपूज्य—

तदनन्तर नाभि में स्थित नीले रंग के मणिपुर के दश-दल-कमल में कुण्डलिनी को ले जाकर वहाँ—'डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः' से दस दलों में पूजन कर मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे ।

ततो वक्षस्थनाहते पिंगल-वर्णे द्वादश-दल-कमले तां नीत्वा, तत्र—'कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः'—इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च समभ्यर्च्य—

इसके बाद वक्ष-स्थल में स्थित पिङ्गल रङ्गवाले द्वादश-दल-कमल के अनाहत चक्र में कुण्डलिनी को ले जाकर वहाँ—'कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः' से बारह दलों में पूजन कर मध्य में मूल - मन्त्र से पूजन करे ।

ततो विशुद्धौ कण्ठे धूम्र-वर्णे षोडश-दल-कमले तां नीत्वा, तत्र—'अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, लृं नमः, लूं नमः, एं नमः, ऐं नमः, औं नमः, औं नमः, अं नमः, अः नमः'—इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च प्रपूज्य—

तव कण्ठ में स्थित धुएँ जैसे रङ्गवाले षोडश-दल-कमल के विशुद्ध-चक्र में कुण्डलिनी को ले जाकर, वहाँ—'अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, लृं नमः, लूं नमः, एं नमः, ऐं नमः, औं नमः, औं नमः, अं नमः, अः नमः' से सोलह दलों में पूजन कर मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे ।

ततो भ्रू-मध्ये, आज्ञा-चक्रे, विद्युद्-वर्गे द्वि-दल-कमलं तां नीत्वा, तत्र—‘हं नमः, क्षं नमः’ इति पत्रयोर्मध्ये मूलेन च प्रपूज्य—

तदनन्तर भ्रू-मध्य में स्थित विजली जैसे रङ्गवाले आज्ञा-चक्र के दो दल के कमल में कुण्डलिनी को लाकर, वहाँ ‘हं नमः, क्षं नमः’ से पत्र के दो दलों में क्रमशः पूजन कर मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे।

ततः सहस्र-दल-कमल-कर्णिकान्तर्गत-विन्दु-रूप-पर-तेजो-मय-परम-शिवेन सहैकतां नीत्वा । तेनामृतेन ततः स्रवतां तां कुण्डलिनीं सन्तर्प्य, तत्र नाद-श्रवण-तत्परो मुहूर्तं लयं विभाव्य पुनरपि सोहमिति मन्त्रेण तां कुण्डलिनीमाज्ञा-चक्रे विद्युद्-वर्गे द्वि-दल-कमले तां समानीय । तत्र—‘हं नमः, क्षं नमः’ इति पत्रयोर्मध्ये मूलेन च सम्पूज्य—

तब सहस्र-दल-कमल की कर्णिका के अन्तर्गत विन्दु-रूप, तेजो-मय परम शिव के साथ कुण्डलिनी को एकाकार कर, उनके मिलन से निकले अमृत द्वारा कुण्डलिनी को तृप्त कर, वहाँ क्षण भर नाद को सुनते हुए लय होने की भावना करे। फिर ‘सोहं’ मन्त्र से उस कुण्डलिनी को आज्ञा-चक्र के विजली जैसे रङ्गवाले द्वि-दल कमल में पुनः लाकर, वहाँ—‘हं नमः, क्षं नमः’ से दोनों दलों में पूजा कर मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे।

ततो विशुद्धौ कण्ठे धूस्र-वर्गे षोडश-दल-कमले तां समानीय । तत्र—‘अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, लृं नमः, लूं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नमः, अं नमः, अं नमः’ इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च प्रपूज्य—

तब कण्ठ के धूस्र-वर्ग षोडश-दल-कमल में कुण्डलिनी को लाकर, वहाँ—‘अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, लृं नमः, लूं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नमः, अं नमः, अं नमः’ से सोलह दलों में पूजन कर मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे।

ततो वक्षस्यनाहते पिंगल-वर्णे द्वादश-दल-कमले तां समानीय । तत्र—‘कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः’ इति पत्रेषु मध्ये मूलेनाभ्यर्च्य—

तब वक्ष-स्थल के पिङ्गल-वर्ण द्वादश-दल-कमल अनाहत-चक्र में कुण्डलिनी को लाकर, वहाँ—‘कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः’ से बारह दलों में पूजन कर मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे ।

ततो मणिपूरे नाभौ नील-वर्णे दश-दल-कमले तां समानीय । तत्र—‘डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः’ इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च सम्पूज्य—

तब नाभि के नील-वर्ण दश-दल-कमल मणिपूर में कुण्डलिनी को लाकर, वहाँ—‘डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः’ से दस दलों में पूजन करके मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे ।

ततः स्वाधिष्ठाने लिङ्ग-मूले विद्रुम-वर्णे षट्-दल-कमले तां समानीय । तत्र—‘बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः’ इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च प्रपूज्य—

तब लिङ्ग-मूल के विद्रुम-वर्ण षट्-दल स्वाधिष्ठान-चक्र में कुण्डलिनी को लाकर, वहाँ—‘बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः’ से छः दलों में पूजन करके मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे ।

ततो मूलाधारे स्वर्ण-वर्णे चतुर्दल-कमले तां समानीय । तत्र—‘वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः’ इति पत्रेषु अभ्यर्च्य मध्ये मूलेन च तां समर्चयेत्—

तदनन्तर मूलाधार के स्वर्ण-वर्ण चतुर्दल-कमल में कुण्डलिनी को लाकर, वहाँ—‘वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः’ से चार दलों में पूजन करके मध्य में मूल-मन्त्र से पूजन करे ।

इत्यारोहावरोह-क्रमेण परां परा-शक्तिं कुण्डलिनीमुत्थाप्य प्राणायामं कुर्यात् । तत्र प्रणवं षोडश-वारमुच्चरन् दक्षांगु-ष्ठेन दक्ष-नासा-पुटं निरुध्य वामेन पवनं पूरयेत् । ततस्तमेव चतुर्षांष्ठ-वारमुच्चरन् दक्षानामा-कनिष्ठिकाभ्यां वामं पुटं च निरुध्य द्वाभ्यां पवनं कुम्भयेत् । ततस्तमेव द्वा-त्रिंशद्-वार-मुच्चरन् वामं पुटं तथैव निरुध्य दक्षेण पवनं रेचयेत् । इति प्राणायामं कृत्वा ऋष्यादि-स्मरणं विदधीत । यथा—

इस प्रकार आरोह-अवरोह-क्रम से परमा परा-शक्ति कुण्डलिनी को उठा कर प्राणायाम करे । प्राणायाम में दाहिने अंगूठे से दाईं नाक को बन्द कर बाँयीं नासिका से १६ बार प्रणव (ॐ) का जप करते हुए पूरक करे । फिर ६४ बार 'ॐ' का जप करते हुए दाईं अनामा और कनिष्ठा से बाँईं नाक को बन्दकर कुम्भक करे । तब बाँईं नाक को उसी प्रकार बन्द कर दक्ष नासा-पुट से ३२ बार 'ॐ' का जप करता हुआ रेचक करे । इस प्रकार पूरक-कुम्भक-रेचकात्मक प्राणायाम करके ऋष्यादि का स्मरण करे । यथा—

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरी-मन्त्र-राजस्य श्रीशक्ति ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीभुवनेश्वरी देवता, हं बीजं, ईं शक्तिः, रं कीलकं, श्रीचतुर्विध-पुरुषार्थ-साधने जपे विनियोगः ॥

इति ऋष्यादिकं कृत्वाऽञ्जलिः स्मृत्वा न्यसेद् । यथा—

इस प्रकार हाथ जोड़कर ऋषि आदि का स्मरण कर न्यास करे—

ऋष्यादि-न्यास—श्रीशक्ति-ऋषये नमः शिरसि, गायत्री छन्दसे नमः मुखे, श्रीभुवनेश्वरी - देवतायै नमः हृदि, हं बीजाय नमः गुह्ये, ईं-शक्तये नमः पादयोः, रं कीलकाय नमः नाभौ, श्रीचतुर्विध-पुरुषार्थ-साधने जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु ।

कर-न्यास—ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ह्रौं अनामिकाभ्यां हुं, ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ह्रः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट् ।

षडङ्ग-न्यास-हां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा,
हूं शिखायै वषट्, हं कवचाय हुं, हौं नेत्र-त्रयाय वौषट्,
हः अस्त्राय फट् ।

अथ ध्यानम्—

उद्यदिन-द्युतिमिन्दु-किरीटां तुंग-कुचां नयन-त्रय-युक्ताम् ।
स्मेर-मुखीं वरदांकुश-पाशाभीति-करां प्रभजेद् भुवनेशीम् ॥

उदय-कालीन सूर्य जैसी कान्तिवाली, चन्द्र-विभूषित-मुकुटवाली,
उन्नत उरोजोंवाली, त्रि-नेत्रा, मुस्कान-युक्त मुखवाली, हाथों में वर-
अंकुश-पाश-अभय-धारिणी भुवनेश्वरी का मैं ध्यान करता हूँ ।

इति ध्यात्वा, यथा-शक्ति जपं विधाय । पुनरपि प्राणा-
यामादिकं कृत्वा—

इस प्रकार ध्यान कर, यथा-शक्ति जप कर पुनः प्राणायामादि कर
हाथ में जल लेकर—

गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्-कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्-प्रसादान्महेश्वरि ॥

इति देव्या वाम-हस्ते तेजो-रूपं जप-फलं समर्प्य । निज-
कृत्यं समर्पयेत् । यथा—

उक्त मन्त्र को पढ़ते हुए भगवती के बाँयें हाथ में जप-समर्पण की
भावना करते हुए हाथ के जल को सामने रखे पात्र में छोड़ दे । तब
अपने दैनिक कर्मों का समर्पण करे । यथा—

प्रकाश-मानां प्रथमे प्रयाणे, प्रति-प्रयाणेऽप्यमृताय-मानाम् ।
अन्तः - पदव्यामनु-सञ्चरन्तीमानन्द-रूपामबलां प्रपद्ये ॥

प्रथम स्पन्दन में प्रकाश को देती हुई, प्रत्येक स्पन्दन में अमृत को
प्रवाहित करती हुई, अन्तःकरण में सञ्चार करती हुई आनन्द-मयी
भगवती की शरण को मैं ग्रहण करता हूँ ।

‘अहं देवी न चान्योऽस्मि, ब्रह्मैवाहं न शोक-भाक् ।
सच्चिदानन्द-रूपोऽहं’—स्वात्मानमिति चिन्तयेत् ॥

‘मैं देवी हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ, दुःख भोगनेवाला संसारी नहीं हूँ, मैं सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हूँ’—इस प्रकार अपने को मैं समझता हूँ।

प्रातः-प्रभृति सायान्तं सायादि प्रातरं ततः ।

यत्-करोमि जगद्-योने ! तदस्तु तव पूजनम् ॥

हे जगज्जननि ! प्रातःकाल से सायं-काल-पर्यन्त और सायं-काल से प्रातः-काल तक जो कुछ मैं करता हूँ, वह आपका पूजन हो।

इति समर्प्य स्व-कार्यानुष्ठानाय देव्याज्ञां प्रार्थयेत्—

उक्त प्रकार समर्पण कर अपने कार्यों के करने के लिए देवी से अनुमति पाने की प्रार्थना करे—

त्रैलोक्य-चैतन्य-मये सुरेशि, भुवनेश्वरि ! त्वच्चरणाज्ञयैव ।

प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं, संसार-यात्रामनुवर्तयिष्ये ॥

संसार-यात्रामनुवर्तमानं, त्वदाज्ञया श्रीभुवनेश्वरीशि !

स्पृद्धा-तिरस्कार-कलि-प्रमाद-भयानि मां माऽभिभवन्तु मातः ॥

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।

त्वया हृषीकेशि हृदिस्थयाऽहं यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

तीनों लोकों को चैतन्य-मय करनेवाली हे देवेशि भुवनेश्वरि ! तुम्हारे चरणों की आज्ञा से ही मैं प्रातः उठकर तुम्हारी प्रसन्नता के लिये संसार-यात्रा में लग जाता हूँ। हे ईश्वरि भुवनेश्वरि, मातः। तुम्हारी आज्ञा से संसार के काम में लगे हुये मुझे स्पृद्धा, तिरस्कार आदि जो कलि के प्रमाद हैं, उनका भय विचलित न करे।

मैं धर्म को जानता हूँ किन्तु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। मैं अधर्म को जानता हूँ किन्तु उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। हे इन्द्रियों की स्वामिनि ! हृदय में स्थित रहकर तुम जैसा कराती हो, वैसा ही मैं करता हूँ।

अजपा-जपं सहज-सिद्धं, तत्तद् देवेभ्यः सङ्कल्प्य तसमर्पयेद् । यथा—

स्वाभाविक रूप से सिद्ध अजपा-जप को उन-उन देवताओं के लिये सङ्कल्प कर उन्हें समर्पित करे। यथा—

ॐ अद्य पूर्वैद्युरहोरात्राचरितमुच्छ्वास-निःश्वासात्मकं षट्-शताधिकमेक-विंशति-सहस्र-संख्यकमजपा-जपं मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरानाहत-विशुद्धाज्ञा-ब्रह्मरन्ध्रेषु, चतुर्दल-षट्दल-दशदल-द्वादशदल-षोडशदल-द्विदल-सहस्रदलेषु, स्वर्ण-विद्रुम-नील-पिङ्गल - धून् - विद्युत्-कर्बुर-वर्णेषु, स्थिताभ्यो गणपति-ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-जीवात्म - परमात्म - गुरुपादुकाभ्यां यथा-भागशः समर्पयामि नमः ॥

इति सङ्कल्पं कृत्वा समर्पयेद् । यथा—

उक्त प्रकार सङ्कल्प कर अजपा-जप समर्पित करे । यथा—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मूलाधार - चक्रस्थाय गणपतये अजपा-जपानां षट्-शतं समर्पयामि नमः ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स्वाधि-ष्ठान-चक्रस्थाय ब्रह्मणे अजपा-जपानां षट्-सहस्राणि समर्प-यामि नमः ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मणिपूर-चक्रस्थाय विष्णवे-अजपा-जपानां षट्-सहस्राणि समर्पयामि नमः ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनाहत-चक्रस्थाय रुद्राय अजपा-जपानां षट्-सहस्राणि समर्पयामि नमः ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विशुद्ध-चक्रस्थाय जीवात्मने अजपा-जपानामेक-सहस्रं समर्प० ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीआज्ञा-चक्र-स्थाय परमात्मने अजपा-जपानां एक-सहस्रं समर्प० ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सहस्र-दल-कमल-कर्णिका-मध्यस्थायै श्रीगुरु-पादु-कायै अजपा-जपानामेक-सहस्रं समर्पयामि नमः ॥

इत्यजपा - जपं समर्प्याजपा - मन्त्रेण प्राणायामं कृत्वा सङ्कल्पं कुर्याद् । यथा—

इस प्रकार अजपा-जप समर्पित कर अजपा मन्त्र से प्राणायाम कर सङ्कल्प करे । यथा—

ॐ अस्य श्रीअजपा - गायत्री-मन्त्रस्य श्री हंस ऋषिः, अव्यक्त-गायत्री छन्दः, परम-हंसो देवता, हं बीजं, सः शक्तिः,

सोऽहं कीलकं, ॐकारस्तत्त्वं, उदात्तः स्वरः, हैमो वर्णः, मम मोक्षार्थे अजपा-जपे विनियोगः ॥

इति कृताञ्जलि ऋष्यादिकं स्मृत्वा न्यसेत्—

इस प्रकार हाथ जोड़कर ऋषि आदि का स्मरण कर न्यास करे—

ॐ हंसात्मने ऋषये नमः शिरसि, अव्यक्त-गायत्री-छन्दसे नमः मुखे, परम-हंसाय देवतायै नमः हृदये, हं बीजाय नमः मूलाधारे, सः शक्तये नमः पादयोः, सोऽहं कीलकाय नमः नाभौ, ॐकार-तत्त्वाय नमः हृदये, उदात्त-स्वराय नमः कण्ठे, हैम-वर्णाय नमः सर्वांगे ।

इति विन्यस्य 'मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः' इति कृताञ्जलिर्वदेत् । इति ऋष्यादि-न्यासः ॥

इस प्रकार न्यास कर हाथ जोड़कर कहे— 'मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।' यही 'ऋष्यादि न्यास' है ।

अथ कर-न्यासः—हंसां सूर्यात्मने स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः, हंसीं सोमात्मने स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा, हंसूं निरंजनात्मने स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्, हंसैं निराभासात्मने स्वाहा अनामिकाभ्यां हुं, हंसाँ अनंग-तनुः सूक्ष्मा-देवी प्रचोदयात् स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, हंसः अव्यक्त - बोधात्मने स्वाहा करतल-करपृष्ठाभ्यां फट् ।

अथ षडंगः—हंसां सूर्यात्मने स्वाहा हृदयाय नमः, हंसीं सोमात्मने स्वाहा शिरसे स्वाहा, हंसूं निरंजनात्मने स्वाहा शिखायै वषट्, हंसैं निराभासात्मने स्वाहा कवचाय हुं, हंसाँ अनंग-तनुः-सूक्ष्मा देवी प्रचोदयात् स्वाहा नेत्र-त्रयाय वौषट्, हंसः अव्यक्त-बोधात्मने स्वाहा अस्त्राय फट् ।

अथ ध्यानं—

द्यां मूर्धानं यस्य विप्रा वदन्ति,
खं वै नाभिं चन्द्र - सूर्यौ च नेत्रे ।

दिग्भिः श्रोत्रो यस्य पादौ क्षितिश्च,
ध्यातव्योऽसौ सर्व - भूतान्तरात्मा ॥

सब प्राणियों के हृदय में निवास करनेवाले उन परमात्मा का ध्यान करना चाहिये, जिनका सिर विप्र लोग द्यु-लोक बताते हैं। आकाश ही जिनकी नाभि है और चन्द्रमा एवं सूर्य दो नेत्र हैं। दिशायें जिनके कान हैं और पृथ्वी पैर है।

इति विराट् स्वरूपं स्वात्मानं ध्यात्वा, सन्धायी प्राण-वायोर्निर्गम - प्रवेशात्मक समाजपा - मन्त्र 'हंस' इति पञ्च-विंशति-वारं जप्त्वा समर्प्य गुरुपदिष्ट-मार्गेण नादानुसन्धान-पूर्वक तदनुसन्धान-पूर्वक - निरस्त - समस्तोपाधिना केनापि चिद्-विलासेन प्रवर्तमानोऽसीति विभाव्य स्व-कार्यानुष्ठानाय—

इस प्रकार अपनी आत्मा के विराट् स्वरूप का ध्यान कर,

समुद्र - मेखले देवि ! पर्वत - स्तन - मण्डले !

विष्णु-पत्नि ! नमस्तुभ्यं पाद-स्पर्श क्षमस्व मे ॥

इति भूमिं प्रार्थ्य श्वासानुसारेण तस्यां पादं निधाय, बहिर्गत्वा मल-मूत्रोत्सर्गाचमनं विधाय, दन्त-धावनं कुर्यात् ।

इस प्रकार भूमि की प्रार्थना कर श्वास के अनुसार पैर रखकर, बाहर जाकर शौचादि आचमन कर दाँतों को स्वच्छ करे।

‘क्लीं काम-देवाय सर्व-जन-प्रियाय नमः’—इति दन्त-धावनं कृत्वा नद्यादौ गत्वा, तत्र वैदिकं स्नानं निवर्त्य तान्त्रिकमारभेत् । यथा—तत्रादौ कर-चरण-मुखानि मूलेन प्रक्षाल्य—

‘क्लीं काम-देवाय सर्व-जन-प्रियाय नमः’—इस मन्त्र से दाँतों को स्वच्छ कर नदी आदि जलाशय को जाकर वहाँ वैदिक स्नान कर तान्त्रिक स्नान करे। यथा—पहले हाथ, पैर और मुख को मूल-मन्त्र से धोकर—

‘मणि-धारिणि वज्रिणि महा-प्रतिसरे रक्ष हुं फट् स्वाहा—
इति शिखां बध्वाऽऽचमन-त्रयं कुर्यात्—

‘मूलं आत्म-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा । मूलं विद्या-तत्त्वं
शोधयामि स्वाहा । मूलं शिव-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा’—
इत्याचम्य मलापकर्षण-स्नानं विधाय, पुनराचम्य—

‘मणि-धारिणि’ आदि मन्त्र से शिखा को बाँधकर तीन बार
आचमन करे—

‘मूलं आत्म-तत्त्वं’ इत्यादि से आचमन कर शरीर की मैल दूर
करने के लिये स्नान कर पुनः आचमन कर—

‘ॐ अद्यामुक - मासस्येत्यादि श्रीभुवनेश्वरी - प्रीत्यर्थं
तान्त्रिक-स्नानमहं करिष्ये’ इति सङ्कल्प्य प्राणायामं कृत्वा,
स्व-मूल-ऋष्यादि-कर-षडङ्ग - न्यासांश्च कृत्वा, स्व - पुरतो
जले हस्त-मात्रं चतुरस्रं तीर्थं परिकल्प्य—

‘ॐ अद्यामुक’ इत्यादि से सङ्कल्प कर प्राणायाम कर, अपने मूल-
मन्त्र के ऋष्यादि, कर, या षडङ्ग न्यासों को कर, अपने सम्मुख
जल में एक हाथ चौकोर ‘तीर्थ’ की भावना कर—

‘ॐ ब्रह्माण्डोदर-तीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे !

तेन सत्येन देवेश ! तीर्थान् देहि दिवाकर ॥’

इति सूर्यात् तीर्थान् प्रार्थ्य ‘क्रौं’ इत्यंकुश - मुद्रया
मण्डलं भित्वा—

उक्त मन्त्र द्वारा सूर्य से तीर्थों की प्रार्थना कर ‘क्रौं’ द्वारा
अंकुश-मुद्रा से सूर्य-मण्डल को भेद कर—

‘ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति !

नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥’

‘ॐ गङ्गे’ इत्यादि मन्त्र द्वारा सूर्य-मण्डल से तीर्थ का आवाहन
कर, अपने सामने कल्पित तीर्थ की पूजा कर,, पुनः सूर्य-मण्डल के
सर्वानन्द-मय तीर्थ-मण्डल में उस तीर्थ-शक्ति का ध्यान करे । यथा—

—इति सूर्य-मण्डलात् तीर्थमावाह्य, पुरः कल्पित - तीर्थ
सम्पूज्य, पुनः सूर्य-मण्डलादेवं 'हां हीं हूं हं हौं हः'
सर्वानन्द-मये, तीर्थ-मण्डले तां ध्यायेद् । यथा—

सर्वानन्द - मयीमशेष - दुरित-ध्वंसां मृगाङ्कु - प्रभां,
द्व्यक्षां चोर्ध्व-कर-द्वयेन दधतीं पाशं सृणिं च क्रमात् ।
दोभ्यां चामृत-पूर्ण-हेम-कलशं शुक्लाक्ष-मालां वराम्,
गंगा-सिन्धु-सरिद्-द्वयादि-सहितां श्रीतीर्थ-शक्तिं भजे ॥

इति ध्यात्वा—

इस प्रकार ध्यान कर—

'ॐ नमो भगवति, अम्बे, अम्बिके, महा - मालिनि !
एह्येहि भगवति ! अशेष-तीर्थाल-वाले ! शिव-जटाधि-रूढे,
गंगे, गंगाम्बिके ! स्वाहा' इति मन्त्रेण सप्तधा अभिमन्त्र्य,
'ह्रीं' इत्यालोङ्च, 'वं' इत्यमृतेश-मुद्रयाऽमृतीकृत्य—

'ॐ आत्म-तत्त्वात्मने नमः, ॐ विद्या-तत्त्वात्मने नमः,
ॐ शिव-तत्त्वात्मने नमः' इति तत्त्व-त्रयं जले विन्यस्य, तत्र,
स्व-चक्रं विभाव्य, तत्र हृदय - कमले देवीमावाह्य षडंगेन
सकलीकृत्य ताम्र-वर्णां तर्पयित्वा योनि-मुद्रया मूलेन तज्जल-
मण्डलाभिमन्त्र्य तत्र मूल-मन्त्र-स्मरण-पूर्वकं त्रिनिमज्ज्यो-
न्मज्जेत् । ततः कुम्भ-मुद्रया मूलं पठन् स्व-शिरसि त्रिर-
भिषिञ्च्य मूलेन देवीं त्रिः सन्तर्प्य देवीं स्व-हृदि समानीय—

मूलं आत्म-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा, मूलं विद्या-तत्त्वं
शोधयामि स्वाहा, मूलं शिव-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा'

इति त्रिराचम्य तीरमारुह्य धौत-वाससी परिधाय
त्रिपुण्ड्रकमूर्ध्व-पुण्ड्रकं वा तिलकं विधाय वैदिक सन्ध्यां
समाप्य, तान्त्रिक-सन्ध्यामारभेत् ॥ इति स्नान-विधिः ॥

अथ सन्ध्या । तत्र पूर्व - वदाचमनम्, मूलेन त्रिखण्डां बध्वा, प्राणायाम - ऋष्यादि-कर - षडंग - न्यासान् विधाय, स्व-पुरतो धेनु-मुद्रया तथैव विरचितं तीर्थ-जलममृतीकृत्य मूलेनाष्टधाऽभिमन्त्र्य, तेन जलेन-

‘अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, लृं नमः, लूं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नमः, अं नमः, अं नमः, कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः, डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः, बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः, वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः, हं नमः, लं नमः, क्षं नमः ।’

—इति मातृकाक्षरैः स्व-शिरः प्रोक्ष्य, मूलेन च त्रिः सम्प्रोक्ष्य, दक्ष-हस्ते जलमादाय, वामेनाच्छाद्य ‘लं वं रं यं हं’ इति पाञ्च-भौतिक-मन्त्रैः सप्त-वारमभिमन्त्र्य, मूलेन च त्रिरभिमन्त्र्य, तज्जलं बिन्दुभिर्वाम - हस्त-कृत-तत्त्व-मुद्रया मूलेन स्व-शिरसि त्रिः प्रोक्ष्य, अवशिष्टं जलं वाम-हस्ते निधाय, तेजो-रूपं तज्जलमिडयाकृष्य, स्व-देहान्तः-सकल-कलुषं प्रक्षाल्य, तज्जलं कृष्ण-वर्णं पिङ्गलया बहिर्निर्गतं मत्वा, पुनर्दक्ष-हस्ते कृत्वा, स्व - वाम-भागे जलद् - वज्र - शिलां ध्यात्वा—

‘ॐ श्लीं पशुं हुं फट्’ इति पाशुपतास्त्र-मन्त्रेण तस्यां शिलायामास्फाल्य, हस्तौ प्रक्षाल्य, मूलेन जलमादाय प्रवहन्-नाड्या सहस्र-दल-परमामृतेनैकीभूतं विभाव्य निर्गमय, तेन जलेन—

उक्त प्रकार पाप-पुरुष का ध्यान कर वाएँ नथुने से 'यं' बीज से वायु भर (पूरक) कर, नाभि में षट्-कोणाकार वायु-मण्डल से जोड़कर, वहाँ कृष्ण-वर्ण वायु-बीज 'यं' का ध्यान करे। कुम्भक से वायु-बीज 'यं' का आवर्तन कर उससे उत्पन्न महा-वायु द्वारा अपने शरीर में स्थित निज पाप-पुरुष को सुखाकर, दाँएँ नथुने से रेचक करे। फिर दाँएँ नथुने से 'रं' बीज से पूरक कर, उसे मूलाधार से जोड़े और वहाँ स्थित अग्नि-मण्डल में रक्त-वर्ण 'रं' बीज का ध्यान कर कुम्भक से उस बीज का आवर्तन कर उससे उत्पन्न महा-अग्नि से अपने शरीर में स्थित निज पाप-पुरुष को जलाकर उसकी भस्म-सहित वायु का बाँएँ नथुने से रेचन करे। फिर बाँएँ नथुने से 'वं' बीज से वायु भर (पूरक) कर, उसे ब्रह्म-रन्ध्र से जोड़कर वहाँ स्थित चैतन्य-मय चन्द्र-मण्डल में श्वेत-वर्ण अमृत-बीज 'वं' का ध्यान कर कुम्भक से उस बीज का आवर्तन कर उससे उत्पन्न अमृत की धारा से अपने शरीर को लिप्त हुआ समझे और उस वायु का दाँएँ नथुने से रेचन करे। फिर दाँएँ नथुने से 'लं' बीज से वायु भर (पूरक) कर, उसे मूलाधार में स्थित पृथ्वी-मण्डल से उसे जोड़े और वहाँ पीत-वर्ण पृथ्वी-बीज 'लं' का ध्यान कर कुम्भक से उस बीज का आवर्तन कर उससे उत्पन्न तेज द्वारा अमृत से लिप्त भस्म को एकत्र कर उस वायु का बाँएँ नथुने से रेचन करे। फिर बाँएँ नथुने से माया-बीज (ह्रीं) से वायु भर (पूरक) कर, मूलाधार में स्थित विन्दु के मध्य में बाल-सूर्य के समान चमकीले माया-बीज 'ह्रीं' का ध्यान कर, कुम्भक से उस बीज का आवर्तन कर यह भावना करे कि उसके द्वारा हाथ, पैर आदि अङ्गों के साथ अपना शरीर प्रस्तुत हो गया है और उस वायु का दाँएँ नथुने से रेचन करे। इस प्रकार स्थूल शरीर को प्रस्तुत कर सूक्ष्म शरीर को निष्पन्न करे। यथा—

वहाँ पूर्वोक्त सहस्रार के कमल में स्थित परमात्मा की समस्त संसार-रचना की इच्छा से युक्त परब्रह्म-स्वरूपिणी शक्ति को 'ॐ ह्रीं नमः' मन्त्र का उच्चारण कर परमात्मा के पास से अपने स्थान में लाकर, उससे नाद-शक्ति को, उससे विन्दु-शक्ति को, प्रणव (ॐ) के द्वारा सृष्टि-भूता विन्दु-शक्ति के पास समस्त-संसार की सृष्टि की कारण-भूता कुण्डलिनी-शक्ति को प्रणव (ॐ) के द्वारा रेचन करे।

तब—

फा० ५

ॐ ह्रां सदा-शिवायाकाशाधिपतये शान्त्यतीता-कलात्मने नमः ।

इति प्राणान् शान्त्यतीता-सदा-शिवाकाशं श्रोत्र-शब्द-वक्तव्य-वचन-वाच आकाश-स्थाने स्थापयेत् । तत आकाश-मंडलात्—

उक्त मन्त्र से प्राण-शक्ति शान्त्यतीता व सदाशिव द्वारा आकाश की रचना कर श्रोत्र (कर्णेन्द्रिय), शब्द, वक्तव्य, वचन, वाणी को आकाश के स्थान में स्थापित करे । तब आकाश-मण्डल से—

ॐ ह्रै ईश्वराय वाय्वधिपतये शान्ति-कलात्मने नमः ।

इति मन्त्रेणापान-शान्तीश्वर-वायु-स्पृष्टव्य - स्पर्श-तद्-विषयानन्दोपस्थान् वायु-स्थाने स्थापयेत् । ततः—

उक्त मन्त्र से अपान-शक्ति शान्ति और ईश्वर द्वारा वायु की रचना कर स्पृष्टव्य (त्वगेन्द्रिय), स्पर्श, उसके विषय आनन्द को वायु के स्थान में स्थापित करे । तब—

ॐ ह्रूं रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्या-कलात्मने नमः ।

इति मन्त्रेण व्यान-विद्या-रुद्र-तेजश्चक्षु-रूप-विसर्जनीय-विसर्ग-पायून् अग्नि-स्थाने स्थापयेत् । ततः—

उक्त मन्त्र से व्यान-शक्ति विद्या और रुद्र द्वारा तेज (अग्नि) की रचना कर चक्षु इन्द्रिय, रूप, विसर्जनीय, विसर्ग और पायु इन्द्रिय को अग्नि के स्थान में स्थापित करे । तब—

ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठा-कलात्मने नमः ।

इति मन्त्रेणोदान-प्रतिष्ठा-विष्णु-जल-रसना-रस-दातव्या-दान-हस्तानपां स्थापयेत् । ततः—

उक्त मन्त्र से उदान-शक्ति प्रतिष्ठा और विष्णु द्वारा जल की रचना कर रसना (जिह्वा), रस, दातव्य, आदान और हस्त इन्द्रिय को जल के स्थान में स्थापित करे । तब—

ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्ति-कलात्मने नमः ।

इति मन्त्रेण समान-निवृत्ति-ब्रह्म-पृथिवी-घ्राण-गन्तव्य-गमन-क्रिया-पादेन्द्रियाणि पृथिवी-स्थाने स्थापयेत् । ततः—

उक्त मन्त्र से समान - शक्ति निवृत्ति और ब्रह्मा द्वारा पृथ्वी की रचना कर घ्राण(नासिका), गन्तव्य, गमन क्रिया और पैर इन्द्रिय को पृथ्वी के स्थान में स्थापित करे । तब—

प्रणवेन कुण्डलिनीं स्व-स्थाने स्थापयित्वा । नाद-शक्ति-विन्दु-शक्ति-परम-शक्तीनां प्रणवेन स्व-देह-व्याप्तिं विभाव्य 'सोहं'— इति मन्त्रेण ब्रह्म-रन्ध्रस्थ परमात्मनः सकाशात् कुण्डलिनीं जीवात्मानं च संहृत-वर्ण-वर्णादि-देवता-सहितमाज्ञादि-चक्रेषु तत्-तद्-वर्ण-वर्णादि-देवताः स्थापयन् हृदय-कमलमानीय । हृदय-कमले जीवात्मानं स्थापयित्वा । कुण्डलिनीं सुषुम्णा-मार्गेण मणि-पूरकादि-चक्रेषु तत्-तद्-वर्णादि-देवताः स्थापयन् मूलाधारं नीत्वा तत्र स्थापयेत् । ततः स्व-शरीरं निरस्त-समस्त-कलुषं तेजो-रूपं देवताराधन - योग्यं विभाव्य प्राण-प्रतिष्ठां कुर्यात् । तद् यथा—

प्रणव (ॐ) के द्वारा कुण्डलिनी को अपने स्थान में स्थापित कर यह भावना करे कि नाद - शक्ति, विन्दु - शक्ति और परम शक्ति से अपना शरीर व्याप्त हो गया है । तब 'सोऽहं' मन्त्र द्वारा ब्रह्म-रन्ध्र में स्थित परमात्मा के पास से कुण्डलिनी और जीवात्मा को उनमें निहित वर्ण और वर्ण-देवताओं के साथ लाकर आज्ञा आदि चक्रों में उनके वर्णों और देवताओं को क्रमशः स्थापित करते हुये, हृदय में ले आये । जीवात्मा को हृदय-कमल में स्थापित कर कुण्डलिनी को सुषुम्णा-मार्ग से, मणिपूरक आदि चक्रों में उनके वर्णों और वर्ण-देवताओं को स्थापित करते हुये, मूलाधार में ले जाकर वहाँ स्थापित करे । तब अपने शरीर को सभी पापों से रहित, तेजोरूप और देवोपासना के योग्य समझ कर प्राण-प्रतिष्ठा करे । यथा—

ॐ अस्य श्रीप्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्रस्य ब्रह्म - विष्णु-शिवाः ऋषयः, ऋग्-यजुः-सामानि छन्दांसि, परा-प्राण-शक्तिर्देवता, आं वीजं, ह्रीं शक्तिः, क्रीं कीलकं, मम श्रीभुवनेश्वर्यङ्गत्वेन प्राण-प्रतिष्ठार्थे विनियोगः ॥

इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा, न्यसेत्—

उक्त मन्त्र द्वारा हाथ जोड़कर ऋषि आदि का स्मरण कर उन्हें अपने शरीर में स्थापित करे । यथा—

शिरसि ब्रह्म-विष्णु-शिवेभ्यः ऋषिभ्यो नमः । मुखे ऋग्-यजुः-सामेभ्यश्छन्दोभ्यो नमः । हृदि परा-प्राण-शक्ति-देवतायै नमः । गुह्ये आं बीजाय नमः । पादयोः ह्रीं शक्तये नमः । नाभौ क्रों कीलकाय नमः ।

इति विन्यस्य 'मम प्राण-प्रतिष्ठार्थे विनियोगः' । इति कृताञ्जलिर्वदेत् । इति ऋष्यादि-न्यासः । अथ कर-न्यासः—

उक्त प्रकार ऋषि आदि को स्थापित कर हाथ जोड़कर कहे— 'मम प्राण-प्रतिष्ठार्थे विनियोगः ।'

यह ऋष्यादि-न्यास हुआ । अब कर-न्यास करे—

ॐ आं ह्रीं क्रों अं कं-४ आकाश-वाय्वग्नि-सलिल-पृथिव्यात्मने आं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ आं ह्रीं क्रों इं च-४ शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मने ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ आं ह्रीं क्रों उं टं-४ श्रोत्र-त्वक्-चक्षुर्जिह्वा-घ्राणात्मने उं मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ आं ह्रीं क्रों एं तं-४ वाक्-पाणि-पाद-पायूपस्थात्मने ऐं अनामिकाभ्यां हुं । ॐ आं ह्रीं क्रों ओं पं-४ वचनादान-विसर्ग-गमनानन्दात्मने औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् । ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं-४ मनो-बुद्ध्यहङ्कार-चित्तात्मने अः कर-तल-करपृष्ठाभ्यां फट् । इति कर-न्यासः । अथ षडङ्गः—

यह कर-न्यास हुआ । अब षडङ्ग-न्यास करे—

ॐ आं ह्रीं क्रों अं कं-४ आकाश-वाय्वग्नि-सलिल-पृथिव्यात्मने आं हृदयाय नमः । ॐ आं ह्रीं क्रों इं चं-४ शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा । ॐ आं ह्रीं क्रों उं टं-४ श्रोत्र-त्वक्-चक्षुर्जिह्वा-घ्राणात्मने उं शिखायै वषट् । ॐ आं ह्रीं क्रों एं तं-४ वाक् - पाणि - पाद - पायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुं । ॐ आं ह्रीं क्रों ओं पं-४ वचनादान-विसर्ग-

गमनानन्दात्मने औं नेत्र-त्रयाय वौषट् । ॐ आं ह्रीं क्रों अं
यं-४ मनो-बुद्धयहङ्कार-चित्तात्मने अः अस्त्राय फट् ।

इति षडङ्गः । ततो—

यह षडङ्ग-न्यास हुआ । तब—

नाभ्यादि-पाद-द्वयान्तं आं नमः । हृदयादि-नाभ्यन्तं ह्रीं
नमः । मूर्धादि-हृदयान्तं क्रों नमः । हृदयादि-कमल-मध्ये यं
त्वगात्मने नमः । पूर्व-दले रं असृगात्मने नमः । पश्चिम-दले
लं मांसात्मने नमः । आग्नेय-दले वं मेदसात्मने नमः । वाय-
व्य-दले शं अस्थ्यात्मने नमः । ईशान-दले षं मज्जात्मने नमः ।
नैऋत्य-दले सं शुक्रात्मने नमः । उत्तर - दले हं प्राणात्मने
नमः । दक्षिण-दले लं जीवात्मने नमः । पुनः कर्णिकायां क्षं
परमात्मने नमः ।

इति न्यसेत् । ततो ध्यानम्—

उक्त प्रकार न्यास करे । तब ध्यान करे—

रक्ताब्धि - पीतारुण - पद्म-संस्थां*,

पाशांकुशाविक्षु - शरा स - वाणान् ।

शूलं कपालं दधतीं कराब्जैः,

रक्तां त्रि-नेत्रां प्रणमामि देवीम् ॥

अर्थात् रक्त-सागर में पीत और अरुण कमल पर बैठी हुई, कर-
कमलों द्वारा पाश, अंकुश, वाणों सहित ईश का धनुष, शूल और
कपाल धारण किए रक्त-वर्णी, त्रिनेत्रा देवी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

इति ध्यात्वा, हृदि हस्तं निधाय, प्राण-प्रतिष्ठां कुर्यात्—

उक्त प्रकार ध्यान कर प्राण-प्रतिष्ठा करे—

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हौं हंसः सोऽहं
मम प्राणा इह प्राणाः । ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं...हं हौं हंसः
सोऽहं मम जीव इह स्थितः । ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं...हं हौं
हंसः सोऽहं मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि । ॐ आं ह्रीं

ॐ पाठान्तर—रक्ताब्धि-मध्ये

क्रों यं रं...हं हौं हंसः सोऽहं मम वाङ् - मनस्त्वक् - चक्षुः-
श्रोत्र-घ्राण-प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥

इति प्राण-प्रतिष्ठां त्रिर्जप्त्वा, निज-वपुर्ज्योतिर्मयं
ध्यात्वा, स्व-मूल-ऋष्यादि-स्मरणं कुर्यात् । यथा—

उक्त प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्र का जप तीन बार कर यह भावना करे
कि अपना शरीर ज्योतिर्मय हो गया है । तब अपने मूल-मन्त्र के
ऋषि आदि को स्मरण करे । यथा—

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरी-मन्त्र-राजस्य श्रीशक्ति ऋषिः,
गायत्री छन्दः, श्रीभुवनेश्वरी देवता, हं बीजं, ईं शक्तिः,
रकारः कीलकं, धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थे न्यासे विनियोगः ॥

इति कृतांजलिः स्मृत्वा, न्यसेत्—

हाथ जोड़कर उक्त विनियोग पढ़ते हुये ऋषि आदि का स्मरण
कर उनको अपने शरीर में स्थापित करे—

श्रीशक्ति-ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः
मुखे । श्रीभुवनेश्वरी-देवतायै नमः हृदि । हं बीजाय नमः
गुह्ये । ईं शक्तये नमः पादयोः । रं कीलकाय नमः नाभौ ।
धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थे न्यासे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु ।

इति ऋष्यादि-न्यासः ।

यह ऋष्यादि न्यास हुआ ।

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरी-त्र्यक्षरादि-मन्त्र-राजस्य श्री-
दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, श्रीभुवनेश्वरी देवता
ह्रीं बीजं, श्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकं, चतुर्विध-पुरुषार्थ-साधने
जपे विनियोगः ॥

इति कृतांजलिः स्मृत्वा, न्यसेत्—

श्रीभुवनेश्वरी के त्र्यक्षरादि मन्त्र-राज के ऋषि आदि को उक्त
प्रकार हाथ जोड़कर स्मरण करे । तब उन्हें स्थापित करे—

श्रीदक्षिणामूर्ति-ऋषये नमः शिरसि । पंक्तिश्छन्दसे नमः
मुखे । श्रीभुवनेश्वरी-देवतायै नमः हृदि । ह्रीं बीजाय नमः
गुह्ये । श्रीं शक्तये नमः पादयोः । क्लीं कीलकाय नमः नाभौ ।
चतुर्विध-पुरुषार्थ-साधने जपे विनियोगाय नमः सर्वांगेषु ।

इति ऋष्यादि-न्यासः ॥ अथ कर-न्यासः—

उक्त प्रकार ऋष्यादि न्यास हुआ । अब कर-न्यास करे—

हां ग्रंथुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ह्रूं
मध्यमाभ्यां वषट् । ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं । ह्रौं कनिष्ठि-
काभ्यां बौषट् । ह्रः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट् ।

इति कर-न्यासः ॥ अथ षडङ्गः —

उक्त प्रकार कर-न्यास हुआ । अब षडङ्ग-न्यास करे—

हां हृदयाय नमः । ह्रीं शिरसे स्वाहा । ह्रूं शिखायै
वषट् । ह्रैं कवचाय हुं । ह्रौं नेत्र-त्रयाय बौषट् । ह्रः
अस्त्राय फट् ।

इति स्व-मूल-षडङ्गं कृत्वाऽन्तर्मातृका - न्यासं कुर्याद् ।

यथा—तत्रादौ मातृका-प्राणायामो, यथा—

उक्त प्रकार अपने मूल-मन्त्र का षडङ्ग-न्यास कर अन्तर्मातृका-
न्यास करे । उसके लिये पहले मातृकाओं से प्राणायाम करे । यथा—

अं आं इं ईं...अं अः—इति पूरकं । कं खं...भं मं—
इति कुम्भकं । यं...हं लं क्षं—इति रेचकं विरचय्यान्तर्मातृका-
ऋष्यादि-स्मरणं विदधीत, यथा—

उक्त प्रकार पूरक, कुम्भक आदि कर अन्तर्मातृका के ऋषि आदि
का स्मरण करे । यथा—

ॐ अस्य श्रीअन्तर्मातृका - न्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः,
अव्यक्त-गायत्री छन्दः, श्रीअन्तर्मातृका - सरस्वती देवता,
हलो बीजानि, स्वराः शक्तयः, अव्यक्त कीलकं, मम
श्रीभुवनेश्वर्यङ्गत्वेनान्तर्मातृका-न्यासे विनियोगः ।

इति कृतांजलिः स्मृत्वा न्यसेत्—

उक्त प्रकार हाथ जोड़कर स्मरण करे। तब ऋषि आदि को अपने शरीर में स्थापित करे—

ॐ ब्रह्मा-ऋषये नमः शिरसि । अव्यक्त-गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । श्रीअन्तर्मातृका-सरस्वती-देवतायै नमः हृदि । हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः गुह्ये । स्वर-शक्तिभ्यो नमः पादयोः । अव्यक्त-कीलकाय नमः नाभौ । मम श्रीभुवनेश्वरी-पूजाङ्ग-त्वेनान्तर्मातृका-न्यासे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु ।

इति ऋष्यादि-न्यासः ॥ अथ कर-न्यासः—

उक्त प्रकार ऋष्यादि न्यास हुआ । अब कर-न्यास करे—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं कं-४ आं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ-३ इं चं ४ ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ-३ उं टं-४ ऊं मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ-३ एं तं-४ ऐं अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ-३ ओं पं-४ औं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ-३ अं यं-४ अंः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट् ।

इति कर-न्यासः । अथ षडङ्गः—

उक्त प्रकार कर-न्यास हुआ । अब षडङ्ग-न्यास करे—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं कं-४ आं हृदयाय नमः । ॐ-३ इं चं-४ ईं शिरसे स्वाहा । ॐ-३ उं टं-४ ऊं शिखायै वषट् । ॐ-३ एं तं-४ ऐं कवचाय हुं । ॐ-३ ओं पं-४ औं नेत्र-त्रयाय वौषट् । ॐ-३ अं यं-४ अंः अस्त्राय फट् । इति षडङ्गः ।

इस प्रकार षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे । यथा—

अथ ध्यानम्—

व्योमेन्दौ रसनार्ण - कर्णिकमर्चा द्वन्द्वैः स्फुरत्-केशरम् ।
पन्नान्तर्गत - पञ्च - वर्ग - यशलार्णादि-त्रि - वर्गं क्रमात् ॥
आशास्वस्त्रिषु लान्त-लाङ्गलि-युजा क्षौणी-पुरेणावृतम् ।
पद्मं कल्पितमत्र पूजयतु तां वर्णात्मिकां देवताम् ॥

अर्थात् व्योम (ह), इन्दु (स), 'औ' रसनार्ण (:) = 'हसौ' से युक्त । प्रदक्षिण-क्रम से अकारादि-स्वर-युगलों से केशर विभूषित । आगे के दल से पाँच दलों के मध्य में कर्णिकाभिमुख ककारादि पाँच वर्ग । शेष तीन दलों के मध्य में कमशः य-वर्ग (य, र, ल, व), श-वर्ग (श, ष, स, ह) और ङ-वर्ग (ङ, क्ष) । आशा अर्थात् दिशाओं और कोणों में क्रमशः लान्त (व) और लाङ्गली (ठ) द्वारा युक्त भूपुर से आवृत श्वेत-पद्म की भावना करे । इसी यन्त्र में वर्णात्मिका देवता की पूजा करे ।

पाठान्तर—

वर्णा त्वं शिरसि स्थितं विष्णु-गद-प्रध्वंसि मृत्युञ्जयम् ॥

'श्रीभुवनेश्वरी - रहस्य' की पाण्डुलिपि में ध्यान का चौथा चरण उक्त प्रकार है, जिसका अर्थ है—

हे वर्ण (मातृकाक्षर) ! तुम सब शिर में स्थित होकर सभी विषों और रोगों को मृत्युञ्जय के समान नष्ट करते हो ।

इति वर्ण-कमलं शिरसि ध्यात्वा, मूलाधार-ध्वनिं श्रुत्वा, प्रबुध्य कुण्डलीं ज्वलत्-पावक - सङ्काशां सूक्ष्म-तेजः-स्वरूपिणीं, मूलाधाराच्छिरः-पद्मं स्पृशन्तीं विद्युदाकृतिं । तथा स्पृष्ट-शिरः पद्मादमृतौघ-स्वरूपिणः निर्गतान् मातृका-वर्णान् सुषुम्णा-वर्त्मना तनुं व्यापयित्वा स्थितान् सर्वानेवं ध्यात्वा प्रविन्यसेत् । इत्यन्तर्मातृकां ध्यात्वा न्यसेद् । यथा—

उक्त प्रकार वर्णात्मक कमल का ध्यान कर मूलाधार में सोई हुई, जलती हुई अग्नि के समान आभावाली, सूक्ष्म तेज-स्वरूपा कुण्डलिनी की ध्वनि सुनकर, उसे जाग्रत् करे । फिर विजली के समान आकृतिवाले शिरस्थ कमल को मूलाधार से स्पर्श कराये । शिर के कमल के स्पर्श से अमृत-राशि के समान निकलते हुये मातृका-वर्ण सुषुम्णा-मार्ग से होते हुये सारे शरीर को व्याप्त कर विराजमान हो गये हैं, ऐसा ध्यान करे । तब निम्न प्रकार न्यास करे—

अं नमः आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लृं एं ऐं ओं औं

अं अं नमः—इति कण्ठे षोडश-दले ध्यानेन न्यसेत् ।

'अं, आं' इत्यादि प्रत्येक स्वर में 'नमः' जोड़कर कण्ठ-स्थित षोडश-दल में ध्यान-पूर्वक न्यास करे ।

कं नमः खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं नमः—इत्यनाहते हृदये द्वादश-दले ।

‘कं नमः, खं नमः’ इत्यादि का न्यास हृदय-स्थित द्वादश-दल अनाहत चक्र में करे ।

ङं नमः ढं णं तं थं दं धं नं पं फं नमः इति नाभौ दश-दले ।

बं नमः भं मं यं रं लं नमः इति लिङ्ग-मूले षट्-दले ।

वं नमः शं षं सं नमः इति मूलाधारे चतुर्दले ।

हं नमः क्षं नमः इति भ्रू-मध्ये द्वि-दले । इति मूलान्त-मर्तृका-न्यासः ॥

नाभि के दश-दल कमल में, लिङ्ग-मूल के षट्-दल कमल में, मूलाधार के चतुर्दल कमल में और भ्रू-मध्य के द्वि-दल कमल में क्रमशः उक्त व्यञ्जनों का न्यास करे । यह मूल अन्तर्मर्तृका-न्यास हुआ । अब सृष्टि-क्रम से अन्तर्मर्तृका-न्यास करे । यथा—

अथ सृष्टि-क्रमेणान्तर्मर्तृका-न्यासः — वं नमः शं षं सं नमः इति मूलाधारे चतुर्दले । बं नमः भं मं यं रं लं नमः इति स्वाधिष्ठाने षट्-दले । ङं नमः ढं णं तं थं दं धं नं पं फं नमः इति मणिपूरे दश-दले । कं नमः खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं नमः इत्यनाहते द्वादश-दले । अं नमः आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लृं एं ऐं ओं औं अं अं नमः इति विशुद्धौ कण्ठे । हं नमः क्षं नमः इत्याज्ञा-चक्रे द्वि-दले । इति सृष्टि-क्रमेणान्तर्मर्तृका-न्यासः ॥

अब स्थिति-क्रम से न्यास करे । यथा—

अथ स्थिति-क्रमः— ङं नमः ढं णं तं थं दं धं नं पं फं नमः इति मणिपूरे नाभौ । बं नमः भं मं यं रं लं नमः इति स्वाधिष्ठाने लिङ्ग-मूले । वं नमः शं षं सं नमः इति मूलाधारे । हं नमः क्षं नमः । इत्याज्ञा-चक्रे भ्रू-मध्ये । अं नमः आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लृं एं ऐं ओं औं अं अं नमः

नमः इति विशुद्धौ कण्ठे । कं नमः खं गं घं ङं चं छं जं झं जं अं टं ठं नमः इत्यनाहते वक्षसि । इति स्थिति-क्रमेणान्तर्मातृका-न्यासः ॥

अब संहार-क्रम से न्यास करे । यथा—

अथ संहार-क्रमः—हं नमः क्षं नमः इत्याज्ञा-चक्रे द्वि-दले । वं नमः शं षं सं नमः—इति मूलाधारे चतुर्दले । बं नमः भं मं यं रं लं नमः—इति स्वाधिष्ठाने षड्-दले । ङं नमः ढं णं तं थं दं धं नं पं फं नमः—इति मणिपूरे दश-दले । कं नमः खं गं घं ङं चं छं जं झं जं अं टं ठं नमः—इत्यनाहते द्वादश-दले । अं नमः आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लृं एं ऐं ओं औं अं नमः—इति विशुद्धौ षोडश-दले । इति संहार - क्रमेणान्तर्मातृका - न्यासः ॥ इत्यन्तर्मातृका-न्यासः ॥

इस प्रकार सृष्टि-स्थिति-संहार-क्रम सहित यह अन्तर्मातृका-न्यास पूर्ण हुआ ।

अथ बहिर्मातृका-न्यासः । तत्र ऋष्यादिकमन्तर्मातृका-वद् ध्यानं कुर्याद् । यथा—

अब बहिर्मातृका-न्यास के लिये अन्तर्मातृका-न्यास के समान ध्यान करे । यथा—

ॐ पञ्चाशद्वर्ण-भेदैर्विहित-वदन-दोः-पाद-हृत्कुक्षि-वक्षोदेशाम् ।

भास्वत्कपर्दा कलित - शशि - कलामिन्दु - कुन्दावदाताम् ॥

अक्षत्रक्-कुम्भ-चिन्तां लिखित-वर-करां त्रीक्षणां पद्म-संस्थां ।

अच्छाकल्पामतुच्छ-स्तन-जघन-भरां भारतीं तां नमामि ॥

अर्थात् पचास वर्णों के अंशों से जिनके मुख, हाथ, पैर, हृदय, कुक्षि और वक्ष-देश शोभित हैं, जिनके ललाट पर उज्ज्वल कुन्द-पुष्प की आभावाली चन्द्र-कला विराजमान है, हाथों में जो अक्ष-माला, कलश, अभय और वर-मुद्रा धारण किये हैं, जो त्रिनेत्रा हैं और कमल

पर बैठी हैं, जो पुष्ट उरोजों और जाँघों से सम्पन्न हैं, उन भारती देवी को मैं नमन करता हूँ ।

पाठान्तर—१ त्र्यक्षणां : त्र्यक्षरां, २ मतुच्छ : मनुच्च

इति ध्यात्वा मनसा सम्पूज्य 'अं आं...अं अः कं...ङं...
चं...ङं टं...णं तं...नं पं...मं यं...हं लं क्षं ह्रीं इत्युच्चार्य
स्व - देहे व्यापकं कृत्वा बहिर्मर्तृकान्यासं कुर्याद् । यथा—
तत्रादौ सारस्वतेन मार्गेण इत्युक्त-रीत्यादौ संहार-क्रमेण बहि-
र्मर्तृकान्यासः । यथा—

उक्त प्रकार ध्यान कर, मानसिक पूजन कर 'अं आं...हं लं क्षं'
से अपने शरीर में व्यापक न्यास करे । तब बहिर्मर्तृकान्यास करे ।
तब सारस्वत-मार्ग से पूर्वोक्त विधि से पहले संहार-क्रम से बहि-
र्मर्तृकान्यास करे । यथा—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्षंः परमात्मने नमः—नाभ्यादि मूर्धान्तं ।
लं जीवात्मने नमः—पादादि-नाभ्यन्तं । हं प्राणात्मने नमः—
हृदादि- वाम - पादान्तं । सं शुक्रात्मने नमः—हृदादि - दक्ष-
पादान्तं । षं मज्जात्मने नमः—हृदादि-वाम-करान्तं । शं
अस्थ्यात्मने नमः हृदादि-दक्ष-करान्तं । वं मेदसात्मने नमः—
वामांसे । लं मांसात्मने नमः ककुदि । रं असृगात्मने नमः—
दक्षांसे । यं त्वगात्मने नमः—वक्षसि । मं नमः—उदरे ।
भं नमः नाभौ । बं नमः—पृष्ठे । फं नमः—वाम-पार्श्वे ।
पं नमः—दक्ष-पार्श्वे । नं नमः—वाम-पादांगुल्यग्रेषु । धं नमः—
वाम-पादांगुलि-मूलेषु । दं नमः—वाम-गुल्फे । थं नमः—
वाम जानुनि । तं नमः—वाम-पाद-कक्षे । णं नमः—दक्ष-
पादांगुल्यग्रेषु । ढं नमः—दक्ष-पादांगुलि-मूलेषु । डं नमः—
दक्ष-गुल्फे । ठं नमः—दक्ष जानुनि । टं नमः—दक्ष-पाद-
कक्षे । जं नमः—वाम-पाण्यांगुल्यग्रेषु । झं नमः—वाम-पाण्यां-
गुलि-मूलेषु । जं नमः—वाम-मणि-बन्धे । छं नमः—वाम कूर्परे ।

चं नमः—वाम-पाणि-कक्षे । डं नमः—दक्ष-पाण्यंगुल्यग्रेषु । घं
नमः दक्ष-पाण्यंगुलि-मूलेषु । गं नमः दक्ष मणि-बन्धे । खं
नमः दक्ष-कूर्परे । कं नमः दक्ष-पाणि-कक्षे । अः नमः मुखाभ्य-
न्तरे । अं नमः ललाटे । ओं नमः अधो-दन्त-पंक्तौ । औं
नमः ऊर्ध्व-दन्त-पंक्तौ । ऐं नमः अधरे । एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे ।
लृं नमः वाम-गण्डे । लृं नमः दक्ष-गण्डे । ऋं नमः वाम-
नासिके । ॠं नमः दक्ष-नासिके । ऊं नमः वाम-कर्णे । उं
नमः दक्ष-कर्णे । ईं नमः वाम-नेत्रे । इं नमः दक्ष-नेत्रे ।
आं नमः मुख-वृत्ते । अं नमः शिरसि ।

इति संहार-क्रमेण मातृका-न्यासः ॥ अथ सृष्टि-क्रमेण
बहिर्मातृका-न्यासः—

उक्त प्रकार से संहार-क्रम से न्यास है, जो स्पष्ट है । अब सृष्टि-
क्रम से बहिर्मातृका - न्यास करे—

अं नमः शिरसि । आं नमः मुख-वृत्ते । इं नमः दक्ष-
नेत्रे । ईं नमः वाम-नेत्रे । उं नमः दक्ष-कर्णे । ऊं नमः
वाम-कर्णे । ॠं नमः दक्ष-नासिके । ऋं नमः वाम-नासिके ।
लृं नमः दक्ष-गण्डे । लृं नमः वाम-गण्डे । ऐं नमः ऊर्ध्वोष्ठे ।
ऐं नमः अधरे । ओं नमः ऊर्ध्व-दन्त-पंक्तौ । औं नमः अधो-
दन्त-पंक्तौ । अं नमः ललाटे । अः नमः मुखाभ्यन्तरे ।
कं नमः दक्ष-पाणि-कक्षे । खं नमः दक्ष-कूर्परे । गं नमः दक्ष-
मणि-बन्धे । घं नमः दक्ष-पाण्यंगुलि-मूलेषु । डं नमः दक्ष-
पाण्यंगुल्यग्रेषु । चं नमः वाम-पाणि-कक्षे । छं नमः वाम-
कूर्परे । जं नमः वाम-मणि-बन्धे । झं नमः वाम-पाण्यंगुलि-
मूलेषु । ञं नमः वाम-पाण्यंगुल्यग्रेषु । टं नमः दक्ष-पाद-कक्षे ।
ठं नमः दक्ष-जानुनि । डं नमः दक्ष-गुल्फे । ढं नमः दक्ष-
पादांगुलि-मूलेषु । णं नमः दक्ष-पादांगुल्यग्रेषु । तं नमः वाम-

पाद-कक्षे । थं नमः वाम-जानुनि । दं नमः वाम-गुल्फे ।
 धं नमः वाम-पादांगुलि-मूलेषु । नं नमः वाम-पादांगुल्यग्रेषु ।
 पं नमः दक्ष-पार्श्वे । फं नमः वाम-पार्श्वे । बं नमः पृष्ठे ।
 भं नमः नाभौ । मं नमः उदरे । यं त्वगात्मने नमः हृदि ।
 रं असृगात्मने नमः दक्षांसे । लं मांसात्मने नमः ककुदि ।
 वं मेदसात्मने नमः वामांसे । शं अस्थ्यात्मने नमः हृदादि-
 दक्ष-पाण्यन्तं । षं नमः मज्जात्मने नमः हृदादि-वाम-पाण्यन्तं
 सं शुक्रात्मने नमः हृदादि-दक्ष-पादान्तं । हं प्राणात्मने नमः
 हृदादि-वाम-पादान्तं । लं जीवात्मने नमः पादादि-नाभ्यन्तं ।
 क्षं परमात्मने नमः नाभ्यादि-मूर्ध्नि ।

इति सृष्टि-क्रमेण मातृका-न्यासः । अथ स्थिति-क्रमेण
 मातृका-न्यासः—

उक्त प्रकार से सृष्टि-क्रम से मातृका-न्यास कर स्थिति-क्रम से
 मातृका-न्यास करे—

डं नमः दक्ष-गुल्फे । ढं नमः अंगुलि-मूले । णं नमः अंगु-
 ल्यग्रे । तं नमः वामोरौ । थं नमः जानुनि । दं नमः गुल्फे ।
 धं नमः अंगुलि-मूले । नं नमः अंगुल्यग्रे । पं नमः दक्ष-पार्श्वे ।
 फं नमः वाम-पार्श्वे । बं नमः पृष्ठे । भं नमः नाभौ । मं नमः
 उदरे । यं त्वगात्मने नमः हृदि । रं असृगात्मने नमः दक्षांसे ।
 लं मांसात्मने नमः हृदादि-वाम-पाण्यन्तं । वं मेदसात्मने
 नमः वामांसे । शं अस्थ्यात्मने नमः हृदादि-दक्ष-पाण्यन्तं ।
 षं मज्जात्मने नमः हृदादि-वाम-पाण्यन्तं । वं मेदसात्मने
 नमः वामांसे । शं अस्थ्यात्मने नमः हृदादि-दक्ष-पाण्यन्तं ।
 षं मज्जात्मने नमः हृदादि-वाम-पाण्यन्तं । सं शुक्रात्मने नमः
 हृदादि-दक्ष-पादान्तं । हं प्राणात्मने नमः हृदादि-वाम-पादा-
 न्तं । लं जीवात्मने नमः पादादि-नाभ्यन्तं । क्षं परमात्मने

नमः नाभ्यादि-मूर्धान्ति । अं नमः शिरसि । आं नमः मुख-
वृत्ते । इं नमः दक्ष-नेत्रे । ईं नमः वाम-नेत्रे । उं नमः दक्ष-
कर्णे । ऊं नमः वाम-कर्णे । ऋं नमः दक्ष-नासिके । ॠं नमः
वाम-नासिके । लृं नमः दक्ष-गण्डे । ॡं नमः वाम-गण्डे ।
एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे । ऐं नमः अधरोष्ठे । ओं नमः ऊर्ध्व-
दन्त-पंक्तौ । औं नमः अधोदन्त-पंक्तौ । अं नमः ललाटे ।
अं नमः मुखाभ्यन्तरे । कं नमः दक्ष-पाणि-कक्षे । खं नमः
कूर्परे । गं नमः मणि-बन्धे । घं नमः अंगुलि-मूले । ङं नमः
अंगुल्यग्रे । चं नमः वाम-पाणि-कक्षे । छं नमः कूर्परे ।
जं नमः अंगुलि - मूले । झं नमः अंगुल्यग्रे । टं नमः
दक्षोरौ । ठं नमः जानुनि ।

इति स्थिति-क्रमेण मातृका-न्यासः । ततः समस्त-
मातृकां स्व-मूलं चोच्चार्य त्रिव्यापकं कुर्यात् । एष एव
मातृका-न्यासः एष्वेव स्थानेषु न्यसेत् । इति व्यापक-मातृका-
न्यासः ।

उक्त प्रकार से स्थिति-क्रम से मातृका-न्यास करे । तब समस्त-
मातृका और अपने मूल-मन्त्र का उच्चारण कर उससे तीन बार
व्यापक न्यास करे ।

अब हल्लेखा अर्थात् 'ह्रीं', श्री-बीज (श्रीं), काम-बीज (क्लीं),
त्रि-बीज (ह्रीं श्रीं क्लीं), हंस (ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसः), वाग्भव (ऐं),
माया (ह्रीं), श्री-बीज (श्रीं), तार (ॐ), चतुस्तार (ॐ ऐं ह्रीं श्रीं),
वाला (ऐं क्लीं सौः), परा (सौः) और मूल-विद्या (मूल-मन्त्र अर्थात्
गुरु से प्राप्त मन्त्र) से प्रत्येक मातृका-वर्ण को सम्पुटित कर मातृका
के स्थानों में न्यास करे । यथा—

हल्लेखादि-मातृका-न्यासः—ह्रीं अं ह्रीं नमः शिरसि
इत्यादि ह्रीं क्षं ह्रीं परमात्मने नमः इत्यन्तं शुद्ध-मातृका-
स्थानेषु न्यसेत् ।

श्री-बीजादि मातृका-न्यासः—श्रीं अं श्रीं नमः शिरसि
इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

काम-बीजादि मातृका-न्यासः—क्लीं अं क्लीं नमः
शिरसि इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

त्रि-बीजादि मातृका-न्यासः—ह्रीं श्रीं क्लीं अं क्लीं श्रीं
ह्रीं नमः शिरसि इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

हंस-मातृका-न्यासः—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हंसः अं हंस श्री ह्रीं
ऐं ॐ नमः इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

वाग्भव-पुटित-मातृका-न्यासः—ऐं अं ऐं नमः शिरसि
इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

माया-पुटित-मातृका-न्यासः—ह्रीं अं ह्रीं नमः शिरसि
इत्यादि ह्रीं क्षं ह्रीं परमात्मने नमः इत्यन्तं न्यसेत् ।

श्री-बीज-पुटित-मातृका-न्यासः—श्रीं अं श्रीं नमः
शिरसि इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

तार-पुटित-मातृका-न्यास—ॐ अं ॐ नमः शिरसि
इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

चतुस्तार-पुटित-मातृका-न्यासः—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं
श्रीं ह्रीं ऐं ॐ नमः शिरसि इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

बाला-सम्पुटित-मातृका-न्यास—ऐं क्लीं सौः अं सौः
क्लीं ऐं नमः शिरसि इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

परा-सम्पुटित-मातृका-न्यासः—सौं अं सौं नमः शिरसि
इत्यादि क्षान्तं न्यसेत् ।

मूल-विद्या-सम्पुटित-मातृका-न्यासः—ॐ मूल-विद्या-
मुच्चार्य अं नमः पुनर्मूल-विद्यामुच्चार्य नमः शिरसि इत्यादि
क्षान्तं न्यसेत् ।

अब प्रणवोत्थ-कला-मातृका न्यास करे, जिसके विनियोगादि
निम्न प्रकार हैं—

सूर्य-मण्डल से तीर्थों का आवाहन कर अपने सामने कल्पित तीर्थ की पूजा कर सूर्य-मण्डल के सर्वानन्द-मय तीर्थ-क्षेत्र में तीर्थ-शक्ति का ध्यान करे। यथा—

सर्वानन्द-मयी, समस्त पापों को नष्ट करनेवाली, चन्द्र-प्रभा, त्रिनेत्रा, ऊपर के दो हाथों में क्रमशः पाश और सृणि तथा नीचे के दो हाथों में अमृत-पूर्ण कुम्भ और श्रेष्ठ श्वेत अक्ष-माला धारण करनेवाली, गङ्गा और सिन्धु—इन दो नदियों के सहित श्री तीर्थ-शक्ति की मैं वन्दना करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान कर 'ॐ नमो भगवति, अम्बे, अम्बिके' आदि मन्त्र द्वारा तीर्थ-जल को सात बार अभिमन्त्रित कर 'ह्रीं' से उसे आलोडित कर, अमृतेश-मुद्रा से उसका अमृतीकरण कर 'ॐ आत्म-तत्त्वात्मने नमः' आदि मन्त्रों से तीन तत्त्वों को उस जल में स्थापित कर, उसमें अपने इष्ट-यन्त्र की भावना करे। तब हृदय-कमल पर इष्ट-देवता का आवाहन कर षडङ्ग-मन्त्रों से सकलीकरण कर मूल-मन्त्र से तर्पण कर, योनि-मुद्रा द्वारा मूल-मन्त्र से आठ बार अभिमन्त्रित कर मूल-मन्त्र का स्मरण करते हुये तीन बार डुबकी लगाये। तब मूल-मन्त्र का जप करते हुये कुम्भ-मुद्रा से अपने शिर का तीन बार अभिषिचन कर मूल-मन्त्र से देवी का तीन बार तर्पण कर 'मूलं आत्म-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा' आदि मन्त्रों से तीन बार आचमन करे।

इसके बाद जल से बाहर निकल कर तट पर चढ़कर धुले हुये वस्त्र पहने और त्रिपुण्ड्र या ऊर्ध्व-पुण्ड्र तिलक लगाकर वैदिक सन्ध्या कर तान्त्रिक सन्ध्या करे—यही स्नान की विधि है।

सन्ध्या के लिये पहले पूर्व-वत् आचमन कर त्रिखण्डा-मुद्रा बाँध कर प्राणायाम, ऋष्यादि कर, षडङ्ग-न्यासों को कर अपने सामने घेनु-मुद्रा द्वारा उसी प्रकार निर्मित तीर्थ-जल का अमृतीकरण कर, मूल-मन्त्र से आठ बार उसे अभिमन्त्रित कर, उस जल से 'अं नमः, आं नमः' इत्यादि मातृकाक्षरों द्वारा अपने शिर का प्रोक्षण कर, मूल-मन्त्र द्वारा पुनः तीन बार प्रोक्षण कर दाएँ हाथ में जल लेकर उसे बाँएँ से ढँकें और 'लं वं रं यं हं'— इन पाँच भौतिक मन्त्रों द्वारा सात बार उसे अभिमन्त्रित कर, मूल-मन्त्र द्वारा तीन बार अभिमन्त्रित करे। फिर उस जल के बिन्दुओं द्वारा बाएँ हाथ की तत्त्व-मुद्रा से मूल मन्त्र द्वारा अपने शिर का तीन बार प्रोक्षण कर शेष जल को बाँएँ

हाथ में रख कर तेजो-रूप उस जल को इडा नाड़ी द्वारा खींच कर अपने देह के भीतर सभी पापों को धोने की भावना कर, उस जल को काला हुआ समझे और पिङ्गला नाड़ी द्वारा उसे बाहर निकला हुआ मान कर, पुनः अपने दाएँ हाथ में लेकर, अपने बाएँ भाग में जलती हुई वज्र-शिला का ध्यान कर, उसे पाशुपतास्त्र-मन्त्र—‘ॐ श्लीं पशुं हुं फट्’—द्वारा उस शिला पर पटक दे । तब दोनों हाथों को धोकर, मूल-मन्त्र से जल लेकर यह भावना करे कि प्रवहमान नाड़ी से सहस्र-दल का परमामृत आकर उसमें मिल गया है । तब उस जल द्वारा—

‘ॐ अमृत-मालिनि ! स्वाहा’ इति कुशैः स्व-शिरः त्रिः सम्प्रोक्ष्य—

‘ॐ अमृत-मालिनि ! स्वाहा’—इस मन्त्र से कुशों के द्वारा अपने शिर का तीन बार प्रोक्षण कर—

‘ॐ आत्म-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा, ॐ विद्या-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा, ॐ शिव-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा । ॐ शिव-तत्त्वं स्वाहा, ॐ विद्या-तत्त्वं स्वाहा, ॐ आत्म-तत्त्वं स्वाहा । ॐ आत्म-तत्त्वं स्वाहा, ॐ विद्या-तत्त्वं स्वाहा, ॐ शिव-तत्त्वं स्वाहा’ इति जलेन नवधाऽऽचम्य, ‘मूलं ॐ सर्व-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा’, इति त्रिराचम्य, जलमञ्जलिनाऽऽदायोत्थाय ।

‘ॐ आत्म-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा’ इत्यादि मन्त्रों से नौ बार आचमन कर ‘मूलं ॐ सर्व-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा’ से तीन बार आचमन करे । तब अञ्जलि में जल लेकर खड़े होकर—

‘ॐ ह्रां ह्रीं हंसः श्रीमार्तण्ड-भैरवाय प्रकाश-शक्ति-सहिताय इदमर्घ्यं परिकल्पयामि स्वाहा’ इति त्रिरर्घ्यं कुल-सूर्याय दत्त्वा, हृत्-पद्मात् सूर्य-मण्डले मूल-देवीं नीत्वा, तत्र, विधि-वद् ध्यात्वा—

‘ॐ ह्रां ह्रीं हंसः’ इत्यादि मन्त्र से कुल-सूर्य को तीन बार अर्घ्य देकर हृदय-कमल से इष्ट-देवी को सूर्य-मण्डल में ले जाकर वहाँ विधि-पूर्वक उनका ध्यान कर—

‘धं धनदायै विद्महे श्रीरति-प्रियायै धीमहि ह्रीं स्वाहा
शक्तिः प्रचोदयात्’ इति गायत्र्या अथवा—

‘धं धनदायै’ इत्यादि गायत्री मन्त्र से अथवा—

‘ऐं हल्लेखायै विद्महे ह्रीं भुवनायै धीमहि श्रीं तन्नः
शक्तिः प्रचोदयात्’ अनया मूल-विद्यायाः च गायत्र्या चतसृषु
सन्ध्यासु देव्यै अर्घ्यं सूर्य-बिम्बे दत्वा, ततश्चतसृषु सन्ध्यासु
क्रमशः मूलाधार-हृदादि-ब्रह्मरन्ध्रेभ्यो देवी-तेजः समाकृष्य,
कल्पित-वह्नि-सूर्य-चन्द्र-तारा-मण्डलेषु निक्षिप्य, तत्र बाल-
यौवन-प्रौढ-चिद्-रूपां देवीं ध्यात्वा ।

‘ऐं हल्लेखायै विद्महे’ इत्यादि मूल-विद्या की गायत्री से चारों
सन्ध्याओं में देवी को सूर्य-मण्डल में अर्घ्य अर्पित करे । तब चारों
सन्ध्याओं में क्रमशः मूलाधार, हृदय आदि ब्रह्म-रन्ध्रों से देवी-तेज
को आकर्षित कर, कल्पित अग्नि, सूर्य, चन्द्र और तारा-मण्डलों में
उसे फेंक कर, वहाँ बाला, युवा और प्रौढा चैतन्य-रूपा देवी का
ध्यान कर प्रातः, मध्याह्न, सायं और अर्द्ध-रात्रि में क्रमशः तिम्न
गायत्री-मन्त्रों द्वारा उन्हें अर्घ्य अर्पित करे—

ऐं हल्लेखायै विद्महे भुवनायै धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचो-
दयात्—इति प्रातः,

ह्रीं हल्लेखायै विद्महे भुवनायै धीमहि तन्नः शक्तिः
प्रचोदयात्—इति मध्याह्ने,

श्रीं हल्लेखायै विद्महे भुवनायै तन्नः शक्तिः प्रचो-
दयात्—इति सायं ।

ऐं हल्लेखायै विद्महे ह्रीं भुवनायै धीमहि तन्नः शक्तिः
प्रचोदयात्—इत्यर्द्ध-रात्रे ।

इति स्व-स्व-गायत्र्याऽर्घ्यं दत्वा, यथा-शक्ति जप्त्वा,
प्राणायाम-ऋष्यादि-कर-षडङ्ग-न्यासान् विधाय, यथा-शक्ति
मूलं संजप्य, स्व-स्व - गायत्रीमपि जप्त्वा, मूल - गायत्रीं च
जप्त्वा, पुनरपि प्राणायाम - ऋष्यादि-कर-षडङ्गादिना जपं

समर्प्य, मण्डलेभ्यो देवी-तेजः स्व-स्व-स्थाने देवीं च हृदि समानीय ध्यायेत् । इति सन्ध्या-विधिः ॥

उक्त प्रकार अपनी-अपनी गायत्री से अर्घ्य देकर, यथा-शक्ति जप कर, प्राणायाम-पूर्वक ऋष्यादि, कर और षडङ्ग-न्यासों को कर, यथा-शक्ति मूल-मन्त्र का जप कर, अपनी-अपनी गायत्री का भी जप कर, और मूल गायत्री का भी जप कर, पुनः प्राणायाम-पूर्वक ऋष्यादि, कर, षडङ्ग-न्यासों से जप समर्पित कर, मण्डलों के प्रति देवी-तेज को अपने-अपने स्थान पर और देवी को अपने हृदय में लाकर ध्यान करे । यह सन्ध्या की विधि हुई ।

अथ तर्पणं । तत्र पूर्ववदाचम्य प्राणायाम - ऋष्यादि-कर-षडङ्ग-न्यासादि कृत्वा, तीर्थं पूर्व-वदावाह्य, मूलेन जलं सप्तधाऽमृत-मुद्रयाऽमृतीकृत्य, तत्र जले यन्त्रं ध्यात्वा, तत्र देवीं हृदयात् स-परिवारामानीय, षडङ्ग-योगेन सकली-कृत्य, कुण्डलिन्याः प्रयोगेनामृतेनाभिषिच्य, विधि-वत् प्रपूज्य ।

अब तर्पण करे । पहले पूर्व-वत् आचमन करे । फिर प्राणायाम और ऋष्यादि, कर-षडङ्ग-न्यासादि कर पूर्व-वत् तीर्थों का आवाहन कर मूल-मन्त्र से सात बार जल को अभिमन्त्रित कर उसे अमृत-मुद्रा से अमृत बनाकर उस जल में इष्ट-यन्त्र की भावना कर अपने हृदय से स-परिवार इष्ट-देवी का आवाहन कर षडङ्ग-मन्त्रों से उनका सकलीकरण करे और कुण्डलिनी-प्रयोग से प्राप्त अमृत द्वारा उनका अभिषिञ्चन कर विधि-पूर्वक उनकी पूजा कर—

ऐशान्यां—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अमुकानन्द - नाथ - भैरव-स्तृप्यतां । वह्नौ—परम-गुरुं० । नैऋत्यां—परमेष्ठी-गुरुं० । वायव्ये परमाचार्यं० । त्रिः सकृद् वा सन्तर्प्य विन्दौ—‘मूलं श्रीभुवनेश्वरी भगवती सेश्वरा सवाहना सपरिकरा तृप्यतां’ इति त्रिः सन्तर्प्य, परिवार-देवताः सन्तर्पयेद् । यथा—

ईशान कोण में श्रीगुरुदेव का, आग्नेय कोण में परम गुरु का, नैऋत्य कोण में परमेष्ठी गुरु का और वायव्य कोण में परमाचार्य का तीन या एक बार तर्पण कर विन्दु में भगवती श्री भुवनेश्वरी का तीन बार तर्पण कर परिवार-देवताओं का तर्पण करे । यथा—

हां हृदयं तृप्यतां, हौं शिरस्तृप्यतां, हूं शिखा तृप्यतां,
हैं कवचं तृप्यतां, हौं नेत्र-त्रयं तृप्यतां, हः अस्त्रं तृप्यतां ।
हौं हल्लेखा तृप्यतां, ऐं गगना तृप्यतां, उं रक्ता तृप्यतां, इं
करालिका तृप्यतां, औं महौचछुमा तृप्यतां, गं गंगा तृप्यतां, यं
यमुना तृप्यतां, गायत्री-सहित-ब्रह्मा तृप्यतां, सं सरस्वती
तृप्यतां, सावित्री-सहित-विष्णुस्तृप्यतां, सरस्वती - सहित-
रुद्रस्तृप्यतां, लक्ष्मी-सहित-कुबेरस्तृप्यतां, रति-सहित-मदन-
स्तृप्यतां, पुष्टि-सहित-विघ्नराजस्तृप्यतां, शङ्ख-निधिस्तृप्यतां,
पद्म-निधिस्तृप्यतां, अनंग-कुसुमा तृप्यतां, अनंग-कुसुमातुरा
तृप्यतां, अनंग-मदना तृप्यतां, अनंग-मदनातुरा तृप्यतां, अनंग-
मेखला तृप्यतां, भुवन-पालातृप्यतां, गगन-वेगा तृप्यतां, शशि-
रेखा तृप्यतां, कराली तृप्यतां, विकराली तृप्यतां, उमा, तृप्यतां,
सरस्वती तृप्यतां, श्रीस्तृप्यतां, दुर्गा तृप्यतां, उषास्तृप्यतां
लक्ष्मीस्तृप्यतां, श्रुतिस्तृप्यतां, स्मृतिस्तृप्यतां, धृतिस्तृप्यतां,
श्रद्धा तृप्यतां, मेधा तृप्यतां, मतिस्तृप्यतां, कान्तिस्तृप्यतां ✽,
आर्या तृप्यतां, ब्राह्मी तृप्यतां, माहेश्वरी तृप्यतां, कौमारी
तृप्यतां, वैष्णवी तृप्यतां, वाराही तृप्यतां, ऐन्द्री तृप्यतां,
चामुण्डा तृप्यतां, महा-लक्ष्मीस्तृप्यतां, अनंग-रूपा तृप्यतां,
अनंग-मदना तृप्यतां, अनंग-मदनातुरा तृप्यतां, भुवन-वेगा
तृप्यतां, भुवन-पालिका तृप्यतां, सर्व-शिशिरा तृप्यतां,
अनंग-वेदना तृप्यतां, अनंग - मेखला - तृप्यतां, इन्द्रस्तृप्यतां,
अग्निस्तृप्यतां, यमस्तृप्यतां, नैऋतिस्तृप्यतां, वरुणस्तृप्यतां,
वायुस्तृप्यतां, कुबेरस्तृप्यतां, ईशानस्तृप्यतां, ब्रह्मा तृप्यतां,
अनन्तस्तृप्यतां, वज्रस्तृप्यतां, शक्तिस्तृप्यतां, दण्डस्तृप्यतां,
खड्गस्तृप्यतां, पाशस्तृप्यतां, ध्वजस्तृप्यतां, गदा तृप्यतां,
त्रिशूलस्तृप्यतां, पद्मस्तृप्यतां, चक्रं तृप्यतां ।

ॐ पाठ-भेद-कीर्तिस्तृप्यतां

इति परिवार-देवताः सन्तर्प्य, पुनः प्राणायामादि विधाय,
देवीं स्त्र-हृदि विमृज्य, तीर्थं स्व-स्थाने विमृजेत् । इति
तर्पणम् ॥

इस प्रकार परिवार-देवताओं का तर्पण कर पुनः प्राणायाम
आदि करे । तब इष्ट-देवता को अपने हृदय में और तीर्थों को उनके
स्थान में विसर्जित करे । यह तर्पण-कर्म हुआ ।

ततः 'ॐ वज्रोदके हूं फट् स्वाहा' इत्यनेन जल-कुम्भं
गृहीत्वा, मूलं स्मरन्, याग-गेहमागत्य—

तदनन्तर 'ॐ वज्रोदके हूं फट् स्वाहा' मन्त्र से जल-कुम्भ को
उठाकर, मूल-मन्त्र का स्मरण करते हुये पूजा-गृह के पास आकर—

'ॐ ह्रीं विशुद्ध-सर्व-पापानि शमयाशेषं विकल्पमपनय हूं'
—इत्यनेन हस्त-पादौ प्रक्षाल्य, पूर्व-वदाचम्य, द्वाराग्रे स्थित्वा,
स्व-दक्षे वक्ष्यमाण-क्रमेण सामान्यार्घ्यं कृत्वा, तेन जलेन
द्वार-देवताः सम्पूजयेत् । यथा—

'ॐ ह्रीं विशुद्ध-सर्व-पापानि शमयाशेष-विकल्पमपनय हूं'—इस
मन्त्र से हाथों और पैरों को धोकर, पूर्व-वत् आचमन करे । तब
पूजा-गृह के द्वार के आगे बैठकर अपनी बाईं ओर आगे बताये क्रम
से सामान्यार्घ्य की स्थापना कर, उसके जल से द्वार-देवताओं की
पूजा करे । यथा—

द्वारोर्ध्वे— गं गणपतये नमः, दक्षे वां वटुकाय नमः,
वामे क्षं क्षेत्रपालाय नमः, अधः यां योगिनीभ्यो नमः, दक्षे
गं गङ्गायै नमः, वामे यं यमुनायै नमः, पुनर्दक्षे श्रीं श्रियै
नमः, वामे सं सरस्वत्यै नमः ।

इति सम्पूज्य वामांग-सङ्कोचनेन मण्डपान्तर्गतत्वा, तत्र—
उक्त प्रकार पूजन कर बाएँ अङ्ग को सिकोड़कर पूजा-मंडप के
भीतर जाकर, वहाँ—

नैर्ऋत्ये ब्रह्माणे नमः, वास्तु-पुरुषाय नमः ।

इति सम्पूज्य, भूमौ चतुष्कोण-मण्डलं विधाय, तत्रासन-
मास्तीर्य, चतुष्कोणे—

उक्त मन्त्रों से पूजन कर, भूमि पर चतुष्कोण का मंडल बनाकर उस पर आसन बिछाकर, चतुष्कोण में—

ह्रीं आधार-शक्ति-कमलासनाय नमः ।

इति सम्पूज्य, तदुपरि कुश-विष्टरं दत्वा, कृताञ्जलिः पठेद् । यथा—

उक्त मन्त्र से पूजन कर, उस चतुष्कोण पर कुश का विष्टर रखकर हाथ जोड़कर विनियोग पढ़े । यथा—

ॐ अस्य श्रीआसन - मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः, सुतलं छन्दः, कूर्मो देवता, आसनारोपणे विनियोगः ।

इति स्मृत्वा न्यासं कुर्यात्—

उक्त मन्त्र से आसन के ऋषि आदि को स्मरण कर उनका अपने शरीर में न्यास करे—

मेरुपृष्ठ-ऋषये नमः शिरसि । सुतल-छन्दसे नमः मुखे । कूर्म - देवतायै नमः हृदि । आसनारोपणे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु ।

इति विन्यस्यासनं पूजयेद् । यथा—

इस प्रकार न्यास कर आसन की पूजा करे । यथा—

ॐ मण्डूकाय नमः । कालाग्नि-रुद्राय नमः । आधार-शक्तये नमः । मूल-प्रकृत्यै नमः । कूर्माय नमः । अनन्ताय नमः । पृथिव्यै नमः । सुधा-समुद्राय नमः । मणि-द्वीपाय नमः । चिन्तामणि-गृहाय नमः । पारिजाताय नमः । रत्न-वेदिकायै नमः ।

इति गन्धादिना कुश-विष्टरं सम्पूज्य । तदुपरि वीरा-द्यासनेनोपविश्य—

उक्त मन्त्रों से गन्धादि द्वारा कुश-विष्टर की पूजा कर, उसके ऊपर वीरादि आसन से बैठकर—

ॐ पृथिवि ! त्वया धृता लोका, देवि ! त्वं विष्णुना धृता । त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इति पठित्वा सस्विदं यथा-मन्त्रं स्वीकुर्यात् । तद्विधिर्यथा—

‘ॐ पृथ्वि ! त्वया’ इत्यादि मन्त्र पढ़कर निम्न मन्त्रों से सस्विदा (विजया) को ग्रहण करे । उसकी विधि निम्न प्रकार है—

ॐ सस्विदे, ब्रह्म-सम्भूते, ब्रह्म-पुत्रि, सदाऽनघे !

ब्राह्मणानां च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा ॥

ॐ ब्राह्मण्यै नमः स्वाहा ॥१

ॐ सिद्धि-मूलाक्षये देवि ! हीन-बोध-प्रबोधिनि !

राज-प्रजा-वशङ्कुरि ! शत्रु - पक्ष-निषूदिनि ॥

ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा ॥२

ॐ प्रज्ञानेन्धन-दीप्ताग्ने ज्ञानाग्नि-ब्रह्म-रूपिणि !

आनन्दास्याहुतिं प्रीतिं सम्यग्-ज्ञानं प्रयच्छ मे ॥

ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा ॥३

ॐ नमस्यामि नमस्यामि योग-मार्ग-प्रदर्शनि !

त्रैलोक्य-वरदे ॐ मातः ! समाधि-फलदा भव ॥

क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा ॥४

इति संशोध्य—

उक्त चार मन्त्रों से सस्विदा का शोधन कर—

ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृत-वर्षिणि अमृतमाकर्षय
आकर्षय सिद्धिं देहि देहि श्रीभुवनेश्वरी-पदं मे वशमानय
स्वाहा ।

इति तदुपरि मूल-मन्त्रं सप्तधा प्रजप्य, ततो—

‘ॐ अमृते अमृतोद्भवे’ इत्यादि मन्त्र पढ़कर सस्विदा को मूल-मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करे । तब—

मूलं आगच्छ आगच्छ, मूलं सन्तिष्ठ सन्तिष्ठ, मूलं
सन्निधत्स्व सन्निधत्स्व, मूलं सन्निधेहि सन्निधेहि ।

ॐ पाठ-भेद—त्रैलोक्य-विजये ।

इति मुद्राः प्रदर्श्य । छोटिकाभिर्दश-दिग्-बन्धं विधाय । ताल-त्रय-पुरस्सरं दिव्य-दृष्ट्या पार्ष्णि-घात-त्रयेण विघ्नान् निवार्य । सहस्रार-पद्मे तत्त्व-मुद्रया श्रीगुरु-पादुकां त्रिधा सन्तर्प्य । स्व-हृदि सप्तधा देवीं सन्तर्प्य—

उक्त प्रकार मुद्रायें दिखाते हुए अभिमन्त्रण कर, 'छोटिका' मुद्रा से दश दिशाओं को सुरक्षित कर, तीन बार ताली बजाते हुये दिव्य दृष्टि से और तीन बार एड़ी से ठोकर मारकर विघ्नों को दूर करे । फिर सहस्रार-कमल में तत्त्व-मुद्रा से श्रीगुरु-पादुका का तीन बार तर्पण कर अपने हृदय में सात बार देवी का तर्पण करे । तब—

ऐं वद वद वाग्वादिनि ! मम जिह्वाग्रे स्थिरा भव । सर्व-तत्त्व-वशङ्करि स्वाहा ।

इत्यनेन मुखे संविदं तत्त्व-मुद्रया जुहुयात् । इति संविद्-विधिः ॥ तत आनन्द-मयो भूत्वा वाम-कर्णोर्ध्व—

'ऐं वद वद वाग्वादिनि !' इत्यादि मन्त्र से अपने मुख में तत्त्व-मुद्रा द्वारा संविदा [विजया] का हवन करे अर्थात् उसे खा जाये । यह संविदा की विधि है । तब आनन्द-पूर्ण होकर अपने बाएँ कान के ऊपर—

श्रीमच्छ्री अमुकानन्द-नाथ-पादुकाभ्यो नमः । दक्षे गं गणपतये नमः । मध्ये श्रीभुवनेश्वर्यै नमः ।

इति नत्वा मूलेन पूजोपकरणमभिमन्त्र्य । स्व-दक्षे गन्ध-पुष्पादिकं निधाय । वामे सुगन्ध-जल-कुम्भं निधाय । देवतायाः पश्चिमे कुल-द्रव्याणि निधाय । पुष्पादिकं शोध-येद् । यथा—

गुरु-पादुकाओं को बाएँ कान के ऊपर, दाईं ओर गणपति को और हृदय में श्रीभुवनेश्वरी को उक्त मन्त्रों द्वारा नमन कर पूजन-सामग्री को अभिमन्त्रित करे । अपनी दाईं ओर गन्ध, पुष्पादि रखकर, बाईं ओर सुगन्धित जल से भरा कलश और देवता के पश्चिम ओर कुल-द्रव्यों को रखे । तब पुष्पादि का शोधन करे । यथा—

ॐ शताभिषेके हूं फट् स्वाहा । ॐ पुष्पकेतु - राजार्हा
शताय सम्यक् सङ्ग-बद्धाय हुम् । पुष्पे पुष्पे महा-पुष्पे सु-
पुष्पे पुष्प-सम्भवे । पुष्प-प्रचयावकीर्णे हूं फट् स्वाहा ।

इति पुष्पाभिमन्त्रणम् । अन्य-गन्धादिकं मूलेनाभि-
मन्त्रयेत् । ततः—

‘ॐ शताभिषेके’ आदि मन्त्र से पुष्पों को अभिमन्त्रित करे ।
गन्धादि अन्य वस्तुओं को मूल-मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करे । तब—

अपसर्पन्तु ते भूता, ये भूता भूमि-संस्थिताः ।

ये भूता विघ्न-कर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

पाखण्ड-कारिणो भूता, भूता भूम्यन्तरिक्षगाः ।

दिवि लोके स्थिता ये च, ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

‘जो जीव भूमि में स्थित हैं, वे दूर हट जाएँ और जो जीव
विघ्न करते हैं, वे भगवान् शिव की आज्ञा से नष्ट हो जायँ । भूमि,
अन्तरिक्ष और दिव्य लोक में जो भी पाखण्डी जीव हैं, वे सब शिव
की आज्ञा से नष्ट हो जायँ ।’

इति तर्जनी-मध्यमाभ्यामूर्ध्वोर्ध्वं ताल-त्रय-दानेन, वाम-
पार्श्व-घात-त्रयेण दिव्य-दृष्ट्या च विविध-विघ्नानुत्सार्य ।
छोटिकाभिर्दश-दिग्बन्धं विधाय । चतुर्दिक्षु वह्नि-प्राकारं
संचिन्त्य प्राणायाम-त्रयं कुर्यात् । तदुक्तं—

उक्त मन्त्र पढ़ते हुये तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों से ऊपर
की ओर क्रमशः तीन बार ताली बजा कर, बाईं एड़ी से तीन बार
भूमि में ठोकर मारे और दिव्य दृष्टि से चारों ओर देखकर तीनों
प्रकार के विघ्नों को दूर कर छोटिका-मुद्रा से दसो दिशाओं को
सुरक्षित कर चारों दिशाओं में अग्नि से बनी चार-दीवारी को
भावना कर तीन बार प्राणायाम करे । यथा—

इडया पिव षोडशभिः पवनं, कुरु षष्ठि-चतुष्टयमन्तर-
गम् । त्यज पिङ्गलया शनकैः शनकैर्दशभिर्दशभिर्द्व्यधिकै-
र्द्वादशैः ॥ इत्युक्त-रीत्या प्रणवं षोडश-वारमुच्चरन् दक्षांगुष्ठेन

दक्ष-नासा-पुटं निरुध्य, वामेन पवनं पूरयेत् । ततस्तमेव चतु-
ष्पष्टि-वारमुच्चरन् दक्ष-नासां कनिष्ठिकाऽनामाभ्यां वामं
पुटं च निरुध्य, द्वाभ्यां पवनं कुम्भयेत् ॥ ततस्तमेव द्वात्रिंशद्-
वारमुच्चरन् वामं पुटं तथैव निरुध्य, दक्षेण पवनं रेचयेत् ।
इत्येकः प्राणायामः । एष एव विपर्ययेण कृते द्वितीयः ।
प्रथम-वत् तृतीयः ।

इत्थं प्राणायाम-त्रयेण निरस्त-सकल-कलुषं देवताराधन-
योग्यं स्व - देहं विभाव्य भूत-शुद्धिं कुर्यात् । यथा—

इडा नाडी से १६ बार प्रणव का जप करते हुये वायु को पीकर
'पूरक', ६४ बार जप करते हुये वायु को भीतर रोककर 'कुम्भक' और
पिङ्गला नाडी से ३२ बार जप करते हुये वायु को छोड़कर 'रेचक' करे ।
इस प्रकार दाएँ अँगूठे से दाएँ नासा-छिद्र को बन्द कर १६ बार प्रणव
का जप करते हुये बाँएँ नासा-छिद्र से वायु भर कर 'पूरक', तब उसी
प्रणव का ६४ बार उच्चारण करते हुये बाँएँ नासा-छिद्र को कनिष्ठा
और अनामा अँगुलियों से बन्द कर दोनों नासा-छिद्रों से वायु को रोक
कर 'कुम्भक' करे । तब दाँई नासा से ३२ बार जप करते हुये उसी
प्रकार बाएँ नासा-छिद्र को बन्द कर दाएँ नासा-छिद्र से वायु निकाल
कर 'रेचक' करे । यह एक प्राणायाम हुआ । इसी क्रिया को उलटो
ओर से करने से दूसरा प्राणायाम और पहले के समान करने से
तीसरा प्राणायाम होता है ।

इस प्रकार तीन प्राणायामों द्वारा समस्त पापों से रहित अपने
शरीर को देव-पूजा के योग्य समझ कर 'भूत-शुद्धि' करे । यथा—

पादादि-जानु-पर्यन्तं पृथ्वी - स्थानं चतुरस्रं वज्र-
लाङ्घितं पीत-वर्णं । ब्रह्म-देवतं निवृत्ति-कलाऽधिष्ठितं 'लं'-
बीज-युतं ध्यात्वा । जान्वादि-नाभि-पर्यन्तमपां स्थानं शुक्ल-
वर्णमर्ध-चन्द्राकारं शृङ्ग-द्वयेऽपि पद्म-लाङ्घितं विष्णु-देवतं
प्रतिष्ठा-कलाऽधिष्ठितं 'वं'-बीज-युक्तं ध्यात्वा । नाभ्यादि-
कण्ठ-पर्यन्तं वह्नि-मण्डलं स्वस्तिकोपेतं त्रिकोणाकारं रक्त-
वर्णं रुद्र-देवतं विद्या-कलाऽधिष्ठितं 'रं'-बीज-युतं ध्यात्वा ।

कण्ठादि-भ्रूमध्य-पर्यन्तं वायु-मण्डलं षट्-कोणाकारं षड्-विन्दु-
 लांछितं वृत्तोपेतं कृष्ण-वर्णमोश्वर-दैवतं शान्ति-कलाऽधिष्ठितं
 'यं' बीज-युतं ध्यात्वा । भ्रू-मध्यादि-ब्रह्म-रन्ध्रान्तमाकाश-
 स्थानं वृत्ताकारं ध्वज - लांछितं धूम्र-वर्णं सदा-शिव-दैवतं
 शान्त्यतीता-कलाऽधिष्ठितं 'हं'-बीज-युतं ध्यात्वा । तत्र पञ्च-
 भूत-मये देहे धर्म-कन्द-समुद्भूतं ज्ञान-नालकमैश्वर्याष्ट-दलो-
 पेतं वैराग्य-कर्णिकं स्व - हृदयारविन्दं ध्यात्वा । तत्-कर्णि-
 कायां जीवात्मानमग्र-मात्रं प्रदीप-कलिका-भास्वर-मानादित्वा-
 संछिन्न-पर-चिद्-रूपं संचिन्त्य । प्रागुक्त-रूपेण मूलाधारात्
 कुण्डलिनीमुत्थाप्य सुषुम्णा-वर्त्मना मूलाधाराद्यनाहतान्तःस्थ-
 वर्णादि-देवता ग्रसन्तीं हृदय-कमलमानीय । तथा कवली-
 कृतं जीवात्मानं ध्यायन् । सुषुम्णा-वर्त्मना विशुद्धादि-चक्र-
 स्थ-वर्णादि-देवता ग्रसन्तीं ब्रह्म-रन्ध्रं नीत्वा । तत्र स्थित-
 सहस्र-दल-कमल-कर्णिका-मध्य-वर्तिनि परमात्मा-ज्योतिषि ।
 समस्त-वर्ण-देवता - कदम्बकं जीवात्मानं 'हंस' इति मन्त्रेण
 संयोज्य । कुण्डलिनीं स्व-स्थानमानीय तत्त्व-संहारं कुर्यात् ।
 तत्र पृथिवी-स्थाने पादेन्द्रिय-गमन-क्रिया-गन्तव्य-गन्ध-घ्राण-
 पृथिवी-ब्रह्म-निवृत्ति-समान-वायुं संस्मृत्य—

ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्ति-कलात्मने हुं फट्
 स्वाहा ।

इति मन्त्रेण तान् कुण्डलिनी-द्वारा अपां-मध्ये संहरेत् ।
 ततोऽपां स्थाने हस्त-दान-दातव्य-रस-रसना-विष्णु-प्रतिष्ठो-
 दानान् संचिन्त्य—

ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठा-कलात्मने हुं फट्
 स्वाहा ।

इति तान् सर्वान् कुण्डलिनी-द्वारा वह्नि-तत्त्वे सहरेत् । ततो वह्नि-स्थाने वायु-विसर्ग-विसर्जनीय-रूप-तत्त्व-वह्नि-रुद्र-विद्या-व्यानान् संस्मृत्य--

ॐ ह्रूं रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्या-कलात्मने हुं फट् स्वाहा ।

इति मन्त्रेण तान् सर्वान् वायु-मण्डले सहरेत् । ततो वायु-स्थाने उपस्थानन्द-तद्-विषय-स्पर्श-स्पृष्टव्य-वाय्वीश्वर-शान्त्यपानान् संस्मृत्य--

ॐ ह्रैं ईश्वराय वाय्वधिपतये शान्ति-कलात्मने हुं फट् स्वाहा ।

इति तान् सर्वानाकाश-स्थाने सहरेत् । तत आकाश-स्थाने वाग्-वचन-वक्तव्य-शब्द-सदा-शिव-शान्त्यतीता-प्राणान् संस्मृत्य--

ॐ ह्रौं सदा-शिवायाकाशाधिपतये शान्त्यतीता-कलात्मने हुं फट् स्वाहा ।

इति तान् सर्वान् कुण्डलिन्यां संहृत्य । तां बिन्दु-शक्तौ, बिन्दु-शक्ति नाद - शक्तौ, नाद - शक्ति परम-शक्तौ प्रणवेन संहृत्य--'ॐ ह्रौं हुं फट् स्वाहा' इति तां परम-शक्ति पूर्वोक्त-परमात्मनि संयोज्य । केवल-शरीरे वाम - कुक्षौ पाप-पुरुषं चिन्तयेत् । तद् यथा--

पैर से घूटने तक 'पृथ्वी' का स्थान चौकोर, वज्र से चिह्नित, पीले रंग का, ब्रह्मा देवता एवं निवृत्ति-कला से सुशोभित और 'ल'-बीज से युक्त ध्यान करे । घूटने से नाभि तक 'जल' का स्थान अर्ध-चन्द्राकार, श्वेत रंग का, दोनों सींगों को कमल से चिह्नित, विष्णु देवता एवं प्रतिष्ठा कला से सुशोभित और 'व'-बीज से युक्त ध्यान करे । नाभि से कण्ठ तक 'अग्नि' का स्थान त्रिकोना, स्वस्तिक से चिह्नित, लाल रंग का, रुद्र देवता एवं विद्या-कला से सुशोभित और 'रं'-बीज से युक्त ध्यान करे । कण्ठ से भ्रू-मध्य तक 'वायु' का स्थान षट्-

कोणाकार, छः विन्दुओं से चिह्नित, काले रंग का, ईश्वर देवता एवं शान्ति-कला से सुशोभित और 'यं'-बीज से युक्त ध्यान करे। भ्रू-मध्य से ब्रह्म-रन्ध्र तक 'आकाश' का स्थान गोलाकार, ध्वज से चिह्नित, धुएँ जैसा रंग, सदाशिव देवता एवं शान्त्यतीता कला से सुशोभित और 'हं'-बीज से युक्त ध्यान करे।

उस पञ्च-भूत-मय शरीर में 'धर्म'-रूप कन्द (कमल) और 'ज्ञान'-रूप उस कमल की नाल, 'अष्ट-ऐश्वर्य'-रूप उसके आठ दल, 'वैराग्य'-रूप उसकी कर्णिकावाले अपने हृदय-कमल का ध्यान करे। उस हृदय-कमल की कर्णिका में दीपक की ज्योति के अग्र-भाग के समान सूक्ष्म, ज्योतिर्मय, अनादि और परम चैतन्य-रूप में जीवात्मा का ध्यान करे।

पूर्वोक्त ढँग से मूलाधार से कुण्डलिनी को उठाकर सुषुम्णा के मार्ग से उसे ले जाते हुये मूलाधार से अनाहत तक के वर्ण-देवताओं को उसके द्वारा ग्रास कराते हुये उसे हृदय-कमल में ले आये। वहाँ कुण्डलिनी जीवात्मा को निगल लेती है, ऐसा ध्यान करे। फिर सुषुम्णा मार्ग से विशुद्धादि चक्रों के वर्ण-देवताओं को ग्राम बनाती हुई उसे ब्रह्म-रन्ध्र में ले जाये। वहाँ सहस्र-दल-कमल की कर्णिका के मध्य में स्थित परमात्मा की ज्योति में सभी वर्ण-देवताओं और जीवात्मा को 'हंस' मन्त्र द्वारा संयुक्त करे। तब कुण्डलिनी को अपने स्थान में लाकर तत्त्वों का संहार करे।

'पृथ्वी' के स्थान में पैर इन्द्रिय, उसकी चलने की क्रिया, गन्तव्य, गन्ध घ्राण, ब्रह्मा दैवत, निवृत्ति कला और समान वायु का स्मरण कर 'ॐ ह्रीं ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्ति-कलात्मने हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से कुण्डलिनी के द्वारा उन्हें 'जल' के मध्य में लय करे।

तब 'जल' के स्थान में हाथ इन्द्रिय, उसकी देने की क्रिया, दातव्य, रस, जिह्वा, विष्णु दैवत, प्रतिष्ठा कला और उदान वायु का स्मरण कर 'ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये शान्ति-कलात्मने हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से कुण्डलिनी के द्वारा उन्हें 'अग्नि'-तत्त्व में लय करे।

तब 'अग्नि' के स्थान में पायु इन्द्रिय, उसकी विसर्ग-क्रिया, विसर्जनीय, रूप, चक्षु, अग्नि, रुद्र दैवत, विद्या कला और व्यान वायु का स्मरण कर 'ॐ हूं रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्या-कलात्मने हूं फट् स्वाहा' मन्त्र से उन्हें 'वायु'-मण्डल में लय करे।

तब 'वायु' के स्थान में उपस्थ इन्द्रिय, उसकी आनन्द-क्रिया, उसका विषय, स्पर्श, स्पृष्टव्य, वायु, ईश्वर दैवत, शान्ति कला और

अपान वायु का स्मरण कर 'ॐ ह्रीं' ईश्वराय वाय्वधिपतये शान्ति-
कलात्मने हूं फट् स्वाहा' मन्त्र से कुण्डलिनी के द्वारा उन्हें 'आकाश'
के स्थान में लय करे ।

तब 'आकाश' के स्थान में वाक् इन्द्रिय, उसकी क्रिया वचन,
वक्तव्य, शब्द, आकाश, सदा-शिव दैवत, शान्त्यतीता कला और
प्राण वायु का स्मरण कर 'ॐ ह्रीं सदा-शिवायाकाशाधिपतये शान्त्य-
तीता-कलात्मने हूं फट् स्वाहा' मन्त्र से उन्हें कुण्डलिनी में लय
करे ।

तब कुण्डलिनी को विन्दु-शक्ति में, विन्दु-शक्ति को नाद-शक्ति
में और नाद-शक्ति को परम-शक्ति में प्रणव द्वारा लय कर 'ॐ ह्रीं हूं
फट् स्वाहा' मन्त्र से उस परम शक्ति को पूर्वोक्त परमात्मा से संयुक्त
करे ।

अब केवल-शरीर में, बाईं कोख में पाप-पुरुष का ध्यान करे ।
यथा—

वाम-कुक्षि - स्थितं पाप-पुरुषं कज्जल-प्रभम् ।

ब्रह्म-हत्या-शिरस्कं च स्वर्ण-स्तेय - भुज-द्वयम् ॥

सुरा-पान-हृदा-युक्तं गुरु - तल्प - कटि - द्वयम् ।

तत्-संसर्ग-पद-द्वन्द्व - सङ्ग - प्रत्यङ्ग - पातकम् ॥

उप-पातक-रोमाणं रक्त - श्मश्रु - विलोचनम् ।

खड्ग - चर्म - धरं क्रुद्धं पापं कुक्षौ विचिन्तयेत् ॥

बाईं कोख में स्थित पाप-पुरुष काजल के समान काले रंग का
है । ब्रह्म-हत्या उसका शिर है, स्वर्ण की चोरी दोनों भुजाएँ हैं । मद्य-
पान-रूपी हृदय से वह युक्त है । गुरु की शय्या उसकी कमर के दोनों
भाग हैं । गुरु-शय्या का सम्पर्क दोनों पैर हैं, पाप ही उसके अङ्ग-
प्रत्यङ्ग हैं । उप-पाप उसके रोएँ हैं, रुधिर ही उसकी मूँछ और नेत्र
हैं । खड्ग और ढाल लिए, क्रोध से युक्त पाप - पुरुष का चिन्तन
कोख में करे ।

इति पाप-पुरुषं विचिन्त्य । वाम - नासा - रन्ध्रेण 'यं'-
बीजेन सह वायुमापूर्य नाभिस्थ-षट्-कोणाकारे वायु-मण्डले
संयोज्य । तत्र 'यं' इति वायु-बीजं कृष्ण-वर्णं संचिन्त्य । कुरुभ-

केन 'वं' इति वायु - वीजमावर्तयन् तदुत्थितेन महा-वायुना स्व-पाप-पुरुषं स्व-शरीरस्थं संशोष्य वायुं दक्षिण - नासया विरेच्य । पुनर्दक्षिण-नासया 'रं' - वीजेन सह वायुमापूर्य । मूलाधारे संयोज्य । तत्रस्थ वह्नि - मण्डले 'रं'-इति वीजं रक्त-वर्णं विचिन्त्य कुम्भकेन 'रं' इति वीजमावर्तयन् तदुत्थित-महा-वह्निना स्व-पाप-पुरुषं स्व-देहस्थं सन्दह्य । पाप-पुरुष-भस्मना सहितं वायुं वाम-नासया विरेच्य । पुनर्वाम-नासया विरेच्य । पुनर्वाम-नासया 'वं'-वीजेन सह वायुमापूर्य च ब्रह्म-रन्ध्रे संयोज्य । तत्र स्थित-चिच्चन्द्र - मण्डले 'वं' इत्यमृत-वीजं शुक्ल-वर्णं विचिन्त्य कुम्भकेन 'वं'-वीजमावर्तयन् तत्र स्थितामृत-धारया स्व-देह-भस्म-कृत विचिन्त्य तं वायुं दक्षिण-नासया विरेच्य । पुनर्दक्षिण-नासया 'लं'-वीजेन वायुमापूर्य । मूलाधारस्थ-पार्थिव-मण्डले संयोज्य । तत्र 'लं'-इति पृथ्वी-वीजं पीत-वर्णं संचिन्त्य कुम्भकेन 'लं'-वीजमावर्तयन् तदुद्-भूतेन तेजसा अमृत-प्लावित-भस्म घनी-कृत्य तं वायुं वाम-नासया विरेच्य । पुनर्वाम-नासया माया-वीजेन वायुमापूर्य । मूलाधारस्थ-विन्दु - मध्ये माया - वीजं स्फुरद्-बालार्क-वर्णं संचिन्त्य कुम्भकेन माया-वीजमावर्तयन् तेन कर-चरणाद्यव-यव-समेतं स्व-देहं निष्पन्नं विभाव्य तं वायुं दक्षिण - नासया विरेचयेत् । इति स्थूल-शरीरं निष्पाद्य सूक्ष्म-शरीरं निष्पाद-येत् । तद् यथा-

तत्र पूर्वोक्त सहस्रार - कमलस्थ-परमात्मनः सकाशात् सकल-जगत्-सिसृक्षा विजृम्भित - परब्रह्म-स्वरूपिणीं शक्तिं 'ॐ ह्रीं नमः' इति परमात्मनः सकाशात् स्व-स्थानमानीय । ततो नाद-शक्ति, ततो विन्दु-शक्ति, प्रणवेन सृष्ट्यां विन्दु-शक्तेः सकाशात् सकल-जगत्-सृष्टि-हेतु-भूतां कुंडलिनीं प्रण-वेन निःसार्य । ततः-

ॐ अस्य श्रीप्रणवोत्थ-कला-मातृका-न्यासस्य प्रजापतिः ऋषिः । गायत्री छन्दः । प्रणवोत्थ-कला-मयी मातृका-सरस्वती देवता । मम श्रीभुवनेश्वरी-पूजाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा ऋष्यादि-न्यासान् कुर्यात्—

प्रजापतये ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे नमः मुखे । प्रणवोत्थ-कला-मयी-मातृका-सरस्वती-देवतायै नमः हृदि । मम श्रीभुवनेश्वरी-पूजाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु । इति ऋष्यादि-न्यासः ।

अथ कर-न्यासः—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं ॐ आं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ४ इं ॐ ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ४ उं ॐ ऊं मध्यमाभ्यां वषट् । ४ एं ॐ ऐं अनामिकाभ्यां हुम् । ४ ओं ॐ औं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ४ अं ॐ अः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां फट् ।

अथ षडङ्ग-न्यासः—४ अं ॐ आं हृदयाय नमः । ४ इं ॐ ईं शिरसे स्वाहा । ४ उं ॐ ऊं शिखायै वषट् । ४ एं ॐ ऐं कवचाय हुम् । ४ ओं ॐ औं नेत्र-त्रयाय वौषट् । ४ अं ॐ अः अस्त्राय फट् ।

उक्त प्रकार हाथ जोड़कर विनियोग पढ़ ऋष्यादि, कर-षडङ्ग-न्यास-पूर्वक ध्यान करे । यथा—

हस्तैः पद्मं रथाङ्गं गुणमथ हरिणं पुस्तकं वर्ण-मालाम् ।
टङ्कं शुभ्रं कपालं दरममृत-लसद्वेम-कुम्भं वहन्तीम् ॥
मुक्ता-विद्युत्-पयोद-स्फटिक-नव-जवा-बन्धुरैः पञ्च-वक्त्रैः ।
व्यक्षेर्वक्षोज-नम्रां सकल-शशि-निभां शारदां तां नमामि ॥

अर्थात् दश हाथों में कमल, चक्र, शूल, हरिण, पुस्तक, अक्ष-माला, टङ्क (परशु), कपाल, शङ्ख और अमृत-पूर्ण स्वर्ण कलश लिए, मोती-विद्युत्-मेघ-स्फटिक और ताजे जवा पुष्प जैसी आभावाले पाँच मुखों से शोभायमाना, त्रिनेत्रा, उन्नत उरोजो से झुकी हुई, पूर्ण-चन्द्र जैसी कान्तिवाली उन भगवती शारदा को मैं नमन करता हूँ ।

इति ध्यात्वा न्यसेद् यथा—

इस प्रकार ध्यान कर न्यास करे । यथा—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं निवृत्त्यै नमः शिरसि । ४ आं प्रतिष्ठायै नमः मुख-वृत्ते । ४ इं विद्यायै नमः दक्ष-नेत्रे । ४ ईं शान्त्यै नमः वाम-नेत्रे । ४ उं इन्धिकायै नमः दक्ष-कर्णे । ४ ऊं दीपिकायै नमः वाम-कर्णे । ४ ऋं रेचिकायै नमः दक्ष-नसि । ४ ॠं मोचिकायै नमः वाम-नसि । ४ लृं परायै नमः दक्ष-गण्डे । ४ सूक्ष्मायै नमः वाम-गण्डे । ४ एं सूक्ष्मामृतायै नमः ऊर्ध्वोष्ठे । ४ ऐं ज्ञानामृतायै नमः अधरे । ४ ओं आप्यायन्यै नमः ऊर्ध्व-दन्त-पंक्तौ । ४ औं व्यापिन्यै नमः अधो-दन्त-पंक्तौ । ४ अं व्योम-रूपिन्यै नमः ललाटे । ४ अः अनन्तायै नमः मुखाभ्यन्तरे । ४ कं सृष्ट्यै नमः दक्ष-पाणि-कक्षे । ४ खं वृद्ध्यै (ऋद्ध्यै) नमः कूर्परे । ४ गं स्मृत्यै नमः मणि-बन्धे । ४ घं मेधायै नमः अंगुलि-मूले । ४ ङं कान्त्यै नमः अंगुल्यग्रे । ४ चं लक्ष्म्यै नमः वाम-पाणि-कक्षे । ४ छं द्युत्यै नमः कूर्परे । ४ जं स्थिरायै नमः मणि-बन्धे । ४ झं स्थित्यै नमः अंगुलि - मूले । ४ ञं सिद्ध्यै नमः अंगुल्यग्रे । ४ टं जरायै नमः दक्षोरौ । ४ ठं पालिन्यै नमः जानुनि । ४ डं शान्त्यै नमः गुल्फे । ४ ढं ऐश्वर्यै नमः अंगुलि-मूले । ४ णं रत्यै नमः अंगुल्यग्रे । ४ तं कामिकायै नमः वामोरौ । ४ थं वरदायै नमः जानुनि । ४ दं ह्लादिन्यै नमः गुल्फे ।

४ धं प्रीत्यै नमः अंगुलि-मूले । ४ नं दीर्घायै नमः अंगुल्यग्रे ।
 ४ पं तीक्ष्णायै नमः दक्ष-पार्श्वे । ४ फं रौद्र्यै नमः वाम-
 पार्श्वे । ४ बं भयायै नमः पृष्ठे । ४ भं निद्रायै नमः नाभौ ।
 ४ मं तन्द्रायै नमः जठरे । ४ यं क्षुधायै नमः हृदि । ४ रं
 क्रोधिन्यै नमः दक्षांसे । ४ लं क्रियायै नमः ककुदि । ४ वं
 उत्कायै नमः वामांसे । ४ शं मृत्यु-रूपायै नमः हृदादि-
 दक्ष-पाण्यन्तं । ४ षं पीतायै नमः हृदादि-वाम-पाण्यन्तं ।
 ४ सं श्वेतायै नमः हृदादि-दक्ष-पादान्तं । ४ हं अरुणायै
 नमः हृदादि-वाम-पादान्तं । ४ ळं असितायै नमः पादादि-
 नाभ्यन्तं । ४ क्षं अनन्तायै नमः नाभ्यादि-मूर्धान्तं । इति
 तारोत्थ-कला-मातृका-न्यासः ।

उक्त प्रकार 'तार' अर्थात् प्रणव से उत्पन्न कलाओं का न्यास कर
 ३८ कला-मातृकाओं का न्यास करे । यथा—

अथाष्टा-त्रिंशत्-कला-मातृका - न्यासः—ॐ अस्य श्री
 अष्टा-त्रिंशत्-कला-मातृका-न्यासस्य सोम-सूर्याग्नयः ऋषयः,
 अनुष्टुप्-त्रिष्टुप् छन्दांसि, अष्टा-त्रिंशत्-कला-रूपिणी मातृका
 देवता, श्रीभुवनेश्वरी-पूजाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा न्यासं कुर्यात्—

हाथ जोड़कर उक्त प्रकार स्मरण कर ऋष्यादि-न्यास करे—

सोम-सूर्याग्नि-ऋषिभ्यो नमः शिरसि । अनुष्टुप्-त्रिष्टुप्-
 छन्दोभ्यो नमः मुखे । अष्टा-त्रिंशत्-कला-रूपिणी - मातृका-
 देवतायै नमः हृदि । श्रीभुवनेश्वरी-पूजाङ्गत्वेन न्यासे विनि-
 योगाय नमः सर्वाङ्गेषु ।

इति ऋष्यादिकं कृत्वा शुद्ध-मातृका-वदेव कर-षडङ्ग-
 न्यास-ध्यानान् विधाय न्यासं कुर्यात्—

उक्त प्रकार ऋष्यादि-न्यास कर शुद्ध मातृका-न्यास के समान ही कर एवं षडङ्ग-न्यास और ध्यान कर न्यास करे-

४ अं अमृतायै नमः शिरसि । ४ आं मानदायै नमः मुख-वृत्ते । ४ इं पूषायै नमः दक्ष-नेत्रे । ४ ईं सृष्ट्यै नमः वाम-नेत्रे । ४ उं पुष्ट्यै नमः दक्ष-कर्णे । ४ ऊं रत्यै नमः वाम-कर्णे । ४ ऋं धृत्यै नमः दक्ष-नसि । ४ ॠं शशिन्यै नमः वाम-नसि । ४ लृं चन्द्रिकायै नमः दक्ष-गण्डे । ४ लृं कान्त्यै नमः वाम-गण्डे । ४ एं ज्योत्स्नायै नमः ऊर्ध्वोष्ठे । ४ ऐं श्रियै नमः अधरे । ४ ओं प्रीत्यै नमः ऊर्ध्व - दन्त - पंक्तौ । ४ औं अङ्गदायै नमः अधो दन्त-पंक्तौ । ४ अं पूर्णामृतायै नमः मुखाभ्यन्तरे । ४ कं भं तपिन्यै नमः दक्ष-पाणि-कक्षे । ४ खं वं तापिन्यै नमः कूर्परे । ४ गं फं धूम्रायै नमः मणि-बन्धे । ४ घं पं मरीच्यै नमः अंगुलि-मूले । ४ ङं नं ज्वलिन्यै नमः अंगुल्यग्रे । ४ चं धं रुच्यै नमः वाम - पाणि-कक्षे । ४ छं दं सुषुम्णायै नमः कूर्परे । ४ जं थं भोगदायै नमः मणि-बन्धे । ४ झं तं विश्वायै नमः अंगुलि-मूले । ४ ञं णं बोधिन्यै नमः अंगुल्यग्रे । ४ टं ढं धारिण्यै नमः दक्षोरौ । ४ ठं डं क्षमायै नमः जानुनि । ४ यं धूम्राचिषे नमः गुल्फे । ४ रं ऋमायै नमः अंगुलि - मूले । ४ लं ज्वलिन्यै नमः अंगुल्यग्रे । ४ वं ज्वालिन्यै नमः वामोरौ । ४ शं विस्फुल्लिङ्गिन्यै नमः जानुनि । ४ षं सुश्रियै नमः गुल्फे । ४ सं सुरूपायै नमः अंगुलि-मूले । ४ हं कपिलायै नमः अंगुल्यग्रे । ४ ऌं हव्य-वाहायै नमः मूर्ध्नि । ४ क्षं कव्य-वाहायै नमः सर्वाङ्गेषु । इत्यष्टा-त्रिंशत्-कला-मातृका-न्यासः ।

अथ मूर्ति-मातृका-न्यासः—तत्रादौ केशवादि-मातृका-न्यासः—

उक्त प्रकार ३८ कला-मातृका-न्यास कर मूर्ति-मातृका न्यास करे ।
इसके लिए पहले केशवादि-मातृका-न्यास करे-

ॐ अस्य श्रीकेशवादि-मूर्ति-मातृका-न्यासस्य साध्य-
नारायणः ऋषिः । गायत्री छन्दः । श्रीलक्ष्मी-नारायणः
देवता । मम श्रीभुवनेश्वरी-पूजाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा न्यसेत्—

साध्य-नारायण-ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे
नमः मुखे । श्रीलक्ष्मी-नारायण-देवतायै नमः हृदि । मम
श्रीभुवनेश्वरी-पूजाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु ।
इति ऋष्यादि-न्यासः ।

अथ कर - न्यासः—ॐ श्रीं ॐ नमो नारायणाय हंसः
सोऽहं अं कं-५ आं ह्रीं हंसः सोऽहं ॐ नमो नारायणाय
शुद्धोत्काय स्वाहा श्रीदेव्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ श्रीं ॐ
नमो नारायणाय हंसः सोऽहं इं चं-५ ईं ह्रीं हंसः सोऽहं ॐ
नमो नारायणाय महोत्काय स्वाहा श्रीपद्मिन्यै
तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ श्रीं ॐ नमो नारायणाय हंसः सोऽहं
उं टं-५ ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं ॐ नमो नारायणाय वीरोत्काय
स्वाहा श्रीविष्णु-पत्न्यै मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ श्रीं ॐ नमो
नारायणाय हंसः सोऽहं एं तं-५ ऐं ह्रीं हंसः सोऽहं ॐ नमो
नारायणाय विद्युत्काय स्वाहा श्रीवरदायै अनामिकाभ्यां हुं ।
ॐ श्रीं ॐ नमो नारायणाय हंसः सोऽहं ओं पं-५ औं ह्रीं हंसः
सोऽहं ॐ नमो नारायणाय सहस्रोत्काय स्वाहा श्रीकमल-
रूपायै नमः कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ श्रीं ॐ नमो नारा-
यणाय हंसः सोऽहं अं यं-१० अः ह्रीं हंसः सोऽहं ॐ नमो
नारायणाय अनन्तोत्काय स्वाहा करतल-करपृष्ठाभ्यां फट् ।
इति कर-न्यासः ।

इत्थं क्रमेण षडङ्ग-न्यासं कृत्वा ध्यानं कुर्याद् । यथा—
उक्त प्रकार विनियोग हाथ जोड़कर पढ़े और ऋष्यादि एवं कर
और षडङ्ग न्यासों को कर ध्यान करे—

विद्याऽरविन्द-मुकुरामृत-कुम्भ-पद्म-कौमोदकीं

दर-सुदर्शन-शोभि-हस्ताम् ।

सौदामिनी-मुदित-कान्ति विभाति लक्ष्मी-

नारायणात्मक-खण्डितमात्म-मूर्तेः ॥

वपुरिति शेषः । इति ध्यात्वा न्यसेद् यथा—

अर्थात् लक्ष्मी-नारायण के संयुक्त स्वरूप का ध्यान करे, जो विद्युत् की प्रभा-जैसी कान्ति से शोभायमाना है । लक्ष्मी जी के हाथों में कमल, अमृत-कुम्भ, वर और पुस्तक हैं तथा नारायण के हाथ में शङ्ख-चक्र-गदा और पद्म ।

उक्त प्रकार ध्यान कर न्यास करे—

४ ह्रीं श्रीं क्लीं अं क्लीं श्रीं ह्रीं केशवाय कोट्यै नमः
शिरसि । ४ ह्रीं श्रीं क्लीं आं क्लीं श्रीं ह्रीं नारायणाय कान्त्यै
नमः मुख-वृत्ते । ४ ह्रीं श्रीं क्लीं इं क्लीं श्रीं ह्रीं माधवाय तुष्ट्यै
नमः दक्ष-नेत्रे । ४ ह्रीं श्रीं क्लीं ईं क्लीं श्रीं ह्रीं गोविन्दाय
पुष्ट्यै नमः वाम-नेत्रे । ४ ह्रीं श्रीं क्लीं उं क्लीं श्रीं ह्रीं
विष्णवे धृत्यै नमः दक्ष-कर्णे । ४ ह्रीं श्रीं क्लीं ऊं क्लीं श्रीं
ह्रीं मधु-सूदनाय शान्त्यै नमः वाम-कर्णे । ४ ह्रीं श्रीं क्लीं
ऋं क्लीं श्रीं ह्रीं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः दक्ष-नसि ।
४ ह्रीं श्रीं क्लीं ॠं क्लीं श्रीं ह्रीं वामनाय दयायै नमः
वाम-नसि । ४ ह्रीं श्रीं क्लीं लृं क्लीं श्रीं ह्रीं श्रीधराय
मेधायै नमः दक्ष-गण्डे । ४ ह्रीं श्रीं क्लीं लृं क्लीं श्रीं ह्रीं
हृषीकेशाय सहर्षायै नमः वाम-गण्डे । ४ ह्रीं श्रीं क्लीं एं
क्लीं श्रीं ह्रीं पद्म-नाभाय श्रद्धायै नमः ऊर्ध्वोष्ठे । ह्रीं श्रीं

क्लीं ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं दामोदराय लज्जायै नमः अधरे ।
 ४-३ ओं ३ वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः ऊर्ध्व-दन्त-पंक्तौ । ४-३
 औं ३ संकर्षणाय सरस्वत्यै नमः अधो-दन्त-पंक्तौ ।
 ४-३ अं ३ प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः ललाटे । ४-३ अः
 ३ अनिरुद्धाय रत्यै नमः मुखाभ्यन्तरे । ४-३ कं ३ चक्रिणे
 जयायै नमः दक्ष-पाणि-कक्षौ । ४-३ खं ३ गदिने दुर्गायै
 नमः कूर्परे । ४-३ गं ३ शार्ङ्गिणे प्रभायै नमः मणि-बन्धे ।
 ४-३ घं ३ खड्गिणे सत्यायै (सत्यै) नमः अंगुलि-मूले ।
 ४-३ ङं ३ शङ्खिणे चन्द्रायै (चण्डायै) नमः अंगुल्यग्रे ।
 ४-३ चं ३ हलिने वरायै नमः वाम-पाणि-कक्षौ । ४-३ छं ३
 मुशलिने विलासिन्यै नमः कूर्परे । ४-३ जं ३ शूलिने
 विजयायै नमः मणि-बन्धे । ४-३ झं ३ पाशिने विरजायै
 नमः अंगुलि-मूले । ४-३ ञं ३ अंकुशिने विश्वायै नमः
 अंगुल्यग्रे । ४-३ टं ३ मुकुन्दाय विनतायै नमः दक्षोरौ ।
 ४-३ ठं ३ नन्दजाय सुनन्दायै नमः जानुनि । ४-३ डं ३
 नन्दिने स्मृत्यै नमः गुल्फे । ४-३ ढं ३ नराय ऋद्ध्यै नमः
 अंगुलि-मूले । ४-३ णं ३ नरक-जिते समृद्ध्यै नमः अंगुल्यग्रे ।
 ४-३ तं ३ हरये शुद्ध्यै नमः वामोरौ । ४-३ थं ३ कृष्णाय
 मुक्त्यै नमः जानुनि । ४-३ दं ३ सत्याय बुद्ध्यै नमः गुल्फे ।
 ४-३ धं ३ सात्वताय सत्यै नमः अंगुलि-मूले । ४-३ नं ३ शौरये
 क्षमायै नमः अंगुल्यग्रे । ४-३ पं ३ शूराय रमायै नमः दक्ष-
 पाश्वे । ४-३ फं ३ जनार्दनाय उमायै नमः वाम-पाश्वे ।
 ४-३ बं ३ धराय क्लेदिन्यै नमः पृष्ठे । ४-३ भं ३ विश्व-मूर्तये
 विलम्बायै नमः नाभौ । ४-३ मं ३ वैकुण्ठाय वसुधायै नमः
 उदरे । ४-३ यं ३ त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय सुधायै (स्वधायै)

नमः हृदि । ४-३ रं ३ असृगात्मने वलिने परायै नमः
 दक्षांसे । ४-३ लं ३ मांसात्मने बलानुजाय परायणायै नमः
 ककुदि । ४-३ वं ३ मेदसात्मने बलाय सूक्ष्मायै नमः
 वामांसे । ४-३ शं ३ अस्थ्यात्मने वृषघ्नाय सन्ध्यायै (संघायै)
 नमः हृदादि-दक्ष-पाण्यन्तं । ४-३ षं ३ मज्जात्मने वृषाय
 सन्ध्यायै नमः हृदादि-वाम-पाण्यन्तं । ४-३ सं ३ शुक्रात्मने
 हंसाय प्रभायै नमः हृदादि-दक्ष-पादान्तं । ४-३ हं ३ प्राणा-
 त्मने वराहाय निशायै नमः हृदादि-वाम-पादान्तं । ४-३ लं ३
 शक्त्यात्मने विमलाय मेध्यायै नमः पादादि-नाभ्यन्तं ।
 ४-३ क्षं ३ परमात्मने नृसिंहाय विद्युते नमः नाभ्यादि-
 मूर्धान्तं । इति केशवादि-मातृका-न्यासः ।

उक्त प्रकार केशवादि - मातृका-न्यास हुआ । अब श्रीकण्ठादि-
 मातृका-न्यास करे-

अथ श्रीकण्ठादि-मातृका-न्यासः—ॐ अस्य श्रीकण्ठादि-
 मातृका - न्यासस्य श्रीदक्षिणामूर्ति ऋषिः, गायत्री छन्दः,
 श्रीअर्द्ध-नारीश्वरो देवता, श्रीभुवनेश्वरी-पूजाङ्गत्वेन न्यासे
 विनियोगः ।

इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा न्यसेद् । यथा—

श्रीदक्षिणामूर्तये-ऋषये नमः शिरसि । गायत्री-छन्दसे
 नमः मुखे । श्रीअर्द्ध-नारीश्वर-देवतायै नमः हृदि । श्रीभुवने-
 श्वरी-पूजाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु । इति
 ऋष्यादि न्यासः ।

अथ कर-न्यासः—४ अं कं-५ आं ह्रस्वां अङ्गुष्ठाभ्यां
 नमः । ४ इं चं-५ ईं ह्रस्वीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ४ उं टं-५ ऊं
 ह्रस्वां मध्यमाभ्यां वषट् । ४ एं तं-५ ऐं ह्रस्वीं अनामिकाभ्यां

हुं । ४ ओं पं-५ ओं ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ४ अं यं-
६ अं ह्रौः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट् । इति कर-न्यासः ।

अथ षडङ्गः—४ अं कं-५ आं ह्रौं हृदयाय नमः ।
४ इं चं-५ ईं ह्रौं शिरसे स्वाहा । ४ उं टं-५ ऊं ह्रौं
शिखायै वषट् । ४ एं तं-५ ऐं ह्रौं कवचाय हुं । ४ ओं पं-५
ओं ह्रौं नेत्र-त्रयाय वौषट् । ४ अं यं-६ अं ह्रौः अस्त्राय
फट् । इति षडङ्गः ।

उक्त प्रकार विनियोग हाथ जोड़कर पढ़े और ऋष्यादि न्यास
के बाद कर और षडङ्ग-न्यास को कर ध्यान करे—

अथ ध्यानं—

बन्धूक-काञ्चन-निभं रुचिराक्ष-मालाम्,

पाशांकुशौ च वरदं निज-बाहु-दण्डैः ।

विभ्राणमिन्दु-शकलाभरणं त्रिनेत्रम्

अम्बाऽम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामः ॥

अर्थात् बन्धूक पुष्प व स्वर्ण जैसी आभावाले, त्रिनेत्र, अर्द्ध-चन्द्र से
सुशोभित और सुन्दर अक्ष - माला, पाश, अंकुश तथा वर - मुद्रा को
अपने हाथों में धारण करनेवाले अम्बा-अम्बिकेश से युक्त शरीर (अर्द्ध-
नारीश्वर) का आश्रय मैं ग्रहण करता हूँ ।

इति ध्यात्वा न्यसेत्—

उक्त प्रकार ध्यान कर न्यास करे—

४ ह्रौः अं श्रीकण्ठेशाय पूर्णोदयै नमः शिरसि । ४
ह्रौः आं अनन्तेशाय विरजायै नमः मुख-वृत्ते । ४ ह्रौः
इं सूक्ष्मेशाय शाल्मल्यै नमः दक्ष-नेत्रे । ४ ह्रौः ईं त्रिमूर्ते-
शाय लोलाक्ष्यै नमः वाम-नेत्रे । ४ ह्रौः उं अमरेशाय
वर्तुलाक्ष्यै नमः दक्ष-कर्णे । ४ ह्रौः ऊं अर्घेशाय दीर्घ-घोणायै
नमः वाम-कर्णे । ४ ह्रौः ऋं भार-भूतेशाय दीर्घ-मुख्यै

नमः दक्ष-नसि । ४ हस्तः ऋतुं तिथीशाय गोमुख्यै नमः
 वाम-नसि । ४ हस्तौः लृं स्थाणु-केशाय दीर्घ-जिह्वायै नमः
 दक्ष-गण्डे । ४ हस्तौः लृं हरेशाय कुण्डोदर्यै नमः वाम-गण्डे ।
 ४ हस्तौः एं झिटीशाय ऊर्ध्व-केश्यै नमः ऊर्ध्वोष्ठे । ४ हस्तौः
 ऐं भौतिकेशाय विकृत-मुख्यै नमः अधरे । ४ हस्तौः ओं
 सद्योजातेशाय ज्वाला-मुख्यै नमः ऊर्ध्व-दन्त-पंक्तौ । ४ हस्तौः
 औं अनुग्रहेशाय उत्का-मुख्यै नमः अधो-दन्त-पंक्तौ । ४ हस्तौः
 अं क्रूरेशाय श्रीमुख्यै नमः ललाटे । ४ हस्तौः अंः महासेने-
 शाय विद्या-मुख्यै नमः मुखाभ्यन्तरे ।

उक्त प्रकार ही नीचे लिखे प्रत्येक मन्त्र के आदि में '४-हस्तौः'
 जोड़कर न्यास करे—

कं क्रोधेशाय महा-काल्यै नमः दक्ष - पाणि - कक्षे । खं
 चण्डेशाय सरस्वत्यै नमः कूर्परे । गं पञ्च-वक्त्रेशाय सर्व-सिद्धि-
 दायै नमः मणि-बन्धे । घं शिवोत्तमेशाय त्रैलोक्य - विद्यायै
 नमः अंगुलि-मूले । ङं एक-रुद्रेशाय मन्त्र-शक्त्यै नमः अंगुल्यग्रे ।
 चं कूर्मेशायात्म-शक्त्यै नमः वाम-पाणि-कक्षे । छं एक-नेत्रे-
 शाय भूत-मात्रे नमः कूर्परे । जं चतुराननेशाय लम्बोदर्यै
 नमः मणि-बन्धे । झं अजेशाय द्वाविण्यै नमः अंगुलि-मूले ।
 ञं सर्वेशाय नागर्यै नमः अंगुल्यग्रे । टं सोमेशाय खेचर्यै नमः
 दक्षोरौ । ठं लाङ्गलीशाय मञ्जर्यै नमः जानुनि । डं दारुणे-
 शाय रूपिण्यै नमः गुल्फे । ढं अर्द्ध-नारीश्वराय वीरिण्यै नमः
 अंगुलि-मूले । णं उमा-कान्तेशाय काकोदर्यै नमः अंगुल्यग्रे । तं
 आषाढेशाय पूतनायै नमः वामोरौ । थं दण्डेशाय भद्र-काल्यै
 नमः जानुनि । दं अत्रीशाय योगिन्यै नमः गुल्फे । धं मीनेशाय
 शंखिन्यै नमः अंगुलि-मूले । नं मेघेशाय गर्जिन्यै नमः अंगुल्यग्रे ।

पं लोहितेशाय काल-रात्र्यै नमः दक्ष-पार्श्वे । फं शिखिनेशाय
 कुब्जिन्यै नमः वाम-पार्श्वे । बं छाग-लण्डेशाय कर्पदिन्यै नमः
 पृष्ठे । भं द्विरण्डेशाय वज्रायै नमः नाभौ । मं महा-कालेशाय
 जयायै नमः उदरे । यं त्वगात्मने वालीशाय सुमुख्यै नमः
 हृदि । रं असृगात्मने भुजेशाय रेवत्यै नमः दक्षांसे । लं
 मांसात्मने पिनाकेशाय माधव्यै नमः ककुदि । वं मेदसात्मने
 खड्गीशाय वारुण्यै नमः वामांसे । शं अस्थ्यात्मने वकेशाय
 वायव्यै नमः हृदादि-दक्ष-पाण्यन्तं । षं मज्जात्मने श्वेतेशाय
 रक्षो-विदारिण्यै नमः हृदादि-वाम-पाण्यन्तं । सं शुक्रात्मने
 भृग्वीशाय सहजायै नमः हृदादि-दक्ष-पादान्तं । हं प्राणात्मने
 नकुलेशाय महा - लक्ष्यै नमः हृदादि - वाम - पादान्तं । लं
 शक्त्यात्मने शिवेशाय व्यापिन्यै (मात्रे) नमः पादादि-
 नाभ्यन्तं । क्षं परमात्मने वर्त्तेशाय महा-मायायै नमः नाभ्यादि-
 मूर्धान्तं । इति श्रीकण्ठादि-न्यासः ।

उक्त प्रकार श्रीकण्ठादि-न्यास हुआ । अब पूर्व-षोढा-न्यास के लिए
 हाथ जोड़कर विनियोग पढ़े—

अथ पूर्व-षोढा-न्यासः—ॐ अस्य श्रीषोढा-न्यासस्य श्री-
 दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, श्रीमातृका त्रिपुर-सुन्दरी
 देवता, ऐं बीजं, सौः शक्तिः, क्लीं कोलकं, श्रीभुवनेश्वरो-
 पूजाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः ।

इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा, न्यसेद् । यथा—

श्रीदक्षिणामूर्ति-ऋषये नमः शिरसि । पंक्तिश्छन्दसे नमः
 मुखे । श्रीमातृका - त्रिपुर - सुन्दरी-देवतायै नमः हृदि । ऐं
 बीजाय नमः गुह्ये । सौः शक्तये नमः पादयोः । क्लीं कोलकाय

नमः नामौ । श्रीभुवनेश्वरी-पूजाङ्गत्वेन न्यासे विनियोगाय

नमः सर्वाङ्गेषु । इति ऋष्यादि-न्यासः ॥ अथ कर-न्यासः—

उक्त प्रकार ऋष्यादि न्यास हुआ । अब कर-न्यास करे—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं कं-५ आं ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः । ४ इं चं-५ ईं क्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ४ उं टं-५ ऊं सौः मध्यमाभ्यां वषट् । ४ एं तं-५ ऐं अनामिकाभ्यां हुं । ४ ओं पं-५ औं क्लीं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ४ अं यं-६ अं सौः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट् । इति कर-न्यासः । अथ षडङ्गः —

उक्त प्रकार कर-न्यास हुआ । अब षडङ्ग-न्यास करे—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं कं-५ आं ऐं हृदयाय नमः । ४ इं चं-५ ईं क्लीं शिरसे स्वाहा । ४ उं टं-५ ऊं सौः शिखायै वषट् । ४ एं तं-५ ऐं कवचाय हुं । ४ ओं पं-५ औं क्लीं नेत्र-त्रयाय वौषट् । ४ अं यं-६ अं सौः अस्त्राय फट् ।

उक्त प्रकार ऋष्यादि न्यास कर ध्यान करे—

उद्यत् - सूर्य - सहस्राभां पीनोन्नत - पयोधराम् ।

रक्त-माल्याम्बरां तामारक्त - भूषण - भूषिताम् ॥

पाशाङ्कुश-धनुर्बाण - भास्वत्-पाणि - चतुष्टयाम् ।

लसन्नेत्र-त्रयां स्वर्ण-मुकुटोद्भासि - चन्द्रिकाम् ॥

गणेश - ग्रह - नक्षत्र - योगिनी-राशि-रूपिणीम् ।

देवीं पीठ - मयीं ध्यायेन्मातृकां सुन्दरीं पराम् ॥

उदीय-मान सहस्रों सूर्यों जैसी आभावाली, पीनोन्नत-पयोधरा, लाल-पुष्प-माला एवं वस्त्र-धारिणी, आरक्त आभूषणों से विभूषिता, पाश-अङ्कुश-धनुष-बाण से शोभायमान चार हाथोंवाली, तीन नेत्रों से सुशोभिता, स्वर्ण-मुकुट को प्रदीप्त करनेवाली चन्द्रिका-जैसी, गणेश-ग्रह-नक्षत्र-योगिनी-राशि-स्वरूपा पीठ-व्यापिनी परा सुन्दरी मातृका देवी का मैं ध्यान करता हूँ ।

इति ध्यात्वा परानन्दोद्यतां समष्टि-रूपिणीं ध्यायेत्—
अव परानन्द हेतु उद्यता समष्टि-रूपिणी भगवती का ध्यान करे—

तरुणादित्य - सङ्काशाः गज-वक्त्राः त्रिलोचनाः ।

पाशांकुश - वराभीति - कराः शक्ति-समन्विताः ॥

तास्तु सिन्दूर-वर्णाभाः सर्वालङ्कार-शोभिताः ।

एक - हस्ते धृताम्भोजा इतरालिङ्गित - प्रियाः ॥

तरुण सूर्य जैसी प्रभावाले, गज-मुख, त्रिनेत्र, हाथों में पाश-अंकुश-वर-अभय-धारी सभी गणेश-विग्रह अपनी शक्ति से युक्त हैं। वे सभी शक्तियाँ सिन्दूर-वर्णा, आभूषणों से विभूषिता, एक हाथ में कमल-पुष्प लिए और दूसरे हाथ से प्रियतम को आलिङ्गित किए हुए हैं।

इति ध्यात्वा न्यसेत् ।

उक्त प्रकार ध्यान कर न्यास करे, आदि में 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं' जोड़ ले—

अं विघ्नेश्वराय श्रियै नमः शिरसि । अं विघ्न-राजाय
ह्रियै नमः मुख-वृत्ते । इं विनायकाय तुष्ट्यै नमः दक्ष-नेत्रे ।
ईं शिवोत्तमाय शान्त्यै नमः वाम-नेत्रे । उं विघ्न-कृते पुष्ट्यै
नमः दक्ष-कर्णे । ऊं विघ्न-हर्ते सरस्वत्यै नमः वाम-कर्णे ।
ऋं विघ्न-राजे रत्यै नमः दक्ष-नासिके । ॠं गण-नाथाय
मेधायै नमः वाम-नासिके । लृं एक-दन्ताय कान्त्यै नमः
दक्ष-गण्डे । लृं द्वि-दन्ताय कामिन्यै नमः वाम-गण्डे । एं
गज-वक्त्राय मोहिन्यै नमः ऊर्ध्वोष्ठे । ऐं निरञ्जनाय जटायै
नमः अधरे । औं कपर्दिने ॐ तीव्रायै नमः ऊर्ध्व-दन्त-
पङ्क्तौ । औं दीर्घ-वक्त्राय ज्वालिन्यै नमः अधो-दन्त-पङ्क्तौ ।

अं शङ्कु-कर्णाय नन्दायै नमः ललाटे । अः वृषभ-ध्वजाय
रसायै नमः आस्ये (मुखे) । कं गण-नाथाय रूपिन्यै नमः दक्ष-
पाणि-कक्षे । खं गजेन्द्राय मुद्रायै नमः कूर्परे । गं शूष-कर्णाय
जयिन्यै नमः मणि-बन्धे । घं त्रि-नेत्राय सत्यै नमः अंगुलि-

मूले । डं लम्बोदराय विघ्नेशाय नमः अंगुल्यग्रे । चं महा-
नादाय स्वरूपिण्यै नमः वाम-पाणि-कक्षे । छं चतुर्मूर्तये
कामदायै नमः कूर्परे । जं सदा-शिवाय मद-विकलायै नमः
मणि-बन्धे । झं आमोदाय विकटायै नमः अंगुलि-मूले ।
ञं दुर्मुखाय धूम्रायै नमः अंगुल्यग्रे । टं सुमुखाय भूतयै नमः
दक्षोरौ । ठं प्रमोदाय* भूम्यै नमः जानुनि । डं एक-पादाय
रत्यै नमः दक्ष-गुल्फे । ढं द्वि-जिह्वाय रमायै नमः अंगुलि-
मूले । णं शूराय मानुष्यै नमः अंगुल्यग्रे । तं वीराय मकर-
ध्वजायै नमः वामोरौ । थं षण्मुखाय विकलायै नमः
जानुनि । दं वरदाय भ्रुकुट्यै नमः गुल्फे । धं वाम-देवाय
लज्जायै नमः अंगुलि-मूले । नं वक्र-तुण्डाय दीर्घ-घोणायै
नमः अंगुल्यग्रे । पं द्विरण्डाय** धनुर्धरायै नमः दक्ष-पार्श्वे ।
फं सेनान्यै यामिन्यै नमः वाम-पार्श्वे । बं ग्रामण्यै रात्र्यै नमः
पृष्ठे । भं मत्ताय चन्द्रिकायै नमः नाभौ । मं विमलाय
शशि-प्रभायै नमः उदरे । यं मत्त-वाहनाय लोलायै नमः
हृदि । रं जटिने चञ्चलाक्ष्यै + नमः दक्षांसे । लं मुण्डिने
ऋद्ध्यै नमः ककुदि । वं खड्गिने दुर्भगायै नमः वामांसे ।
शं वरेण्याय सुभगायै नमः हृदादि-दक्ष-पाण्यन्तं । षं वृष-
केतवे शिवायै नमः हृदादि-वाम-पाण्यन्तं । सं भक्ष्य-प्रियाय
दुर्गायै नमः हृदादि-दक्ष-पादान्तं । हं मेघदाय x कालिकायै
नमः हृदादि-वाम-पादान्तं । लं गणपतये काल-जिह्वायै नमः
पादादि-नाभ्यन्तं । क्षं गणेशाय विघ्न-हारिण्यै नमः नाभ्यादि-
मूर्धान्तं । इति गणेश-न्यासः ॥ अथ ग्रह-न्यासः—

उक्त प्रकार गणेश - न्यास हुआ । अब ग्रह-न्यास हेतु ध्यान करे-

पाठभेद—[ॐ] कपालिने, * प्रमोदाय, ** द्विरण्डाय, [ॐ] मर्ताय,

+ चञ्चलायै, x मेघनादाय ।

रक्तं श्वेतं रक्त-श्यामं पीतं च पाण्डुरम् ।

धूम्र-कृष्णं कृष्ण-धूम्रं धूम-धूम्रं विचिन्तयेत् ॥

रवि-मुख्यान् काम-रूपान् सर्वाभरण-भूषितान् ।

वामोरु-न्यस्त-हस्तांश्च दक्ष-हस्त-वर-प्रदान् ॥

शक्तयोपि तथा ध्येया वराभय-कराम्बुजाः ।

स्व-स्व-प्रियाङ्गु-निलयाः सर्वाभरण-भूषिताः ॥

रवि को रक्त-वर्ण, चन्द्र को श्वेत-वर्ण, मङ्गल को रक्त-वर्ण, बुध को श्याम-वर्ण, वृहस्पति को पीत-वर्ण, शुक्र को पाण्डुर-वर्ण, शनि को धूम्र-वर्ण, राहु को कृष्ण-वर्ण और केतु को धूम्र-वर्ण का ध्यान करे । ये सभी सुन्दर रूपवाले और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित हैं । बायाँ हाथ जंघा पर रखे हुए दाएँ हाथ से वर दे रहे हैं । इनकी शक्तियाँ भी उसी वर्ण की और हाथों में वर एवं अभय मुद्रा लिए ध्यातव्य हैं । ये अपने-अपने प्रियतम की गोद में बैठी हैं और सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषिता हैं ।

इति ध्यात्वा न्यसेत्—

उक्त प्रकार ध्यान कर न्यास करे । प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं' जोड़ ले—

अं-१६ सूर्याय रेणुकाम्बायै नमः श्रू-मध्ये । यं इं चन्द्रा-
यामृताम्बायै नमः नेत्र-त्रये । कं-५ मङ्गलाय धामाम्बायै
नमः हृदयोपरि । चं-५ बुधाय ज्ञान-रूपाम्बायै नमः कण्ठे ।
टं-५ वृहस्पतये यशस्विन्यम्बायै नमः हृदये * । तं शुक्राय
शाकम्बर्यम्बायै नमः नाभौ । पं-५ शनिश्चराय शक्त्यम्बायै
नमः मुखे । शं षं सं हं** राहवे कृष्णाम्बायै नमः पादयोः ।
ळं क्षं ॐ केतवे धूम्राम्बायै नमः । इति ग्रह-न्यासः ॥ अथ
नक्षत्र-न्यासः ॥

उक्त प्रकार 'ग्रह-न्यास' हुआ । अब 'नक्षत्र-न्यास' हेतु ध्यान करे—
पाठभेद—* हुन्मध्ये, ** शं षं सं, ॐ हं लं क्षं

ज्वलत्-कालाग्नि-सङ्काशा वरदाभय-पाणिकाः ॥

नति-पाण्योऽश्विनी-मुख्याः सर्वाभरण-भूषिताः ॥

अश्विनी आदि नक्षत्रों को जलती हुई कालाग्नि के समान प्रकाशमान और वर - अभय - मुद्राओं से युक्त हाथोंवाले तथा सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषित ध्यान करना चाहिए ।

इति ध्यात्वा न्यसेत्—

उक्त प्रकार ध्यान कर 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं' जोड़कर न्यास करे—

ललाटे अं आं अश्विन्यै नमः । दक्ष-नेत्रे इं ईं भरण्यै नमः । वामे उं ऊं कृत्तिकायै नमः । दक्ष-कर्णे ऋं ॠं लृं लृं रोहिण्यै नमः । वामे एं मृगशिरायै नमः । दक्ष-नासिके ऐं आर्द्रायै नमः । वामायां ओं औं पुनर्वसवे नमः । कण्ठे कं पुष्पाय नमः । दक्ष-स्कन्धे खं गं अश्लेषाय नमः । वामे घं ङं मघायै नमः । दक्ष-कपोले चं पूर्वा-फाल्गुण्यै नमः । वामे छं जं उत्तरा-फाल्गुण्यै नमः । दक्ष-मणि-बन्धे झं ञं हस्ताय नमः । वामे टं ठं चित्रायै नमः । दक्ष-स्तने डं स्वात्यै नमः । वामे ढं णं विशाखायै नमः । नाभौ तं थं दं अनुराधायै नमः । दक्ष-कट्यां धं नं ज्येष्ठायै नमः । वामायां पं फं मूलाय नमः । दक्षोरौ बं पूर्वाषाढायै नमः । वामोरौ भं उत्तराषाढायै नमः । दक्ष-जानुनि मं श्रवणायै नमः । वामे यं रं धनिष्ठायै नमः । दक्ष-जंघायां लं शतभिषाय नमः । वामायां वं शं पूर्वा-भाद्रपदायै नमः । दक्ष-पादे षं सं हं उत्तरा-भाद्रपदायै नमः वामे । लं क्षं अं अः रेवत्यै नमः । इति नक्षत्र-न्यासः ॥ अथ योगिनी न्यासः—

यह 'नक्षत्र-न्यास' हुआ । अब 'योगिनी-न्यास' हेतु ध्यान करे—

पाठ-भेद— ॐ पाणयः

रक्तां श्यामां तथा कृष्णां पीतां ज्योतिः-स्वरूपिणीम् ।

शुक्ल-वर्णां तथा सर्व-वर्णां ध्यायेत् तु योगिनीम् ॥

डाकिन्याद्यामायुधैः स्वैः स्वैर्लसत्-पाणि - पङ्कजाम् ।

लाल, श्याम, कृष्ण, पीत, श्वेत और सभी रंगों (बहु-रङ्गी) के वर्णवाली एवं ज्योतिर्मयी योगिनी तथा डाकिनी का ध्यान करे, जो सभी अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र कर-कमलों में लिए शोभायमान हैं ।

इति ध्यात्वा न्यसेत् (आदौ 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं' योजयित्वा) ।

उक्त प्रकार ध्यान कर न्यास करे (पहले के समान प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं' जोड़ लें) —

अं आं १६ डां डीं डमलवरयूं डाकिन्यै मां रक्ष रक्ष
त्वगात्मने नमः कण्ठे । कं-५ चं-५ टं ठं रां रीं रमलवरयूं
राकिन्यै मां रक्ष रक्ष असृगात्मने नमः हृदये । डं ढं णं तं-५
पं फं लां लीं लमरवरयूं लाकिन्यै मां रक्ष रक्ष मांसात्मने
नमः नाभौ । बं भं मं यं रं लं कां कीं कमलवरयूं काकिन्यै
मां रक्ष रक्ष मेदसात्मने नमः स्वाधिष्ठाने । वं शं षं सं सां
सीं समलवरयूं शाकिन्यै मां रक्ष रक्ष अस्थ्यात्मने नमः
मूलाधारे । हं लं क्षं हां ह्रीं हमलवरयूं हाकिन्यै मां रक्ष रक्ष
मज्जात्मने नमः भ्रू-मध्ये । अं आं...अः कं खं...क्षं यां यीं यूं
यैं यौं यः यमलवरयूं याकिन्यै मां रक्ष रक्ष सर्व-धात्वात्मने
नमः ब्रह्म-रन्ध्रे । इति योगिनी-न्यासः ॥

उक्त प्रकार 'योगिनी-न्यास' कर 'राशि-न्यास' करे । यथा —

अथ राशि-न्यासः—

रक्तं श्वेतं हरिद्वर्णं पाण्डु-चित्रं सितं स्मरेत् ॥

पिशङ्ग-पिङ्गलौ वभ्रु - कबुरौ सित-धूम्रकौ ॥

पाठ-भेद—[ॐ] रक्तं श्वेतं तथा पीतं पाण्डु चित्रं सितं न्यसेत् ।

राशियों को रक्त, श्वेत, हरित, पाण्डु, चित्र, पिण्ड, पिङ्गल, वज्र, कवर और श्वेत-धूम्र वर्ण ध्यान करना चाहिए ।

इति ध्यात्वा न्यसेत्—

इस प्रकार ध्यान कर न्यास करे—

दक्ष-गुल्फे अं आं इं ईं मेषाय नमः । दक्ष-जानुनि उं ऊं
वृषाय नमः । दक्ष-वृषणे ऋं ॠं लृं लृं मिथुनाय नमः ।
दक्ष-कुक्षौ एं ऐं कर्कटाय नमः । दक्ष-स्कन्धे ओं औं सिंहाय
नमः । दक्ष-शिरो-भागे अं अः कन्यायै नमः ।

वाम-शिरो-भागे कं-५ तुलाधाराय नमः । वाम - स्कन्धे
चं-५ वृश्चिकाय नमः । दक्ष-स्कन्धे टं-५ धनुषे नमः । वाम-
वृषणे तं-५ मकराय नमः । वाम-जानुनि पं-५ कुम्भाय
नमः । वाम-गुल्फे यं रं लं वं शं षं सं हं ङं क्षं मीनाय
नमः । इति राशि-न्यासः ॥

उक्त प्रकार 'राशि-न्यास' कर 'पीठ-न्यास' करे । यथा—

अथ पीठ-न्यासः—

सितासितारुण-श्याम-हरित्-पीतान्यनु-क्रमात् ।

पुनः पुनः क्रमाद् देवि ! पञ्चाशत्-स्थान-सञ्चये ॥

पीठानि संस्मरेद् विद्वान् सर्व-कामार्थ-सिद्धये ।

श्वेत और कृष्ण, अरुण, श्याम, हरित तथा पीत वर्ण के क्रम से पीठों का ध्यान पचास स्थानों में सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए विद्वान् साधक को करना चाहिए ।

इति ध्यात्वा न्यसेत् । यथा—

उक्त प्रकार ध्यान कर न्यास करे । यथा—

अं काम - रूप - पीठाय नमः शिरसि । आं वाराणसी-
पीठाय नमः मुख-वृत्ते । इं नेपाल-पीठाय नमः दक्ष-नेत्रे । ईं

पौण्ड्र-वर्धन-पीठाय नमः वाम-नेत्रे । उं पुरस्थिर-पीठाय नमः
 दक्ष-कर्णे । ऊं कान्यकुब्ज-पीठाय नमः वाम-कर्णे । ऋं पूर्ण-
 गिरि-पीठाय नमः दक्ष-नासिकायां । ॠं अर्बुद-पीठाय नमः
 वाम-नासिकायां । लृं आम्नातकेश्वर-पीठाय^१ नमः दक्ष-
 गण्डे । लृं एकाग्र-पीठाय नमः वाम-गण्डे । एं त्रिलोत-पीठाय
 नमः ऊर्ध्वोष्ठे । ऐं काम-कोटि-पीठाय^२ नमः अधरे । ओं
 कैलास-पीठाय नमः ऊर्ध्व-दन्त-पंक्तौ । औं भृगु-नगर-पीठाय^३
 नमः अधो-दन्तेषु । अं केदार-पीठाय नमः ललाटे । अं चन्द्रपुर-
 पीठाय नमः चिबुके । कं श्रीपुर-पीठाय नमः दक्ष-बाहु-मूले ।
 खं ॐकार-पीठाय नमः कूर्परे । गं जालन्धर-पीठाय नमः मणि-
 बन्धे । घं मालव-पीठाय नमः अंगुलिषु । ङं कुलान्तक-पीठाय
 नमः अंगुल्यग्रे । चं देवीकोट-पीठाय नमः वाम-बाहु-मूले । छं
 गोकर्ण-पीठाय नमः कूर्परे । जं मारुतेश्वर-पीठाय नमः मणि-
 बन्धे । झं अट्टहास-पीठाय नमः अंगुलीषु । ञं विराट-पीठाय^४
 नमः अंगुल्यग्रेषु । टं गज-गृह-पीठाय नमः दक्षोरौ । ठं महा-
 पथ-पीठाय नमः जानुनि । डं कोटल-गिरि-पीठाय नमः गुल्फे ।
 ढं ऐलापुर-पीठाय नमः अंगुलि-मूले । णं कालीश्वर-पीठाय^५
 नमः अंगुल्यग्रेषु । तं जयान्तक-^६ पीठाय नमः वामोरौ ।
 थं उज्जयिनी-पीठाय नमः जानुनि । दं चरित्रापुर-^७ पीठाय
 नमः गुल्फे । धं क्षीरिक-पीठाय नमः अंगुलि-मूले । नं हस्तिना-
 पुर-पीठाय नमः अंगुल्यग्रेषु । पं उड्डीश-पीठाय नमः दक्ष-
 पार्श्वे । फं प्रयाग-पीठाय नमः वाम-पार्श्वे । बं षष्ठीश-पीठाय
 नमः पृष्ठे । भं मायापुर-पीठाय नमः नाभौ । मं जलेश्वर-

पाठ-भेद—^१अमृतकेश्वर०, ^२काम-कोट०, ^३भृगुनार०, ^४विराज०,

^५कालेश्वर०, ^६जयान्तक०, ^७चरित्रापुर०

पीठाय नमः जठरे । यं मलय-गिरि-पीठाय नमः हृदि ।
 रं श्रीशैल-पीठाय नमः दक्षांसे । लं मेरु-पीठाय नमः ककुदि ।
 वं गिरिवर-पीठाय नमः वामांसे । शं महेन्द्रपुर-पीठाय नमः
 हृदादि-दक्ष-पाण्यन्तं । षं वामनपुर-पीठाय नमः हृदादि-वाम-
 पाण्यन्तं । सं हिरण्यपुर-पीठाय नमः हृदादि-दक्ष-पादान्तं ।
 हं महालक्ष्मी-पुर-पीठाय नमः हृदादि-वाम-पादान्तं । लं
 उड्ड्याण-पीठाय नमः पादादि-नाभ्यन्तं । क्षं छाया-छत्र-
 पीठाय नमः नाभ्यादि-मूर्धान्तं । इति पीठ-न्यासः ॥ इति
 षोढा-न्यासः ॥

उक्त प्रकार 'पीठ-न्यास' कर 'षोढा-न्यास' पूर्ण करे ।

अथ महा-योगिनी-न्यासः । तत्र विशुद्धौ षोडश-दल-
 कमले—

अब 'महा-योगिनी-न्यास' करे । पहले विशुद्ध-चक्र के षोडश-दल-कमल में
 'डाकिनी' का ध्यान करे—

रक्तारक्तं त्रिनेत्रां पशु-जन - भय-कृत्,

शूल-खट्वाङ्ग-हस्तां वामे खेटं दधानाम् ।

चषकमपि सुरा - पूरितं चैक-वक्त्रम्,

अत्युग्रामुग्र - दंष्ट्रामरि-कुल - मथनीम् ॥

पायसान्न-प्रसक्तां कण्ठ-स्थानेऽमृताढ्यैः ।

परिवृत - वपुषं भावयेड्डाकिनीं ताम् ॥

मैं उन डाकिनी का ध्यान करता हूँ, जिनके तीनों नेत्र रक्ताभ हैं; बाएँ हाथों
 में पशु-भावपन्न लोगों को भय देनेवाले शूल एवं खट्वाङ्ग और बाएँ हाथ में खेट
 तथा सुरा-पूर्ण पात्र हैं । अत्यन्त उग्र दंष्ट्राओं से युक्त मुखवाली वे उग्र तेजस्विनी
 शत्रुओं का नाश करनेवाली हैं । खीर उन्हें प्रिय है और उनका कण्ठ अमृत से
 सुशोभित है ।

इति ध्यात्वा न्यसेत् । तत्र विशुद्धौ षोडश-दल-कमले—

उक्त प्रकार ध्यान कर विशुद्ध चक्र के षोडश-दल-कमल में न्यास करे—

डां डी डूं डैं डौं डः डमलवरयूं डाकिनि ! मां रक्ष रक्ष,
मम त्वग्-धातुं रक्ष रक्ष, सर्व-सत्त्व-वशङ्कुरि देवि ! आगच्छा-
गच्छ इमां पूजां गृहाण गृहाण । ऐं घोरे देवि ! ह्रीं सः परम-
घोरे ! हुं घोर-रूपे ! एहि एहि । नमश्चामुण्डे ! डलरकसहैं
श्रीभुवनेश्वरि देवि वरदे ! विच्चे । अं-१६ विशुद्ध - पीठस्थे
विशुद्ध-डाकिनि!विशुद्ध-नाथ-देव ! श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

इत्यंगुष्ठानामिकाभ्यां कर्णिकायां विन्यस्य तदग्रादि-
परितस्तदावरण-शक्तीन्यसेत्—

उक्त न्यास अंगुष्ठ-अनामिका से कर्णिका में करे । 'तब आगे के दल से चारों
ओर 'डाकिनी' की आवरण-शक्तियों का न्यास करे—

अं अमृतायै नमः । आं आर्क्षिण्यै नमः । इं इन्द्राण्यै
नमः । ईं ईशान्यै नमः । उं उमायै नमः । ऊं ऊर्ध्व-केशिन्यै
नमः । ऋं ऋद्धिदायै नमः । ॠं ऋषायै नमः । लूं लृङ्कारायै
नमः । लूं लृङ्गायै नमः । एं एक-पादायै नमः । ऐं ऐश्वर्या-
त्मिकायै नमः । ओं ओंकारात्मिकायै नमः । औं औषधात्मि-
कायै नमः । अं अम्बिकात्मिकायै नमः । अंः अक्षरात्मिकायै
नमः ।

इति डाकिनी - वद् ध्यात्वा प्राग् - दक्षिणेन न्यसेत् ।
ततोऽनाहते द्वादश-दल-कमले ध्यानम्—

इस प्रकार डाकिनी-वत् ध्यान कर पूर्व से दक्षिण की ओर न्यास करे । तब
अनाहत-चक्र के द्वादश-दल-कमल में 'राकिनी' का ध्यान करे—

श्यामां शूलाग्र^१-हस्तां डमरुक-सहितं तीक्ष्ण-चक्रं वहन्तीं ।
श्याम^२-रक्तां त्रि-नेत्रां भ्रुकुटि-वलि-लसद्-दृष्ट^३-दन्त-प्रभाभिः ॥

पाठ-भेद-१ शूलाक्ष, २ ढ्यास्यां, ३ दृष्ट

दीप्तास्यां देव-देवीं हृदय-कमलगां रक्त - धात्वेक-नाथाम् ।
शुद्धान्नेषु प्रसक्तां मधु-मद-मुदितां चिन्तयेद् राकिनीं ताम् ॥

मैं उन 'राकिनी' का ध्यान करता हूँ, जो श्याम-वर्णा, शूल-डमरू-चक्र-हस्ता, श्याम-रक्त-वर्णवाले तीन नेत्रोंवाली, सुन्दर भौहों से शोभायमाना और दृश्यमान दाँतों की चमक से प्रदीप्त-मुखी हैं । रक्त-धातु की एक-मात्र स्वामिनी राकिनी हृदय-कमल में विराजमाना हैं और शुद्ध अन्न में आसक्ता तथा मधु-पात्र से आनन्दिता रहती हैं ।

इति राकिनीं सावरणां ध्यात्वा तत्-कर्णिकायां तन्मन्त्रं
न्यसेत्—

इस प्रकार आवरण-देवताओं से युक्त 'राकिनी' का ध्यान कर अनाहत-चक्र की कर्णिका में उनके मन्त्र का न्यास करे—

रां रीं रूं रें रौं रः रमलवरयूं राकिनि ! मां रक्ष रक्ष,
मम रक्त-धातुं रक्ष रक्ष, सर्व-सत्त्व-वशङ्कुरि देवि ! आगच्छा-
गच्छ, इमां पूजां गृह्ण गृह्ण । ऐं घोरे देवि ! ह्रीं सः परम-
घोरे ! हूं घोर-रूपे एहोहि नमश्चामुण्डे ! डरलकसहैं श्रीभुवने-
श्वरि देवि वरदे ! विच्चे । कं... ठं अनाहत-पीठस्थे अनाहत-
राकिनि ! अनाहत-नाथ-देव ! श्रोपादुकां पूजयामि नमः ।

इति पूर्व-वन्द्यस्य दलेषु परितस्तदावरण-देवता न्यसेत्—

इस प्रकार न्यास कर पूर्व-वत् द्वादश-दल कमल के दलों में चारों ओर 'राकिनी' की आवरण-देवताओं का न्यास करे—

कं काल-रात्र्यै नमः । खं खातितायै । गं गायत्र्यै । घं
घण्टा - धारिण्यै । ङं ङार्णात्मिकायै । चं चामुण्डायै ।
छं छायायै । जं जयायै । झं झांकारिण्यै । ञं ञार्णात्मिकायै ।
टं टङ्क-हस्तायै । ठं ठंकारिण्यै ।

इति राकिनीं ध्यात्वा न्यसेत् । ततो मणिपूरे दश-
दल-कमले—

इस प्रकार 'लाकिनी'-वत् ध्यान कर न्यास करे । तब मणिपूर-चक्र के दश-दल-कमल में 'लाकिनी' का ध्यान करे—

कृष्णां देवां त्रि-वक्त्रां त्रि-नयन-लसितां दंष्ट्रिणीमुग्र-रूपां ।
वज्रं शक्तिं च दण्डाभय-वरद-करां दक्ष-वामे दधानां ॥
ध्याये नाभिस्थ-पद्मे दश-दल-विलसत्कर्णिके लाकिनीं तां ।
मांसस्थां गौड-भक्तोत्सुक-हृदय-वतीं विन्यसेत् साधकेन्द्रः ॥

में नाभि में स्थित दश-दल-कमल की कर्णिका में उन 'लाकिनी' देवी का ध्यान करता हूँ, जो कृष्ण-वर्णा, तीनों नेत्रों से सुशोभित तीन मुखोंवाली, दंष्ट्राओं से युक्त उग्र-स्वरूपा और दाएँ-बाएँ हाथों में वज्र, शक्ति, दण्ड और अभय-वर-धारिणी हैं । वे मांस-धातु की स्वामिनी गौड़ भक्तों के लिए उत्सुक हृदयवाली हैं ।

इति ध्यात्वा—

इस प्रकार ध्यान कर 'लाकिनी'-मन्त्र का वहाँ न्यास करे—

लां लीं लूं लैं लौं लः लमलवरयूं लाकिनि ! मां रक्ष रक्ष
मम मांस-धातुं रक्ष, सर्व-सत्त्व-वशङ्करि देवि ! आगच्छा-
गच्छ, इमां पूजां गृह्ण गृह्ण । ऐं घोरे देवि ! ह्रीं सः
परम-घोरे ! हूं घोर-रूपे ! एह्येहि नमश्चामुण्डे ! डरलकसहैं
श्रीभूवनेश्वरि देवि वरदे ! विच्चे । डं...फं मणि-पूरक-पीठस्थे
मणि-पूरक-लाकिनि ! मणि - पूरक - नाथ - देव ! श्रीपादुकां
पूजयामि नमः ।

इति कर्णिकायां विन्यस्य लाकिनी-वत् ध्यात्वा न्यसेत् ।
परितस्तदावरण-देवता लाकिनी-वत् ध्यात्वा न्यसेत्—

इस प्रकार कर्णिका में न्यास कर दश-दलों में 'लाकिनी'-वत् ध्यान कर उनकी
आवरण-देवताओं का न्यास करे—

डं डामर्यै नमः । डं डङ्कारिण्यै । णं णङ्कारिण्यै ।
तं तामर्यै । थं स्थान-देव्यै । दं दाक्षारिण्यै । धं धात्र्यै ।
नं नन्दायै । पं पार्वत्यै । फं फेत्कारिण्यै ।

ततः स्वाधिष्ठाने षट्-दल-कमले—

तव स्वाधिष्ठान-चक्र के षट्-दल-कमल में 'काकिनी' देवी का ध्यान करे—

स्वाधिष्ठानाख्य-पद्मे रस-दल-लसिते वेद-वक्त्रां त्रिनेत्रां ।

पीताभां धारयन्तीं त्रिशिख-गुण-कपालाभयान् पातु सर्वा ॥

मेदो-धातु-प्रतिष्ठामति-मद-मुदितां बन्धिनीत्यादि-वीतां ।

दध्यन्ने सक्त-चित्तामभिमत-फलदां काकिनीं भावयेत् तां ॥

छः दलों से शोभायमान स्वाधिष्ठान - चक्र में चतुर्मुखी, त्रिनेत्रा, पीत-वर्णा, त्रिशूल-पाश-कपाल और अभय-मुद्रा (चार कर-कमलों में) लिए सभी की रक्षा करें। मेदा (चर्वी) धातु की अधिष्ठात्री, अत्यन्त मदोल्लास से प्रसन्ना, 'बन्धिनी' आदि शक्तियों से सुशोभिता, दही-युक्त अन्न में आसक्ता, अभीष्ट-फल-दायिनी 'काकिनी' का मैं ध्यान करता हूँ ।

इति ध्यात्वा कर्णिकायामेतन्मन्त्रं न्यसेत्—

इस प्रकार ध्यान कर षट्-दल स्वाधिष्ठान-चक्र की कर्णिका में निम्न मन्त्र का न्यास करे—

कां कीं कूं कैं कौं कः कमलवरयूं काकिनि ! मां रक्ष रक्ष
मम मेदो-धातुं रक्ष रक्ष सर्व-सत्त्व-वशङ्कुरि देवि ! आगच्छा-
गच्छ इमां पूजां गृह्ण गृह्ण । ऐं घोरे देवि ! ह्रीं सः परम-घोरे !
हूं घोर-रूपे ! एहोहि नमश्चामुण्डे ! डरलकसहैं श्रीभुवनेश्वरि
देवि वरदे ! विचचे । बं भं मं यं रं लं स्वाधिष्ठान-पीठस्थे
स्वाधिष्ठान - काकिनि ! स्वाधिष्ठान-नाथ-देव ! श्रीपादुकां
पूजयामि नमः ।

इति विन्यस्य परतस्तद्-दलेषु परिवार-देवता न्यसेत्—

उक्त प्रकार न्यास कर स्वाधिष्ठान के छहों दलों में 'काकिनी' की आवरण-देवताओं का न्यास करे—

बं बन्धिन्यै नमः । भं भद्र-काल्यै । मं महा-मायायै ।
यं यशस्विन्यै । रं रमायै । लं लम्बोष्ठ्यै ।

इति काकिनी-वद् ध्यात्वा न्यसेत् । ततो मूलाधारे
चतुर्दल-कमल-कर्णिकायां—

‘काकिनी’-वत् ध्यान कर उक्त शक्तियों का न्यास करे । तब
मूलाधार-चक्र के चार दलवाले कमल की कर्णिका में ‘शाकिनी’ का
ध्यान करे—

देवीं ज्योति-स्वरूपां त्रिनयन-विलसत्पञ्च-वक्त्रां सुदंष्ट्रां ।
हस्ताम्भोजेषु^१ चापं सृणिमपि दधतीं पुस्तकं ज्ञान-मुद्रां ॥
मूलाधारस्य^२ पद्मे निखिल-पशु-जनोन्मादिनीमस्थि-संस्थां ।
मुद्रान्न^३-प्रोति-युक्तां मधु-मद-मुदितां चिन्तयेच्छाकिनीं तां ॥

प्रकाश-स्वरूपा, त्रिनेत्रों से सुशोभिता, सुन्दर दाँतोंवाली, पञ्च-
मुखी देवी कर-कमलों में धनुष-बाण, खड्ग, पुस्तक और ज्ञान-मुद्रा-
धारिणी हैं । मूलाधार के कमल में विराजती हुई समस्त पशु-जनों
(असंयमी लोगों) को उन्मत्त करनेवाली, अस्थि की अधिष्ठात्री, मधु
(सुरा) के उल्लास से आनन्दिता, मुद्रान्न (अन्न से बने पदार्थों) में
आसक्ता उन ‘शाकिनी’ का मैं ध्यान करता हूँ ।

इति ध्यात्वा—

इस प्रकार ध्यान कर चतुर्दल मूलाधार-चक्र की कर्णिका में निम्न
मन्त्र का न्यास करे—

सां सीं सूं सैं सौं सः समलवरयूं शाकिनि ! मां
रक्ष रक्ष ममास्थि-धातुं रक्ष रक्ष सर्व-सत्व-वशंकरि देवि !
आगच्छागच्छ इमां पूजां गृह्ण गृह्ण । ऐं घोरे देवि ! ह्रीं सः
परम-घोरे ! हूं घोर-रूपे ! एह्येहि नमश्चामुण्डे ! डरलकसहैं ।
श्रीभुवनेश्वरि देवि वरदे ! विच्चे । वं शं षं सं मूलाधार-
पीठस्थे मूलाधार-शाकिनि ! मूलाधार-नाथ-देव ! श्रीपादुकां
पूजयामि नमः—

पाठ-भेद—१ हस्ताम्भोजेषु, २ मूलाधारस्थ, ३ स्वाद्वने

इति विन्यस्य तद्-दलेषु तत्-परिवार-देवतास्तद् वद्
ध्यात्वा न्यसेत्—

इस प्रकार न्यास कर मूलाधार-चक्र के चार दलों में 'शाकिनी' की आवरण-देवताओं का, उन्हीं-जैसे स्वरूप का ध्यान करते हुए, न्यास करे—

वं वरदायै नमः । शं शङ्खिन्यै १ । षं षोढायै ।
सं सरस्वत्यै ।

ततो भ्रू-मध्ये आज्ञा-चक्र-कर्णिकायां—

तब भौंहों के मध्य में आज्ञा-चक्र की कर्णिका में 'हाकिनी' का ध्यान करे—

भ्रू-मध्ये विन्दु-पद्मे द्वि-दल-सु-ललिते शुक्ल-वर्णा कराब्जैः ।
विभ्राणां ज्ञान-मुद्रां डमरुक-सहितामक्ष-मालां कपालम् ॥
षड्-वक्त्रां मज्ज-संस्थां त्रि-नयन-लसितां हंस-वत्यादि-युक्तां ।
हारिद्रात्रे प्रसक्तां सकल-सुर-नुतां २ हाकिनीं भावयेत् ताम् ॥

भौंहों के मध्य में, अति सुन्दर दो दलवाले विन्दु-कमल (आज्ञा-चक्र) में गौर-वर्णा, कर-कमलों में ज्ञान-मुद्रा और डमरु-सहित अक्ष-माला एवं कपाल-धारिणी, छः-मुखी, तीन-नेत्रों से शोभिता, 'हंस-वती' आदि शक्तियों से घिरी हुई, 'मज्जा' की अधिष्ठात्री, हल्दी से युक्त अन्न में आसक्ता, समस्त देवताओं से वन्दिता उन 'हाकिनी' का मैं ध्यान करता हूँ ।

इति ध्यात्वा—

इस प्रकार ध्यान कर आज्ञा-चक्र की कर्णिका में निम्न मन्त्र का न्यास करे—

हां हीं हूं हैं हौं हः हमलवरयूं हाकिनि ! मां रक्ष रक्ष
मम मज्जा-धातुं रक्ष रक्ष, सर्व-सत्त्व-वशङ्कुरि देवि ! आगच्छा-
गच्छ इमां पूजां गृह्ण गृह्ण । ऐं घोरे देवि ! ह्रीं सः परम-घोरे !

पाठ-भेद-१ शिखिन्यै, २ गतां, नतां

हं घोर-रूपे ! एतयेहि नमश्चामुण्डे ! डरलकसहै श्रीभुवनेश्वरि
देवि वरदे ! विच्चे । हं क्षं आज्ञा-पीठस्थे आज्ञा-हाकिनि !
आज्ञा-नाथ-देव ! श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

इति विन्यस्य हाकिनि-वद् ध्यात्वा तद्-दलयोः न्यसेत्—

इस प्रकार न्यास कर आज्ञा-चक्र के दो दलों में 'हाकिनी' के
समान ही ध्यान करता हुआ उनकी दो शक्तियों का न्यास करे—

हं हंसवत्यै १ नमः, क्षं क्षमावत्यै नमः ।

ततो ब्रह्म-रन्ध्रे सहस्रार-कर्णिकायां—

तब ब्रह्म-रन्ध्र के सहस्र-दल-कमल की कर्णिका में 'याकिनी' का
ध्यान करे—

मुण्ड-व्योमासनस्थे^२ सहस्र-दल-युते याकिनीं भैरवीं तां ।

यक्षिण्याद्यां समस्तायुध-ललित-करां सर्व-वर्णां समर्षिण्यै ॥

डाकिनीं सर्व-वक्त्रां सकल-सुख-करीं सर्व-धातु-स्वरूपां ।

सर्वां सक्त-चित्तां पर-शिव-रसिकां भावयेत् सर्व-रूपां ॥

सहस्र दलों से युक्त मुण्डाकाश के आसन पर विराजमाना,
यक्षिणियों की आद्य-स्वरूपा, डाकिनी भैरवी, सभी अस्त्र-शस्त्रों से
शोभित हाथोंवाली, समस्त वर्णों की आभावाली, सर्व-स्वरूपा, सर्व-
मुखी, सभी सुखों को देनेवाली, समस्त धातुओं की अधिष्ठात्री, सभी
रूपों की धारिणी, पर-शिव की प्रेमिका, समस्त प्रकार के अन्नों में
आसक्त हृदयवाली उन 'याकिनी' का मैं ध्यान करता हूँ ।

इति ध्यात्वा—

इस प्रकार ध्यान कर सहस्र-दल-कमल की कर्णिका में निम्न मन्त्र
का न्यास करे—

यां यीं यूं यैं यौं यः यमलवरयूं याकिनि ! मां रक्ष रक्ष,
मम शुक्रादि-सर्व-धातून् रक्ष रक्ष, सर्व-सत्त्व-वशङ्कुरि !
आगच्छागच्छ इमां पूजां गृह्ण गृह्ण । ऐं घोरे देवि ! ह्रीं

पाठ-भेद—१ हेमवत्यै, २ वामासनस्थे

सः परम-घोरे ! हं घोर-रूपे ! एह्ये हि नमश्चामुण्डे डरलकसहं
 श्रीभुवनेश्वरि देवि ! वरदे विच्चे । अं...अः कं...हं लं क्षं
 ब्रह्म-रन्ध्र-पीठस्थे ब्रह्म-रन्ध्र-याकिनि ! ब्रह्म-रन्ध्र-नाथ-देव !
 श्रीपादुकां पूजयामि नमः—

इति विन्यस्य परितः पञ्चाशद्-वर्ण-देवता याकिनी-वद्
 ध्यात्वा न्यसेत्—

इस प्रकार न्यास कर सहस्रार के दलों में 'याकिनी'-जैसा ध्यान
 करते हुए पचास वर्ण-शक्तियों का न्यास करे—

अं अमृतायै नमः । आं आर्कषिण्यै नमः । इं इन्द्राण्यै नमः ।
 ईं ईशान्यै नमः । उं उमायै नमः । ऊं ऊर्ध्व-केश्यै नमः ।
 ऋं ऋद्धिदायै नमः । ॠं ॠषायै नमः । लूं लृङ्कारात्मि-
 कायै नमः । लूं लृङ्कायै^१ नमः । एं एक-पादायै नमः ।
 ऐं ऐश्वर्यात्मिकायै नमः । ओं ओंकारात्मिकायै नमः ।
 औं औषधात्मिकायै नमः । अं अम्बिकायै नमः । अं अक्षरा-
 त्मिकायै नमः । कं काल-रात्र्यै नमः । खं खातीतायै नमः ।
 गं गायत्र्यै नमः । घं घण्टा-धारिण्यै नमः । ङं ङार्णात्मिकायै
 नमः । चं चामुण्डायै नमः । छं छायायै नमः । जं जयायै नमः ।
 झं झांकारिण्यै नमः । ञं ञार्णात्मिकायै नमः । टं टंक-हस्तायै
 नमः । ठं ठंकारिण्यै नमः । डं डामयै नमः । ढं ढांकारिण्यै
 नमः । णं णंकारिण्यै नमः । तं तामस्यै नमः । थं स्थान-देव्यै
 नमः । दं दाक्षायिण्यै नमः । धं धात्र्यै नमः । नं नन्दायै नमः ।
 पं पार्वत्यै नमः । फं फेत्कारिण्यै नमः । बं बन्धिन्यै नमः ।
 भं भद्र-काल्यै नमः । मं महा-मायायै नमः । यं यशस्विन्यै
 नमः । रं रमायै नमः । लं लम्बोष्ठ्यै नमः । वं वरदायै नमः ।

पाठ-भेद—१ लृषायै

शं शशिन्यै नमः । षं षोढायै नमः । सं सरस्वत्यै नमः ।
हं हंस-वत्यै नमः । क्षं क्षमावत्यै नमः ॥ इति महा-योगिनी-
न्यासः ॥

यह 'महा-योगिनी-न्यास' हुआ । अब 'हल्लेखादि-न्यास' करे—

अथ हल्लेखादि-न्यासः—ओं हल्लेखायै नमः मूर्ध्नि ।
एं गगनायै नमः वक्त्रे । उं रक्तायै नमः हृदि । इं करालि-
कायै नमः गुह्ये । अं महोच्छुम्भायै नमः पादयोः ॥ इति
हल्लेखादि-न्यासः ॥

ओं हल्लेखायै नमः ऊर्ध्व-मुखे । एं गगनायै नमः पूर्व-
मुखे । उं रक्तायै नमः दक्षिण-मुखे । इं करालिकायै नमः
उत्तर-मुखे । अं महोच्छुम्भायै नमः पश्चिम-मुखे ॥ इति पूर्व-
वद् ऊर्ध्व-दक्षिणोत्तर-पश्चिम-मुख-क्रमेण हल्लेखादि-न्यासः ॥

अथ गायत्र्यादि-न्यासः—कण्ठे गायत्र्यै नमः । वाम-कुचे
सावित्र्यै नमः । दक्ष-कुचे सरस्वत्यै नमः । वामांसे ब्रह्मणे
नमः । हृदि विष्णवे नमः । दक्षांसे महेश्वराय नमः ॥ इति
गायत्र्यादि-न्यासः ॥

अथ मिथुन-न्यासः—भाले गायत्र्यै नमः, ब्रह्मणे नमः ।
दक्ष-गण्डे सावित्र्यै०, विष्णवे० । वाम-गण्डे माहेश्वर्यै०,
रुद्राय० । वाम-कर्णे श्रियै०, धनपतये० । मुखे रत्यै०,
कामाय० । दक्ष-कर्णे पुष्ट्यै०, गणपतये० । दक्ष-कर्ण-कपो-
लयोर्मध्ये वसुधारायै०^१, शङ्ख-निधये० । वाम-कर्ण-कपोलयो-
र्मध्ये वसुमत्यै०, पद्म-निधये० ।

इति विन्यस्य पुनर्न्यसेद्, यथा—

पाठ-भेद—१ वसुन्धरायै

गल-मूले गायत्र्यै नमः, ब्रह्मणे नमः । वाम - कुचे सावित्र्यै०, विष्णवे० । दक्ष-कुचे माहेश्वर्यै०, रुद्राय० । वामांसे श्रियै०, धनपतये० । हृदये रत्यै०, कामाय० । दक्षांसे पुष्ट्यै०, गणपतये० । दक्ष-पार्श्वे वसुधारायै०^१, शङ्ख-निधये० । वाम-पार्श्वे वसु-मत्यै०, पद्म-निधये० ॥ इति मिथुन-न्यासः ॥

अथ ब्राह्मचादि-न्यासः—ललाटे आं ब्राह्म्यै नमः । वामांसे ईं माहेश्वर्यै नमः । वाम-पार्श्वे ऊं कौमार्यै नमः । उदरे ऋं वैष्णव्यै नमः । दक्ष-पार्श्वे लृं वाराह्यै नमः । दक्षांसे ऐं इन्द्राण्यै नमः । ककुदि औं चामुण्डायै नमः । हृदि अः महा-लक्ष्म्यै नमः ॥ इति ब्राह्मचादि-न्यासः ॥

इति विन्यस्य मूल-मन्त्रेण व्यापकं कृत्वा पीठ-न्यासं कुर्यात् । तद्यथा—

उक्त प्रकार क्रमशः गायत्र्यादि-न्यास, मिथुन-न्यास और ब्राह्मचादि-न्यास कर मूल-मन्त्र से व्यापक न्यास कर पीठ-न्यास करे—

मूलाधारे आधार - शक्त्यै नमः । स्वाधिष्ठाने प्रकृत्यै नमः । मणिपूरे कूर्माय नमः । हृदि अनन्ताय नमः, पृथिव्यै, सुधा-समुद्राय, मणि-द्वीपाय, चिन्तामणि-गृहाय, पारिजाताय, तन्मूले रत्न-वेदिकायै, तस्योपरि मणि-पीठाय, दिक्षु नाना-मुनि-गणेश्यो, नाना-देवेश्यो । दक्षांसे धर्माय । वामांसे ज्ञानाय । वामोरौ वैराग्याय । दक्षोरौ ऐश्वर्याय । दक्ष-कुक्षौ अधर्माय । दक्ष-पृष्ठे अज्ञानाय । वाम-पृष्ठे अवैराग्याय । वाम-कुक्षौ अनैश्वर्याय । पुनः हृदि शेषाय, पद्माय, प्रकृति-मय-पत्रेश्यो, विकृति-मय-केसरेभ्यो, मध्ये पञ्चाशद्वर्ण-पाठ-भेद-१ वसुधारायै

भूषित-कर्णिकायै, वैश्वानर-मण्डलाय, सूर्य-मण्डलाय, सोम-
मण्डलाय, सं सत्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने,
अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने । अष्ट-पत्रेषु
ॐ जयायै, विजयायै, अजितायै, अपराजितायै, नित्यायै,
विलासिन्यै, दोग्ध्र्यै, अघोरायै । मध्ये ॐ मङ्गलायै,
ॐ मनोन्मन्यै, ऐं परायै, ऐं अपरायै, ऐं परापरायै, ह्रीं सर्व-
शक्ति-कमलासनाय नमः ॥

इति पीठ-न्यासं विधाय पुनः षडङ्ग-न्यासं कुर्यात्—

इस प्रकार पीठ-न्यास कर पुनः षडङ्ग-न्यास करे—

ह्रां हृदयाय नमः । ह्रीं शिरसे स्वाहा । ह्रूं शिखायै
वषट् । ह्रौं कवचाय हुं । ह्रौं नेत्र - त्रयाय वौषट् ।
ह्रः अस्त्राय फट् ।

इति षडङ्गं विधाय निमीलित-नयनः स्व-हृदय-कमले
स्वाभेदेन श्रीभुवनेश्वरीं ध्यायेद्, यथा—

षडङ्ग-न्यास कर आँखें बन्द कर अपने हृदय-कमल पर अपने से
अभिन्न भगवती श्रीभुवनेश्वरी का ध्यान करे—

उद्यदादित्य-सङ्काशां शीतांशु - कृत - शेखराम् ।

पद्मासनां त्रि - नेत्रां च पाशांकुश - वराभयैः ॥

अलंकृत - चतुर्बाहुं मन्द-स्मित - लसन्मुखीम् ।

कुच - भार-विनम्राङ्ग-लतां देवीं हृदि स्मरेत् ॥

उदीयमान सूर्य-जैसी कान्तिवाली, ललाट पर चन्द्रमा को धारण
किए, कमलासना, त्रिनेत्रा और चार कर-कमलों में पाश, अंकुश,
वर, अभय-धारिणी, आभूषणों से सुशोभित चारों भुजावाली, मन्द
मुसकान से शोभायमान मुख और पयोधरों से भुकी देह-यष्टिवाली
भगवती को हृदय में स्मरण करना चाहिए ।

वामोर्ध्व-करादि-वामाधः कर-पर्यन्तमायुध-ध्यानम् ।
इति ध्यात्वा मनसाऽऽसनादि-सर्वोपचारैराराध्य मनसा
होमादिकं कुर्याद्, यथा—

वाएँ ऊपर के हाथ से लेकर नीचे के वाएँ हाथ तक आयुधों का
ध्यान कर मन से आसनादि सभी उपचारों से आराधना करे । फिर
मन से ही होम आदि करे । यथा—

तत्र मूलाधारे आत्माऽन्तरात्म-परमात्म-ज्ञानात्म-स्वरूपं
चतुरस्रं विभाव्य, तन्मध्ये परम-ज्ञानाग्निं विचिन्त्य—

मूलाधार-चक्र में आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा—
इन चारों से चतुरस्र (चौकोर) कुण्ड की भावना करे, उसके मध्य
में परम ज्ञानाग्नि का ध्यान करे । उस अग्नि में निम्न मन्त्रों द्वारा
भावना से आहुतियाँ दे—

मूलं अहन्तां जुहोमि स्वाहा, मूलं असत्यं जुहोमि स्वाहा,
मूलं पैशुन्यं जुहोमि स्वाहा, मूलं कामं जुहोमि स्वाहा, मूलं
क्रोधं जुहोमि स्वाहा, मूलं लोभं जुहोमि स्वाहा, मूलं मदं
जुहोमि स्वाहा, मूलं अहङ्कारं जुहोमि स्वाहा ।

इति हुत्वा पूर्णाहुति-त्रयं दद्याद्, यथा—

उक्त प्रकार आहुतियाँ देकर तीन पूर्णाहुतियाँ निम्न मन्त्रों से
वहीं प्रदान करे—

१ ॐ धर्माधर्म-हविर्दीप्ते स्वात्मानौ मनसा स्त्रुचा ।

सुषुम्णा-वर्त्मना नित्यमक्ष-वृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा ॥

२ ॐ प्रकाशाकाश-हस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी-स्त्रुचम् ।

धर्माधर्म-कला-स्नेह-पूर्णां वह्नौ जुहोम्यहं स्वाहा ॥

३ ॐ अन्तर्निरन्तर-निरिन्धन - मेधमाने,

मायान्धकार - परिपन्थिनि सस्विदग्नौ ।

कस्यांश्चिदद्भुत - मरीचि-विकाशिकायां,

विश्वं जुहोमि वसुधा दिशिवावसानं स्वाहा ॥

इति पूर्ण-तत्त्व-त्रयेण जुहुयात् । ततः मानसोपचारैः सम्पूजयेत् । यथा—

इस प्रकार तीन तत्त्वों द्वारा हवन कर, मानसोपचारों से पूजन करे—

लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः । हं आकाशात्मकं पुष्पं० । यं वाय्वात्मकं धूपं० । रं वह्नीयात्मकं दीपं । वं अमृतात्मकं नैवेद्यं । सं सर्व-तत्त्वात्मकं ताम्बूलं० ।

इति सम्पूज्य यथा-शक्ति जपं विधाय, जपान्ते कर-षडङ्ग-न्यासं कृत्वा जप-फलं समर्पयेत्—

उक्त प्रकार मानस पूजन कर यथा - शक्ति जप करे । जप के अन्त में कर-न्यास और षडङ्ग-न्यास कर जप का फल समर्पित करे—

गुह्याति-गुह्य-गोप्तो त्वं, गूहाणास्मत्-कृतं जपम् ।

सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्-प्रसादान्महेश्वरि ! ॥

इत्यन्तर्यजनं कृत्वा स्व-दक्षे सामान्यार्घ्यं कुर्याद्यथा—

इस प्रकार 'अन्तर्यजन' कर चुकने पर 'बहिर्यजन' हेतु अपने दाईं ओर सामान्यार्घ्य-पात्र की स्थापना करे—

तत्र स्व-दक्षे विन्दु-त्रिकोण-वृत्त-मण्डलं विधाय, तत्र 'आधार-शक्तिभ्यो नमः' इति सम्पूज्य तत्राधारं संस्थाप्य, 'अस्त्राय फट्' इति शोधितं, 'नमः' इति मन्त्रेण पूरित शङ्खादिकं पात्रं संस्थाप्य, तत्र 'ॐ' इति मन्त्रेण गन्ध-पुष्पादि निक्षिपेत् । तत्र 'गङ्गे च' इत्यादि तीर्थान्यावाह्य धेनु-मुद्रां प्रदर्श्य स्व-मन्त्रेण पूजयेत् ।

उक्त प्रकार अन्तर्यजन कर अपने दाईं ओर 'सामान्यार्घ्य' की स्थापना करे — 'विन्दु-त्रिकोण-वृत्त' का, 'मण्डल' भूमि पर रक्त-चन्दन से अनार या बिल्व की कलस से बनाए । उक्त 'मण्डल' पर गन्धाक्षत-पुष्प छोड़कर 'ॐ आधार-शक्तिभ्यो

नमः' मन्त्र से पूजन करे। तब उस 'मण्डल' पर धातु का 'त्रिपद' या 'पुष्प' की पंखुड़ी या कोई 'पत्ती' 'आधार'-रूप में रखे। उस आधार पर जल छिड़कते हुए 'अस्त्राय फट्' कहकर उसे शोधित करे। तब 'अस्त्राय फट्' से शोधित और 'नमः' से जल-पूरित पात्र को उस 'आधार' पर रखकर उसमें 'ॐ' कहते हुए गन्ध-पुष्पाद छोड़े। तब अंकुश-मुद्रा द्वारा सूर्य-मण्डल से उस पात्रस्थ जल में 'ॐ गङ्गे च' इत्यादि मन्त्र से तीर्थों का आवाहन कर इस प्रकार स्थापित 'सामान्यार्घ्य-पात्र' को 'धेनु-मुद्रा' दिखाकर गन्ध-पुष्पादि से अपने 'मूल-मन्त्र' द्वारा उसका पूजन करे।

इति सामान्यार्घ्यं विधाय, स्व-वाम-भागे गन्धादिना षट्-कोणान्तर्गत-त्रिकोण - द्वय - विन्द्वाद्यं वृत्त - चतुरस्रं विलिख्य, सामान्यार्घ्योदकेनैतदेव मण्डलमभ्युक्ष्य, तत्र 'आधार-शक्तिभ्यो नमः' इत्यादि पीठ-न्यास-क्रमेण सम्पूज्य, 'नमः' इत्याधार प्रक्षाल्य, मण्डलोपरि संस्थाप्य, 'रं वह्नि-मण्डलाय दश-कलात्मने नमः' इति सम्पूज्य, 'फट्' इति कलशं प्रक्षाल्य, कारणेन प्रपूर्य, रक्त-वस्त्र-माल्यादिना सम्भूष्य देवी-बुद्ध्या संस्थाप्य 'अं अर्क-मण्डलाय द्वादश-कलात्मने नमः' इति कलशे सम्पूज्य, 'ॐ चन्द्र-मण्डलाय षोडश-कलात्मने नमः' इति द्रव्ये च सम्पूज्य, 'फट्' इति संरक्ष्य, 'हुं' इत्यवगुण्ठ्य, मूलेन संवीक्ष्य, 'नमः' इत्यभ्युक्ष्य, मूलेन गन्धमाघ्राय, कुम्भे पुष्पं दत्वा शाप-मोचनं कुर्यात्—

उक्त प्रकार 'सामान्यार्घ्य-पात्र' स्थापित कर, अपनी बाईं ओर 'विन्दु-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्र' का 'मण्डल' पूर्वोक्त विधि से बनाए। 'सामान्यार्घ्य' के जल से इस 'मण्डल' का प्रोक्षण करे। फिर 'पीठ-न्यास' के क्रम से गन्धाक्षत द्वारा उस 'मण्डल' में 'आधार-शक्तिभ्यो नमः' इत्यादि मन्त्रों से पूजन करे। तब नमः' से प्रोक्षित 'आधार' को उस 'मण्डल' पर रखकर 'रं वह्नि-मण्डलाय दश-कलात्मने नमः' से उसका पूजन करे। अब 'फट्' से प्रोक्षित, 'कारण' से पूर्ण, रक्त-वस्त्र-माला आदि से विभूषित 'कलश' को देवी-स्वरूप समझता हुआ उस आधार पर स्थापित करे। 'कलश'-स्थित 'द्रव्य' में 'ॐ चन्द्र-मण्डलाय षोडश-

कलात्मने नमः' से पूजन करे। 'फट्' से उसका संरक्षण, 'हुं' से अवगुण्ठन, 'मूल-मन्त्र' से वीक्षण, 'नमः' से प्रोक्षण, 'मूल-मन्त्र' से आघ्रापण एवं पुष्पार्पण कर निम्न मन्त्रों को पढ़ते हुए सुरा देवी को शाप-मुक्त करे—

एकमेव परं - ब्रह्म, स्थूल - सूक्ष्म - मयं ध्रुवम् ।

कचोद्भवां ब्रह्म-हत्यां, तेन ते नाशयास्यहम् ॥

हे सुरा-देवि ! पर-ब्रह्म अद्वितीय ही है। निश्चय ही वह स्थूल और सूक्ष्म दोनों तत्त्वों से पूर्ण है। उसी के द्वारा मैं तुम्हें कच के माध्यम से लगे ब्रह्म-हत्या के पाप को नष्ट करता हूँ।

इस प्रकार ब्रह्म-शाप से विमुक्त हुई सुरा को, निम्न मन्त्र का तीन बार जप करते हुए नमस्कार करे—

ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्म-शाप-विमोचितायै सुरा-देव्यै नमः ।—इत्यपि त्रिः ।

सूर्य - मण्डल - सम्भूते, बरुणालय - सम्भवे !

अमावीज-मये देवि ! शुक्र - शापाद्विमुच्यताम् ॥

सूर्य-मण्डल के मध्य में विद्यमाना, सागर से उत्पन्ना, अमा (अमृत देनेवाली १६ वीं चन्द्र-कला) के मूल स्रोत से युक्ता हे देवि ! तुम शुक्राचार्य के शाप से मुक्त हो जाओ।

इस प्रकार शुक्र-शाप से विमुक्त हुई सुरा देवी को, निम्न मन्त्र का तीन बार जप करते हुए, नमस्कार करे—

ॐ सां सीं सूं सैं सौं सः शुक्र-शाप - विमोचितायै सुरा-देव्यै नमः । इत्यपि त्रिः ।

वेदानां प्रणवो बीजं, ब्रह्मानन्द-मयो यदि ।

तेन सत्येन हे देवि ! ब्रह्म - हत्यां व्यपोहतु ॥

वेदों का बीज प्रणव ॐकार यदि ब्रह्मानन्द-मय है, तो इस सत्य के द्वारा हे देवि ! तुम पर लगे ब्रह्म-हत्या दूर हो जाय।

इस प्रकार ब्रह्म-हत्या से विमुक्त हुई सुरा देवी को भगवान् कृष्ण के शाप से मुक्त कराते हुए अमृत से आप्लावित करने के लिए निम्न मन्त्र का तीन बार जप करे—

ॐ ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं कूं कैं कौं क्रः सुरा-देव्यै कृष्ण-शापं
विमोचय विमोचय अमृतं स्त्रावय स्त्रावय स्वाहा ।
इति त्रिः ।

ॐ ह्रीं हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्ष-सद्भोता
वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।

नृषद्-वर - सद्-ऋत - सद्-व्योम - सदब्जा

गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥

परम-हंस (आदित्य) तेजो-मय स्वर्ग में निवास करता है । वह वसु के रूप में स्वर्ग और पृथ्वी के बीच अन्तरिक्ष में भ्रमण करता है । वह पृथ्वी पर वैदिक अग्नि के रूप में और होता के रूप में निवास करता है । उसकी पूजा अतिथि के रूप में होती है । वह गृहस्थ की अग्नि में है और मनुष्य की चेतनता में है तथा वह सत्य-लोक में निवास करता है । वह सत्य में और आकाश में स्थित है ।

पवमानः परं-ब्रह्मा, पवमानः परो रसः ।

पवनामः परं ज्ञानं, तेन ते पावयाम्यहं ॥

पर-ब्रह्मा पवित्र करनेवाला है, परमामृत पवित्र-कारी है, परम ज्ञान पवित्र-कर्ता — उसी के द्वारा हे सुरा देवि ! मैं तुम्हें पवित्र करता हूँ ।

इत्यपि त्रिः पठित्वाऽऽनन्द-भैरवं ध्यायेत्—

उक्त दोनों मन्त्रों को तीन-तीन बार पढ़कर 'आनन्द-भैरव' का ध्यान करे—

सूर्य - कोटि - प्रतीकाशं, चन्द्र-कोटि-सुशीतलम् ।

अष्टादश - भुजं देवं, पञ्च-वक्त्रं त्रिलोचनम् ॥

अमृतार्णव - मध्यस्थं, ब्रह्मा - पद्मोपरि-स्थितम् ।

वृषारूढं नील - कण्ठं, सर्वाभरण - भूषितम् ॥

कपाल - खट्वाङ्ग-धरं, घण्टा-डमरु - वादिनम् ।

पाशाङ्कुश - धरं देवं, गदा-मुशल - धारिणम् ॥ १

खड्ग-खेटक-पट्टीशं, मुद्गरो शूल-दण्डकम् । २

पाठ-भेद—१ पाशाङ्कुशवरा-भीति-धरं मुशल-धारिणं, २ शूल-कुन्तिनम्

विचित्र - खेटकं मुण्डं, वरदाभय - पाणिनम् ।

लोहितं देव - देवेश, भावयेत् साधकोत्तमः ॥

करोड़ों सूर्यों के प्रकाशवाले, करोड़ों चन्द्रमाओं के समान शीतल, अठारह हाथोंवाले, पाँच मुँहवाले और तीन नेत्रोंवाले, अमृत के समुद्र के बीच ब्रह्म-पद्म पर बैठे हुए, बैल पर आसीन, नीले कण्ठवाले, सब आभूषणों से भूषित, कपाल और खट्वाङ्ग लिए, पाश-अंकुश-गदा-मूसल-खड्ग-खेटक-पट्टिश-मुद्गर-शूल और दण्ड तथा विचित्र खेटक और मुण्ड लिए, घण्टा और डमरू बजाते हुए, दो हाथों से वर-दान देते और अभय करते हुए, रक्त-वर्ण, देवों के देव 'आनन्द-भैरव' का ध्यान करना चाहिए ।

इति ध्यात्वा 'हसक्षमलवरयूं आनन्द-भैरवाय वौषट्'
इति दशधा प्रजप्यान्न्द-भैरवाङ्गोपविष्टां सुरा-देवीं
ध्यायेद्, यथा—

उक्त प्रकार ध्यान कर 'हसक्षमलवरयूं आनन्द-भैरवाय वौषट्' मन्त्र का दस बार जप कर आनन्द-भैरव की गोद में विराजमाना सुरा देवी का ध्यान करे—

भावयेच्च सुरा - देवीं, चन्द्र-कोटि-युत-प्रभाम् ।

हिम-कुन्देन्दु-धवलां, पञ्च-वक्त्रां त्रिलोचनाम् ॥

अष्टादश - भुजैर्युक्तां, सर्वानन्द - करोद्यताम् ।

प्रहसन्तीं विशालाक्षीं, देव-देवस्य सम्मुखीम् ॥

करोड़ों चन्द्रमाओं की प्रभावाली, हिम (बर्फ), कुन्द-पुष्प और चन्द्रमा जैसे उज्ज्वल वर्णवाली, पाँच मुख और तीन नेत्रोंवाली, अठारह भुजाओंवाली, सभी हाथों में अस्त्रों से सुसज्जिता, हँपती हुई, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली, देवों के देव 'आनन्द-भैरव' की ओर मुख किए हुई सुरा-देवी अर्थात् 'आनन्द-भैरवी' का ध्यान करना चाहिए ।

इति ध्यात्वा 'हसक्षमलवरयों सुरा-देव्यै वौषट्' इति दशधा प्रजप्य आनन्द-भैरव - भैरव्यौ सम्पूज्य द्रव्य-मध्ये दक्षिणावर्तेन त्रिः पङ्क्त्या 'अं-१६ कं - १६ थं - १६' इति शक्ति-चक्रं विलिख्य, तन्मध्ये 'हं लं क्षं' एतत् समावेशात्

द्रव्य-मध्येऽमृतं विचिन्त्य, धेनु - मुद्रयाऽमृतीकृत्य, 'वं' इति सुधा-बीजं मूलमप्यष्टधा घटं धृत्वा पठित्वा आत्म-श्रीचक्र-योर्मध्ये त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्रं विलिख्य, चतुरस्रे 'पूर्ण-गिरि-पीठाय नमः, उडचाण-पीठाय, काम-रूप-पीठाय, जालन्धर-पीठाय' इति सम्पूज्य, षट्-कोणे षडङ्गं सम्पूज्य, मूल-खण्ड-त्रयेण त्रिकोणं सम्पूज्य मध्ये 'आधार-शक्त्यै नमः' इति सम्पूज्य, त्रिकोण-गर्भे त्रिकोण-षट्कोण-भूषितां यन्त्रिकां संस्थाप्य, 'नमः' इति सामान्यार्घ्य-जलेनाभ्युक्ष्य, 'यं धूम्राचिषे नमः, रं ऊष्मायै, लं ज्वालिन्यै, वं ज्वालिन्यै, शं विस्फुलिङ्गिन्यै, षं सुश्रियै, सं सुरूपायै, हं कपिलायै, लं हव्य-वाहायै, क्षं कव्य-वाहायै नमः' इति सम्पूज्य, मध्ये 'यं रं वह्नि-मण्डलाय दश-कलात्मने नमः' इति सम्पूज्य, षट्-कोणे षडङ्गं च प्रपूज्य, मध्ये मूलेन देवीं सम्पूज्य, 'फट्' इति पात्रं प्रक्षाल्य, 'हुं हुं ब्रह्माण्ड-चषकाय नारिकेलाय स्वाहा' इति नारिकेल - पात्रं प्रक्षाल्य, 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भुवनेश्वर्याः पात्रं संस्थापयामि नमः' इति संस्थाप्य, 'कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै, गं फं धूम्रायै, घं पं मरीच्यै, डं नं ज्वालिन्यै, चं धं रुच्यै, छं दं सुषुम्णायै, जं थं भोगदायै, झं तं विश्वायै, ञं णं बोधिन्यै, टं ठं धारिण्यै, ठं डं क्षमायै' इति 'अं अर्क-मण्डलाय द्वादश-कलात्मने नमः' इति सम्पूज्य, तन्मध्ये त्रिकोण-षट्कोण-वृत्तं पात्रे विलिख्य समस्त-व्यस्त-मन्त्रेण सम्पूज्य, 'वं' इति वरुण-बीजं 'क्षं लं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ठं डं ठं टं जं झं जं छं चं डं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लृं लृं ऋं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं' इति विलोम-मातृकां च पठन् अमृतेन त्रिकोणं प्रपूज्य,

तत्र सुगन्धादि निक्षिप्य, 'अं अमृतायै नमः, आं मानदायै इं
पूषायै, ईं तुष्टायै, उं पुष्टायै, ऊं रत्यै, ऋ ऋद्धयै, ॠ
शशिन्यै, लृं चन्द्रिकायै, लृं कान्त्यै, एं ज्योत्स्नायै, ऐं ध्रियै,
ओं प्रीत्यै, औं अङ्गदायै, अं पूर्णायै, अः पूर्णामृतायै' इति
'षोडश-कलात्मने सोम-मण्डलाय नमः' इति सम्पूज्य, पूर्व-वद्
यन्त्रं द्रव्ये विलिख्य त्रिकोण-त्रिरेखायां 'अं १६ कं १६ थं १६'
इति त्रिविलिख्य, मध्ये 'हं लं क्षः' इति च विचिन्त्य मूल-
खण्ड-त्रयेण त्रिकोणं सम्पूज्य, षट् कोणे षडङ्गं च 'गङ्गे चे'-
त्यादि तीर्थमावाह्य आनन्द-भैरव-भैरव्यौ ध्यात्वा स्व-मन्त्रेण
सम्पूज्य पूर्वादितः 'स्लूं गगन-रत्नेभ्यो नमः, स्लूं स्वर्ग-रत्नेभ्यो,
प्लूं पाताल-रत्नेभ्यो, म्लूं मर्त्य-रत्नेभ्यो, मध्ये न्लूं नाग-रत्ने-
भ्यो नमः' इति सम्पूज्य मांसादि शोधयेत्, यथा—

उक्त प्रकार ध्यान कर 'सहस्रमलवरयीं सुरा-देव्यै वौषट्' मन्त्र का दस
बार जप कर आनन्द-भैरव और आनन्द-भैरवी दोनों का पूजन करे। तब कलश
के द्रव्य के मध्य में दाईं ओर के क्रम से तीन पंक्तियों में 'अं से अः' तक १६
वर्ण, 'कं से तं' तक १६ वर्ण और 'थं से सं' तक १६ वर्ण इस प्रकार लिखने
की भावना करे कि एक शक्ति-चक्र (त्रिकोण) बन जाय। उस चक्र के मध्य में
'हं लं क्षं' का समावेश कर उसे 'धेनु-मुद्रा' दिखाते हुए यह समझे कि द्रव्य में
अमृत आ गया है। फिर कलश-पात्र पर दायीं हाथ रखकर मुखा-बीज 'वं' एवं
'मूल-मन्त्र' का आठ-आठ बार जप करे।

इसके बाद अपने और श्री-यन्त्र के बीच में भूमि पर 'त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-
चतुरस्र' मण्डल लिखकर उसके 'चतुरस्र' के चार कोनों में 'पूर्णगिरि-पीठाय
नमः, उड्याण-पीठाय नमः, कामरूप-पीठाय नमः, जालन्धर-पीठाय
नमः' इन चार मन्त्रों से पूजन कर, 'षट्-कोण' के छः कोनों में षडङ्ग-मन्त्रों से
पूजन कर, त्रिकोण के तीनों कोणों में मूल-मन्त्र के तीन खण्डों द्वारा पूजन करे।
तब त्रिकोण के मध्य में 'आधार-शक्त्यै नमः' से पूजन कर त्रिकोण के भीतर
त्रिकोण-षट्कोण से विभूषित 'यन्त्रिका' पर सामान्यार्घ्य का जल छिड़क कर
उसमें अग्नि की १० कलाओं का पूजन करे—'यं धूम्राचिबे नमः' इत्यादि।

उसके मध्य में अग्नि-मण्डल का पूजन निर्दिष्ट मन्त्र से कर षट्-कोण में षडङ्ग-पूजन कर मध्य में मूल-मन्त्र द्वारा इष्ट-देवी की पूजा करे।

तदनन्तर 'फट्' और 'हुं हुं ब्रह्माण्ड-चषकाय नारिकेलाय स्वाहा' से नारिकेल-पात्र को धोकर 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भुवनेश्वर्याः पात्रं संस्थापयामि नमः' कहते हुए उसे यन्त्रिका पर स्थापित करे। तब उस नारिकेल-पात्र में सूर्य की १२ कलाओं का पूजन करे - 'कं भं तपिन्यं नमः' इत्यादि। उसके मध्य में सूर्य-मण्डल का पूजन निर्दिष्ट मन्त्र से कर वहीं पात्र में 'त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त' मण्डल की भावना कर उसका पूजन कर विलोम-मातृका का पाठ करते हुए कलश के अमृत द्वारा त्रिकोण को भरे। फिर सुगन्धि आदि छोड़कर वहीं चन्द्रमा की १६ कलाओं का पूजन करे - 'अं अमृतायै नमः' इत्यादि। फिर निर्दिष्ट मन्त्र से चन्द्र-मण्डल का पूजन कर पूर्व-वत् 'अं-१६, कं-१६, थं-१६' वर्णों से द्रव्य में 'त्रिकोण-यन्त्र' की भावना कर उसके मध्य में 'हुं ठं क्षं' का ध्यान कर मूल-मन्त्र के तीन खण्डों से त्रिकोण-पूजन और षडङ्ग-मन्त्रों से षट्-कोण का पूजन करे। तब 'ॐ गङ्गे च' इत्यादि मन्त्र से तीर्थों का आवाहन कर आनन्द-भैरव-आनन्द-भैरवी का ध्यान कर, मूल-मन्त्र से उनकी पूजा कर पूर्वादि चार दिशाओं में गगनादि चार रत्नों की पूजा कर मध्य में नाग-रत्न की पूजा कर मांसादि तत्त्वों का शोचन करे—

तत्रादौ त्रिकोण-वृत्त-मण्डलं विलिख्य, तदुपरि मांसादि-पात्रं संस्थाप्य, 'यं' इति संशोष्य, 'रं' इति सन्दह्य, 'यं' इत्याप्लाव्य, धेनु-मुद्रयाऽमृतीकृत्य, तदुपरि मूलं दशधा जप्त्वा ऋचः पठेत्—

पहले 'त्रिकोण-वृत्त-चतुरस्र' मण्डल बनाकर उस पर मांसादि-पात्र रखे। 'यं' से उसका शोषण, 'रं' से दाहन, 'वं' से आप्लावन कर 'धेनु-मुद्रा' द्वारा अमृतीकरण कर उसके ऊपर हाथ रख दस बार मूल-मन्त्र का जप कर निम्न ऋचा का पाठ करे—

प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

पर्वत पर स्थित, प्राणी-वध से जीनेवाले, भयङ्कर सिंह के समान, सर्व-व्यापी विष्णु साधारण वीर-कर्म से स्तुति को प्राप्त होते हैं, जिन विष्णु के महान् तीन पाद प्रक्षेपवाले लोकों में सम्पूर्ण प्राणी निवास करते हैं।

इति मांसं शोधयेत् ।

इस प्रकार 'मांस' का शोधन करे ।

ॐ त्वम्बकं यजामहे, सुगन्धि पुष्टि-वर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों के पिता उस त्र्यम्बक शिव की हम पूजा करते हैं, जो पुष्टि का कारण है और जो सुगन्धिवाला है । उर्वारुक का फल जैसे अपनी डाल से अपने आप गिर जाता है, उसी तरह हम भी कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जायें और परमात्मा में लय हो जायें ।

इति मीनं शोधयेत् ।

उक्त मन्त्र से पूर्व-वत् 'मीन' का शोधन करे ।

ॐ तद्-विष्णोः परमं पदं सदा

पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम् ।

तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः

समिन्धते विष्णार्यत् परमं पदम् ॥

जैसे साधारण लोगों को सूर्य स्पष्ट रूप में दिखाई देता है, उसी प्रकार बुद्धि-मान् लोगों को विष्णु के श्रेष्ठ चरण सदा दिखाई देते रहते हैं । जो सुधी और भक्त व्यक्ति अपने मन को वश में रखता है तथा जागता रहता है, वह विष्णु के श्रेष्ठ चरणों के दर्शन करता है ।

इति मुद्राः शोधयेत् ।

उक्त प्रकार पूर्व-वत् 'मुद्रा' का शोधन करे ।

ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु, त्वष्टा रूपाणि पिशतु ।

आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं ददातु ते ॥

गर्भं धेहि सिनीवालि, गर्भं धेहि सरस्वति ।

गर्भं ते अश्विनौ देवा, वाधत्तां पुंकर-त्नजा ॥

'विष्णु' गर्भ धारण करने की शक्ति प्रदान करें । 'त्वष्टा' रूप प्रदान करें । 'प्रजा-पति' उसका अभि-सिञ्चन करे । 'धाता' उसे धारण करने की शक्ति दें । 'सिनीवाली' (गर्भ-देवता) तेरे गर्भ का सहारा दें, 'सरस्वती' तेरे गर्भ को सहारा

दें और कमल की माला पहननेवाले दोनों 'अश्विनी' तरे गर्भ को सहारा प्रदान करें ।

इति कुण्ड-गोलादि शोधयेत् ।

उक्त प्रकार पूर्व-वत् 'कुण्ड-गोल' आदि तत्त्व का शोधन करे ।

'हुं' इत्यवगुण्ठय, ताल-त्रयेण दिशः संशोध्य, तत्र देवी-मावाह्य, अवगुण्ठचामृती-कृत्य योनि-मु ां प्रदर्श्य, कुण्डलिन्यः प्रयोगेन निस्सृतममृत-वृष्टि योनि - मुद्रोल्लासित - करेण तत्रानीय मूलान्ते—

तदनन्तर 'श्री-पात्र' का अवगुण्ठन 'हुं' से कर तीन बार ताली बजाकर दिशाओं को सुरक्षित करे । फिर 'श्री-पात्र' में इष्ट-देवता का आवाहन-अवगुण्ठन-अमृतीकरण कर 'योनि-मुद्रा' दिखाकर कुण्डलिनी के प्रयोग से निकलते हुए अमृत की वर्षा कर मूल-मन्त्र का उच्चारण कर निम्न मन्त्र का पाठ करे—

ब्रह्माण्ड - रस - सम्भूतमशेष-रस - सम्भवम् ।

आपूरितं महा - पात्रं, पीयूष - रसमावह ॥

सुरा से पूर्ण इस पात्र में ब्रह्माण्ड के रसों से उत्पन्न अशेष रसों से निकलता हुआ अमृत-रस आ जाय ।

इत्यभिमन्त्र्य—'ऐं अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृत-वर्षिणि ! अमृतमावह, ॐ जूं सः स्वाहा, इत्यभिमन्त्र्य—

फिर 'श्री-पात्र' को 'ऐं अमृते अमृतोद्भवे' इत्यादि मन्त्र से अभिमन्त्रित कर निम्न मन्त्र का पाठ करे—

तद्-रूपेणैक-रस्यं च, दत्वाद्यर्थं चित्-स्वरूपिणि !

भूत्वा परामृताकारं, मयि चित्-स्फुरणं कुरु ॥

हे चैतन्य-स्वरूपवाली ! उसी (परा-शक्ति) के रूप की एक-रसता को अर्घ्य-रूप में देकर और परामृत का आकार धारण कर मुझमें चैतन्य का स्फुरण उत्पन्न करो ।

इत्यभिमन्त्र्य, 'सौः नमः' इति सम्पूज्य, शङ्ख-मुद्रां प्रदर्श्य, षडङ्गेन सकली-कृत्य, मत्स्य-मुद्रया पात्रमाच्छाद्य, पात्रं देवी-रूपं भावयेत् ॥ इति श्रीपात्र-स्थापन-विधिः ॥

उक्त प्रकार अभिमन्त्रित कर 'सौः नमः' से 'श्री-पात्र' की पूजा कर उसे शङ्ख-मुद्रा दिखाए। फिर षडङ्ग-मन्त्रों द्वारा सकलीकरण कर मत्स्य-मुद्रा से उसे ढँक कर यह समझे कि वह साक्षात् देवी-स्वरूप ही है। इस प्रकार 'श्रीपात्र-स्थापन' की विधि पूरी हुई।

ततो देव्याल्लामादाय घट-समीपे गुरु-पात्रं, शक्ति-पात्रं, स्व-पात्रं, योगिनी-पात्रं, वीर-पात्रं, भोग-पात्रं, बलि-पात्रं, पाद्य-पात्रं, अर्घ्य-पात्रं, घृत-दधि-मधु-सहितं मधुपर्क-पात्रं, आचमनीय-पात्रं, प्रोक्षणी-पात्रं संस्थाप्य, ततश्चर्वण-युत-कारणेन तत्त्व-मुद्रया श्रीपात्राद् विन्दुं समुद्धृत्य स्व-हृदि 'ह्रसक्ष-मलवरयूं आनन्द-भैरवं तर्पयामि नमः' इति त्रिः सन्तर्पयेत् । 'सहक्षमलवरयीं सुरा-देवीं तर्पयामि नमः' इति त्रिः सन्तर्प्य, स्व-शिरसि गुरु-पादुका-मन्त्रेण गुरु-पात्र-विन्दुभिः 'श्रीमच्छ्री-अमुकानन्दनाथ-श्रीपादुकां तर्पयामि नमः' इति त्रिः गुरुं सन्तर्प्य, परमगुरु-परापरगुरु-आदीन् परमेष्ठिगुरु-^१ तर्पयेत् । ततः श्रीपात्र-विन्दुभिः स्व-हृदि 'मूलं श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वरी-भगवतीं सेश्वरां स-परिवारां स-बाहतां स-मुद्रां तर्पयामि नमः' इति त्रिः सन्तर्प्य, प्रोक्षणी-पात्रं श्रीपात्र-विन्दुभिः सम्पूर्ण, तेनैव 'मूलं आत्म-तत्त्वात्मने नमः, मूलं विद्या-तत्त्वात्मने नमः, मूलं शिव-तत्त्वात्मने नमः, मूलं सर्व-तत्त्वात्मने नमः' इति स्वात्मानं सम्प्रोक्ष्य पूजोपकरणानि सम्प्रोक्षयेत् ॥ इति कलश-स्थापन-विधिः ॥

तब देवी की अनुमति लेकर घट (कलश) के समीप क्रमशः १ गुरु, २ शक्ति, ३ आत्म, ४ योगिनी, ५ वीर, ६ भोग, ७ बलि, ८ पाद्य, ९ अर्घ्य, १० मधुपर्क, ११ आचमनीय और १० प्रोक्षणी-पात्रों को स्थापित करे। फिर चर्वण-सहित 'कारण' लेकर, श्रीपात्र से एक विन्दु उसमें डालकर अपने हृदय में तीन बार 'ह्रसक्षमल-

पाठभेद—१ परमाचार्यादीन् गुरु-पत्नीमादीन्

वरयूं आनन्द-भैरवं तर्पयामि नमः' मन्त्र से 'आनन्द-भैरव' का तर्पण करे। इसी प्रकार वहीं 'सहस्रमलवरयों सुरा-देवीं तर्पयामि नमः' से 'सुरा देवी' का तीन बार तर्पण करे।

तदनन्तर अपने सिर में गुरु-पादुका-मन्त्र द्वारा तीन-तीन बार 'गुरु-पात्र' के विन्दुओं द्वारा गुरु, परम गुरु, परापर गुरु, परमेष्ठि गुरु और आचार्यों का तर्पण करे।

इसके बाद 'श्रीपात्र' के विन्दुओं द्वारा अपने हृदय में स्व-शिव-सहिता, स-परिवारा, स-वाहना, स-मुद्रा भगवती भुवनेश्वरी का तीन बार तर्पण करे।

अब 'प्रोक्षणी पात्र' को 'श्रीपात्र' के विन्दुओं से भर कर उन्हीं के द्वारा आत्म-तत्त्वादि तीन मन्त्रों से अपने सिर पर प्रोक्षण कर पूजा-सामग्री पर भी प्रोक्षण करे।

'कलश'-स्थापन' की विधि इस प्रकार पूर्ण हो गई।

अथ श्रीभुवनेश्वरी-देवीं ध्यात्वा पीठोपरि पीठ-पूजां कुर्यात्। तत्रादौ स्व-वामे गुरु-मन्त्रेण 'गुरवे नमः', स्व-दक्षे 'गं गणपतये नमः' इति गणेशं सम्पूज्य, पीठ-पूजां कुर्याद्विथा—

ॐ मण्डूकाय नमः, कालाग्नि-रुद्राय, मूल-प्रकृत्यै, आधार-शक्त्यै, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, सुधा-समुद्राय, मणि-द्वोपाय, चिन्ता-मणि-गृहाय, पारिजाताय, तन्मूले रत्न-वेदिकायै, मणि-पोठाय, दिक्षु नाना-मुनि-गणेश्यो, नाना-देवेश्यो, धर्माय, ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय, अधर्माय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अनैश्वर्याय, शेषाय, पद्माय, प्रकृति-मय पत्रेश्यो, विकार-मय-केसरीभ्यो, पञ्चाशद्वर्ण-भूषित-कर्णिकायै, वैश्वानर-मण्डलाय, सूर्य - मण्डलाय, सोम - मण्डलाय, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। अष्ट-पत्रेषु ॐ जयायै, ॐ विजयायै, ॐ अजितायै, ॐ अपराजितायै, ॐ नित्यायै, ॐ विलासिन्यै, ॐ दोग्ध्र्यै,

ॐ अघोरायै, मध्ये ॐ मङ्गलायै नमः, ॐ अमित्यादि क्षान्तं
ह्रीं सर्व-शक्ति-कमलासनाय नमः' इति पीठ-पूजां विधाय, तत्र
श्रीचक्रं संस्थाप्य अथवा श्रीचक्रोपरि मूलं पठित्वा, तत्र देवी-
मूर्ति परिकल्प्य पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा, 'वं' इति वाम-नासा-
पुटेन स्व-हृदयात् तेजो-रूपां स्वेष्ट-देवतां तत्रानीय—

अब श्रीभुवनेश्वरी देवी का ध्यान कर पीठ के ऊपर पीठ-पूजा
करे। पहले अपनी बाईं ओर गुरु-मन्त्र से गुरु की, दाईं ओर गरुड
की पूजा करे। तब 'मण्डूकाय नमः' से लेकर 'सर्व-शक्ति-कमला-
सनाय नमः' तक पूजाकर पीठ के ऊपर श्रीचक्र (श्रीयन्त्र) की स्थापना
कर या श्रीचक्र में देवी-मूर्ति की भावना कर पुष्पाञ्जलि लेकर,
'यं' बीज का उच्चारण कर बाईं नासा से श्वास छोड़ते हुए यह
समझे कि अपने हृदय से तेजो-रूप इष्ट-देवता उस पुष्पाञ्जलि में
आकर विराजमान हो गई हैं। तब निम्न मन्त्र पढ़ते हुए उस पुष्पा-
ञ्जलि को 'श्रीचक्र' के ऊपर छोड़ दे—

ॐ देवेशि ! भक्ति-सुलभे ! परिवार-समन्विते !

यावत् त्वां पूजयिष्यामि, तावद् देवि ! इहावह ॥

'हे सपरिवारे देवेश्वरि ! आप भक्ति से सहज ही प्राप्त हो जाती
हैं। जब तक आपकी पूजा करूँ, हे देवि ! तब तक आप यहाँ
विराजें।'।

इति पठित्वा तं कुसुमाञ्जलिं चक्रोपरि निःक्षिपेत्—

उक्त प्रकार पुष्पाञ्जलि छोड़कर 'आवाहनी' आदि मुद्राओं को
दिखाते हुए निम्न मन्त्र द्वारा आवाहनादि प्रार्थना करे—

मूलं श्रीमच्छ्री-भगवति भुवनेश्वरि ! इहागच्छ इहागच्छ,
मूलं भगवति भुवनेश्वरि ! इह सन्तिष्ठ इह सन्तिष्ठ, मूलं
भगवति भुवनेश्वरि ! इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि, मूलं भग-
वति भुवनेश्वरि ! इह सन्निरुद्धा भव, इह सन्निरुद्धा भव, मम
सर्वोपचार-सहितां पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

इत्यावाहनादि मुद्राः प्रदर्श्य प्राण-प्रतिष्ठां चक्रोपरि
लेलिहान - मुद्रया कुर्यात् । यथा—

अब 'श्री-चक्र' के ऊपर 'लेलिहान' - मुद्रा द्वारा निम्न मन्त्र से
'प्राण-प्रतिष्ठा' करे—

ॐ आं ह्रीं क्रीं यं रं लं वं शं षं सं हं ङं
क्षं हंसः सोहं श्रीभुवनेश्वरी - प्राणा इह प्राणाः ।
ॐ आं ह्रीं क्रीं यं...क्षं हंसः सोहं श्रीभुवनेश्वरी - जीव इह
स्थितः । ॐ आं ह्रीं क्रीं यं...क्षं हंसः सोहं श्रीभुवनेश्वरी
सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि । ॐ आं ह्रीं क्रीं यं...क्षं हंसः
सोहं श्रीभुवनेश्वरी - वाङ्-मनस्त्वक्-चक्षुः-श्रोत्र-प्राण-प्राणाः
इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥

इति प्राण-प्रतिष्ठां विधाय छोटिकाभिर्दश-दिग्-बन्धनं
कृत्वाऽवगुण्ठयामृती-कृत्य धेनु-योनीं प्रदर्श्य पाशांकुश-वराभय-
मुद्राः प्रदर्श्य पुनः श्रीपात्रामृतेन 'सायुधां सवाहनां सपरिवारां
सावरणां सेश्वरां श्रीमद्-भुवनेश्वरो-भगवतीं तर्पयामि नमः'
इति त्रिः सन्तर्प्य—

उक्त प्रकार 'प्राण-प्रतिष्ठा' कर 'छोटिका'-मुद्रा द्वारा दसो
दिशाओं को सुरक्षित कर, 'अवगुण्ठन' और 'अमृतीकरण' कर 'धेनु'
और 'योनि' मुद्राएँ दिखाकर 'पाश, अंकुश, अभय' मुद्राएँ दिखाए ।
फिर 'श्रीपात्र' के अमृत से भगवती का तीन बार पुनः तर्पण करे ।

अब निम्न प्रकार आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, पुनः
आचमनीय प्रदान करे—

मूलं एतदासनं श्रीमदीश्वर - सहितायै श्रीमच्छ्री-
भुवनेश्वर्यै भगवत्यै नमः भगवत्यत्रासने उपविश्यताम्'-
इत्यासने उपविष्टां भावयेत् । 'मूलं एतत् पाद्यं श्रीमदीश्वर-
सहितायै श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी-भगवत्यै नमः' इति पाद्य-पात्रेण

पादयोः पाद्यं दद्यात् । पुनः 'मूलमेतदध्यं श्रीमदोश्वर-सहितायै श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी-भगवत्यै स्वाहा' इत्यध्य-पात्रेण शिरसि अध्यं दद्यात् । 'मूलं एतदाचमनीयं श्रीमदोश्वर-सहितायै श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी - भगवत्यै स्वधा' इत्याचमनीय-पात्रेण मुखे आचमनीयं दद्यात् । 'मूलं एतन्मधुपर्कं श्रीमदोश्वर-सहितायै श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी-भगवत्यै स्वाहा' इति मधुपर्क-पात्रेण मुखे मधुपर्कं दद्यात् । 'एतदाचमनीयं श्रीमदोश्वर-सहितायै श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी-भगवत्यै स्वधा' इत्याचमनीय-पात्रेण मुखे आचमनीयं दद्यात् ।

आसनादि उपचार देने हेतु 'मन्त्र' ऊपर मूल में दिए हैं, जो स्पष्ट एवं सुबोध है ।

ततः स्नान - मण्डपं नीत्वा तत्र पीठोपरि संस्थाप्य तत्रासनादिभिः सम्पूज्य, ततो गङ्गादि-तीर्थोदक - सम्मिश्रित - क्षीरादिभिर्मूलं 'एतत् स्नानीयं श्रीमदोश्वर-सहितायै श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी - भगवत्यै नमः' इति सर्वाङ्गेषु स्नानीयं दद्यात् । इति सुस्नाप्य शुद्ध-दुकूल-नाङ्गं प्रोक्ष्य कालागरु-धूपेन केशान् संशोष्यालङ्कार-मण्डपं नीत्वा, तत्र विचित्र-पट्ट-वस्त्र-कुंकुम-कस्तूरी-चन्दन-सिन्दूर-मुकुट-कुण्डल-हार-त्रयादि - नूपुर-मञ्जरी - दर्पणादि-नाना-लङ्कारान् दत्वा पुनराचमनीयं दद्यात् । ततः पूजा-मण्डपं समानीय, तत्र पुनः पाद्यादि - मधुपर्कान्तं सम्पूज्य, मूलं मध्यमाऽनामाङ्गुष्ठः 'श्रीमदोश्वर-सहितायै श्रीमद्-भुवनेश्वरी-भगवत्यै एष गन्धो नमः' इति तिलकं कुर्यात् । ततो अङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्यां 'मूलं श्रीमदोश्वर-सहितायै श्रीमद्-भुवनेश्वरी-भगवत्यै एतान्यक्षत-पुष्पाणि वौषट्' इति पुष्पैः सम्पूज्य,

ततो धूप - पात्र 'अस्त्राय फट्' इति सामान्यार्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य, पुरतः संस्थापयित्वा वाम-तर्जन्या संस्पृशन् श्रीपात्रामृतेन धूपं निवेदयामीति निवेद्य 'ॐ जगद्-ध्वनि-मये मन्त्र-मातः' स्वाहे'ति घण्टां सम्पूज्य, वामेन पाणिना तां वादयन् मध्यमाऽनामांगुष्ठैर्धूपं धृत्वा 'ऐं हृत्लेखायै विद्महे ह्रीं भुवनायै धीमहि श्रीं तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्' इति गायत्रीं मूल-मन्त्रं च पठन्—

इसके बाद भगवती को स्नान-मण्डप में ले जाकर, वहाँ पीठ के ऊपर उन्हें प्रतिष्ठित कर, आसनादि उपचारों से उनका पूजन करे। फिर भगवती के समस्त शरीर के स्नानार्थ गङ्गादि तीर्थों के जल से मिश्रित दुग्धादि निम्न मन्त्र द्वारा अर्पित करे—

मूलं एतत् स्नानीयं श्रीमदीश्वर-सहितायै श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी-भगवत्यै नमः ।

इस प्रकार अच्छी तरह स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र से अंगों को पोंछकर अगर के धूप से केशों को सुखाकर भगवती को अलङ्कार-मण्डप में ले जायें। वहाँ उन्हें विलक्षण रेशमी वस्त्र, कुंकुम, कस्तूरी, चन्दन, सिन्दूर, मुकुट, कुण्डल, तीन हार, नूपुर, मञ्जीर, दर्पण आदि विविध अलङ्करण प्रदान कर पुनः आचमन कराए। तब भगवती को पूजा-मण्डप में लाकर पुनः पाद्यादि से लेकर मधुपर्क तक के उपचारों से उनकी पूजा कर मध्यमा, अनामा और अंगुष्ठ की मुद्रा द्वारा निम्न मन्त्र से उन्हें तिलक लगाए—

मूलं श्रीमदीश्वर - सहितायै श्रीमद् - भुवनेश्वरी - भगवत्यै एष गन्धो नमः ।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से अक्षत और पुष्प द्वारा पूजन करे—

मूलं श्रीमदीश्वर-सहितायै श्रीमद्-भुवनेश्वरी-भगवत्यै एतान्यक्षत-पुष्पाणि वौषट् ।

फिर 'अस्त्राय फट्' से सामान्यार्घ्य के जल द्वारा धूप-पात्र का प्रोक्षण कर, उसे अपने सामने रखकर, बाईं तर्जनी से उसे छूते हुए 'श्रीपात्रामृतेन धूपं निवेदयामि' कहकर 'ॐ जगद्-ध्वनि-मये मन्त्र-मातः ! स्वाहा' से घण्टा की पूजा करे। फिर बाँए हाथ से घण्टा बजाते हुए मध्यमा, अनामा और अंगुष्ठ के

पाठ-भेद १ विश्व मातः

द्वारा धूप-पात्र को तीन बार ऊपर घुमाते हुए श्रीभुवनेश्वरी के गायत्री-मन्त्र सहित मूल-मन्त्र का पाठ करते हुए निम्न मन्त्र से देवी को धूपित करें—

वनस्पति - रसोत्पन्नो, गन्धाढ्यो गन्ध-संयुतः ।

आग्नेयः सर्व-देवानां धूपोऽयं प्रति-गृह्यताम् ॥

इति त्रिधोत्तोल्य देवीं धूपयेत् । ततो दीपं सम्मुखे संस्थाप्य, पूर्व-वत् प्रोक्षणेन पूजनं कृत्वा, वाम-मध्यमया दीप-पात्रं संस्पृशन् दीपं निवेदयामीति श्रीपात्रामृतेन निवेद्य, पूर्व-वत् घण्टां वादयन् मध्यमाऽनामा-मध्ये दीपमंगुष्ठेन धृत्वा दर्शयेत् । पूर्व-वत् गायत्रीं मूलं च पठन्—

तदनन्तर अपने सामने दीपक को स्थापित कर पूर्व-वत् उसका प्रोक्षण और पूजन करें । फिर बाँई मध्यमा से उसे छूते हुए 'श्रीपात्रामृतेन दीपं निवेदयामि' कहकर पूर्व-वत् घण्टा बजाते हुए मध्यमा और अनामा के बीच में अंगूठे द्वारा दीपक को पकड़कर पहले ही की माँति गायत्री और मूल-मन्त्र का पाठ करते हुए निम्न मन्त्र से देवी को दीप द्वारा आलोकित करें—

सु-प्रकाशो महा-दीपः, सर्वतस्तिमिरापहः ।

स बाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रति-गृह्यताम् ॥

इति दीपं दद्यात् । ततः स्वर्णादि-पात्रे कुंकुमेन वसु-पत्रं चन्द्र-रूपं च कृत्वा मध्ये दीपमेकमण्ड-पत्रेषु दीपाष्टकं संस्थाप्य मूल-मन्त्रेण प्रज्वालय 'श्रीं सौः ग्लूं म्लूं स्लूं प्लूं न्लूं सौः श्रीं रत्नेश्वर्यै नमः' इत्यभ्यर्च्य मूलेन चाभ्यर्च्य स्थालकं मस्तकान्तमुद्धृत्य नव-वारं मूलं च पठित्वा गायत्रीं च पठित्वा—

'दीप' दिखाने के बाद स्वर्णादि-पात्र या थाली में कुंकुम से अष्ट-दल कमल चन्द्रमा के समान गोलाकार बनाकर उसके मध्य में एक दीपक और आठ दलों में आठ दीपक रखकर मूल-मन्त्र का जप करते हुए उन्हें जलाएँ । फिर मूल में लिखित 'श्री रत्नेश्वरी' के मन्त्र एवं मूल-मन्त्र द्वारा उनका अर्चन कर उस पात्र या थाली को मस्तक तक उठाकर नौ बार मूल-मन्त्र सहित श्रीभुवनेश्वरी-गायत्री-मन्त्र का पाठ कर 'चक्र-मुद्रा' से निम्न मन्त्र द्वारा भगवती को आरती करें—

समस्त - चक्र - चक्रेश-युते देवि ! नवात्मिके !

आरातिकमिदं देवि ! गृहाण मम सिद्धये ॥

इति चक्र - मुद्रया नीराजयेत् । ततो नाना - नैवेद्यं
स्वर्णादि - पात्रे निक्षिप्य 'नमः' इत्यभ्युक्ष्य 'हुं' इत्यवगुण्ठ्य
धेनु-मुद्रयाऽमृती-कृत्य मूलं सप्तधा जप्त्वा, वामांगुष्ठेन नैवेद्य-
पात्रं स्पृशन् मूलान्ते—

नीराजन के बाद स्वर्णादि-पात्र में विविध प्रकार के नैवेद्य रखकर 'नमः' से
उसका प्रोक्षण, 'हुं' से अवगुण्ठन, धेनु-मुद्रा से अमृतीकरण, 'मूल-मन्त्र' से सात
बार अभिमन्त्रण कर, बाँए अंगुष्ठे से पात्र को छूते हुए 'मूल-मन्त्र' का उच्चारण
कर निम्न पद्यों एवं 'ह्रीं हृदयाय' से लेकर 'नैवेद्यं निवेदयामि' तक पढ़ते हुए
भगवती को नैवेद्य अर्पित करे—

हेम-पात्र-गतं दिव्यं, परमात्मानं सु-संस्कृतम् ।

पञ्चधा षड् - रसोपेतं, गृहाण परमेश्वरि ! ॥

स्फारत्सौरभ-निर्भरं रुचि-करं शाल्योदनं निर्मलम् ।

युक्तं हिङ्गु-मरिच-जीर-सुरभि-द्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः ॥

पक्वान्तेन स-पायसेन मधुना दध्याज्य-सम्मिश्रितम् ।

नैवेद्यं सुर-सुन्दरी-विरचितं श्रीसुन्दरि ! त्वत्-प्रिये ॥

ह्रीं हृदयाय, ह्रीं शिरसे, ह्रीं शिखायै, ह्रीं कवचाय,

ह्रीं नेत्र-त्रयाय, ह्रीः अस्त्राय, ॐ ह्रीं हृल्लेखायै, ऐं गग-

नायै, उं रक्तायै, इं करालिकायै, ओं महोच्छुष्मायै,

गं गङ्गायै, यं यमुनायै, सं सरस्वत्यै, गायत्री-सहित-ब्रह्मणे,

सावित्री-सहित-विष्णवे, पार्वती-सहित-रुद्राय, लक्ष्मी-सहित-

कुबेराय, रति-सहित-मदनाय, पुष्टि-सहित-विघ्न-राजाय,

शङ्ख-निधये, पद्म-निधये, अनङ्ग-कुसुमायै, अनङ्ग-कुसुमा-

तुरायै, अनङ्ग-मदनायै, अनङ्ग-मदनानुरायै, अनङ्ग-मेखलायै,

—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—

भुवन-पालायै, गगन-वेगायै, शशि-रेखायै, कराल्यै, विक-
राल्यै, उमायै, सरस्वत्यै, श्रियै, दुर्गायै, उषायै, लक्ष्म्यै,
सत्यायै, श्रुत्यै, स्मृत्यै, धृत्यै, श्रद्धायै, मेधायै, मत्यै, रत्यै,
अनङ्ग-रूपायै, अनङ्ग-मदनायै, अनङ्ग-मदनानुरायै, भुवन-
वेगायै, भुवन-पालिकायै, सर्व-शिशिरायै, अनङ्ग-वेदनायै,
अनङ्ग-मेखलायै, ब्राह्मी-आदि-अष्ट-मातृकाभ्यः*, इन्द्राय,
अग्नये, यमाय, नैऋतये, वरुणाय, वायवे, कुबेराय, ईशा-
नाय, ब्रह्मणे, अनन्ताय, वज्राय, शक्तये, दण्डाय, खड्गाय,
पाशाय, ध्वजाय, गदायै, त्रिशूलाय, पद्माय, चक्राय, पाशाय,
अंकुशाय, वराय, अभयाय, वटुकाय, योगिनीभ्यः, क्षेत्र-
पालाय, गणेशाय, मूलं श्रीमदीश्वर-सहितायै सावरणायै
स-वाहनायै सायुधायै स-परिकरायै, श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी-
भगवत्यै नैवेद्यं निवेदयामि इति दक्षानामांगुष्ठाभ्या-
मुत्सृजेत् ।

दाई अनामा और अंगुष्ठ से नैवेद्य का 'उत्सर्जन' करे ।

ततः 'मूलं एतदाचमनीयं श्रीमदीश्वर - सहितायै
श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वर्यै स्वधा', इति दत्त्वा ग्रास-मुद्राः प्रदर्शयेत् ।

यथा—

तव 'मूलं एतदाचमनीयं' इत्यादि से आचमन प्रदान कर 'ग्रास-मुद्राएँ'
दिखाए । यथा—

ॐ प्राणाय स्वाहा—दक्षांगुष्ठ-कनिष्ठाऽनामाभिः ।

ॐ अपानाय स्वाहा—दक्षांगुष्ठ-तर्जनी-मध्यमाभिः ।

ॐ समानाय स्वाहा—दक्षांगुष्ठ-मध्यमाऽनामाभिः ।

ॐ उदानाय स्वाहा—दक्षांगुष्ठ-तर्जनी-मध्यमाऽनामाभिः ।

ॐ व्यानाय स्वाहा—सर्वांगुलीभिः ।

इति प्रदर्श्य पुनराचमनीयं दत्त्वा मूलान्ते 'श्रीमदीश्वर-
सहिताये श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी-भगवत्यै कर्पूरादि-शुक्लं
ताम्बूलं निवेदयामि नमः' इति दद्यात् । सर्वेषामर्घ्य-पात्र-जले
नोत्सर्गः कार्यः । ततस्तत्त्व-मुद्रया श्रीपात्रामृतेन 'मूलं श्रीमदी-
श्वर-सहितां सायुधां स-परिकरां स-वाहनां सावरणां श्रीमच्छ्री-
भुवनेश्वरीं भगवतीं तर्पयामि नमः' इति त्रिः सन्तर्प्य पूर्वोक्त-
मुद्राः प्रदर्श्य योनिं हृदि क्षोभिणीं, मुखे द्राविणीं, भ्रू-मध्ये
आकर्षिणीं, ललाटे वशिनीं, ब्रह्म-रन्ध्रे आह्लादिनीं पञ्च-मुद्रा-
मयीं प्रदर्श्य, कृताञ्जलिः 'श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरि भगवति !
आवरणं ते पूजयामि नमः' इत्याज्ञां गृहीत्वाऽवरण-पूजामार-
भेत् । यथा—

ग्रास-मुद्राएँ दिखाकर पुनः आचमन प्रदान कर मूल में लिखित मन्त्र से
ताम्बूल निवेदित करे । सभी वस्तुओं के देने में अर्घ्य-पात्र के जल का उत्सर्ग करना
चाहिए । तब 'तत्त्व-मुद्रा' से श्रीपात्र के अमृत द्वारा तीन बार भगवती का तर्पण
कर पूर्वोक्त मुद्राएँ दिखाकर क्रमशः हृदय में 'क्षोभिणी', मुख में 'द्राविणी', भ्रू-
मध्य में 'आकर्षिणी', ललाट में 'वशिनी' और ब्रह्म-रन्ध्र में 'आह्लादिनी'—ये पाँच
मुद्राएँ दिखाकर हाथ जोड़कर भगवती से आवरण-पूजन हेतु आज्ञा माँगकर आव-
रण-पूजा प्रारम्भ करे । यथा—

प्रथमावरण—विन्दु-चक्र-पूजा
तत्रादौ देव्याः पृष्ठे त्रिकोणान्तराले षट्-कोणान्तराले
रेखा-त्रयं विभाव्य गुरु-पंक्ति-त्रयं पूजयेत् । यथा—

सबसे पहले पूजा-यन्त्र के षट्-कोण के भीतर त्रिकोण के मध्य में विन्दु
के पीछे तीन रेखाओं की भावना कर उनमें तीन गुरु-पंक्तियों का पूजन-तर्पण 'गुरु-
पात्र' के विन्दुओं द्वारा करे । यथा—

'ऐं दिव्योद्य-पराख्य गुरु-पंक्ति-श्रीपादुकां पूजयामि नमः
तर्पयामि नमः'—इति प्रथम-रेखायां सम्पूज्य गुरु-पात्र-
विन्दुभिस्तर्पयेत् । 'ऐं सिद्धोद्य-परापराख्य-गुरु-पंक्ति-

श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि नमः—शक्ति-ऋषि-
श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि नमः—इति द्वितीय-
रेखायां । ततस्तृतीय-रेखायां—‘ऐं मानवौघापरार्य-गुरु-
पंक्ति-श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि नमः’ । अत्रैव
गुरु-परम - गुरु-परापर-गुरु-परमेष्ठि-गुरु-परमाचार्यादीन्
सम्पूजयेद्, गुरु-पात्राम्बुभिस्तर्पयेत् । इति त्रिःसकृद् वा
सम्पूज्य, मध्ये विन्दौ श्रीदेवीं पूजयेत् । यथा—

यहीं गुरु, परम गुरु, परापर गुरु, परमेष्ठि गुरु और परमाचार्य आदि का
सी ‘गुरु-पात्र’ के ही अमृत से पूजन-तर्पण करे । यह पूजन-तर्पण तीन-तीन या
एक-एक बार करना चाहिए । तब मध्य के बिन्दु में भगवती का पूजन-तर्पण
करे । यथा—

तत्रादौ कुसुमाञ्जलिं दत्त्वा ‘मूलं सर्वानन्द-मय-भैरव-
चक्राय नमः’ इति कुसुमाञ्जलिं दत्त्वा पूजयेत् । ‘मूलं
श्रीमदीश्वरीं भैरवाङ्गोपविष्टां श्रीहृल्लेखा-पर-रूपिणीं
श्रीमद्-भुवनेश्वरी-भगवतीं पूजयामि नमः’ इति सम्पूज्या-
ष्टोत्तर-शत-वारं सन्तर्प्य च कुसुमाञ्जलिं गृहीत्वा—

पहले पुष्पाञ्जलि देकर ‘सर्वानन्द-मय-भैरव-चक्र’ की पूजा करे । तब
भगवती भुवनेश्वरी की पूजा कर १०८ या एक बार उनका तर्पण कर हाथ में
पुष्पाञ्जलि लेकर ‘प्रथम-आवरण’ का अर्चन भक्ति-पूर्वक समर्पित करे—

अभीष्ट-सिद्धि मे देहि शरणागत-वत्सले !

भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥

इति कुसुमाञ्जलिं दत्त्वा योनि-मुद्रया प्रणमेत् । इति
विन्दु-चक्र-पूजा—प्रथमावरणम् ॥

पुष्पाञ्जलि देकर ‘योनि-मुद्रा’ से भगवती को प्रणाम करे । यह ‘विन्दु-चक्र-
पूजा’ ही ‘प्रथम आवरण’ का अर्चन हुआ ।

द्वितीयावरण—त्रिकोण-पूजा
 अथ त्रिकोण-पूजा—‘मूलं सर्व-सिद्धि-प्रदाय चक्राय नमः’ इत्यादौ कुसुमाञ्जलिना सम्पूज्य पूजयेत् । यथा—
 अग्रे ऐं गगना-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । दक्षिणे
 उं रक्ता-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । उत्तरे इं
 करालिका-श्रीपा० । पूर्वे श्रीदेवी - श्रीपा० । पश्चिमे अं
 महोच्छुष्मा-श्रीपा० । इति सम्पूज्य सन्तर्प्य गगनाग्रे मूलेन
 देवीं सम्पूज्य सन्तर्प्य कुसुमाञ्जलिं गृह्यत्वा—

अब ‘पूजा-यन्त्र’ के मध्यस्थ ‘त्रिकोण’ अर्थात् ‘सर्व-सिद्धि-प्रद चक्र’ की पूजा पुष्पाञ्जलि द्वारा करे । फिर क्रमशः गगना, रक्ता, करालिका, श्रीदेवी और महोच्छुष्मा—इन पाँच शक्तियों का पूजन-तर्पण कर ‘गगना’ के सम्मुख मूल-मन्त्र द्वारा भगवती श्रीभुवनेश्वरी का पूजन-तर्पण कर निम्न मन्त्र द्वारा ‘द्वितीय आवरण’ के अर्चन को पुष्पाञ्जलि छोड़कर भक्ति-पूर्वक समर्पित करे—

अभीष्ट - सिद्धि मे देहि शरणागत-वत्सले !

भवत्या समर्पये तुभ्यं द्वितायावरणार्चनम् ॥

इति कुसुमाञ्जलिं दत्वा योनि-मुद्रया प्रणमेत् । इति द्वितीयावरणम् ।

पुष्पाञ्जलि देकर ‘योनि-मुद्रा’ से भगवती को प्रणाम करे । यह ‘द्वितीय आवरण’ का अर्चन हुआ ।

तृतीय आवरण—षट्-कोण-पूजा

अथ षट्-कोण-पूजा—‘मूलं सर्व-रोग-हर-चक्राय नमः’ इति प्रथमतः कुसुमाञ्जलिं दत्वा सम्पूजयेत् । यथा—पूर्वे ॐ गायत्री-सहित-ब्रह्मा-श्रीपा० । नैऋत्ये ऐं सावित्री-सहित-विष्णु-श्रीपा० । वायव्ये ॐ सरस्वती-सहित-रुद्र-श्रीपा० । अग्नि-कोणे ऐं श्री-सहित-धनपति-श्रीपा० । पश्चिमे ॐ रति-सहित-स्मर-श्रीपा० । ऐशान्यां ॐ पुष्टि-सहित-गणपति-

श्रीपा० । षट्-कोणस्योभय-पार्श्वयोः—ॐ शङ्ख-निधि-
श्रीपा०, पद्म-निधि - श्रीपा० । अत्रैव केसरेषु—अग्नौ ह्यं
हृदय-श्रीपा० । नैऋत्ये ह्यं शिरः-श्रीपा० । वायव्ये ह्यं
शिखा-श्रीपा० । ऐशान्यां ह्यं कवच-श्रीपा० । मध्ये ह्यं
नेत्र-त्रय-श्रीपा० । दिक्षु ह्यः अस्त्र-श्रीपा० ।

इति सम्पूज्य सन्तर्प्य गायत्र्यग्रे देवीं सम्पूज्य सन्तर्प्य
कुसुमाञ्जलिं गृहीत्वा—

अब 'षट्-कोण' अर्थात् 'सर्व-रोग-हर चक्र' की पूजा पुष्पाञ्जलि द्वारा करे ।
फिर क्रमशः गायत्री-ब्रह्मा, सावित्री-विष्णु, सरस्वती-रुद्र, श्री-धनपति, रति-स्मर,
षष्ठी-गणपति—इन छः युगलों का पूजन-तर्पण क्रमशः छः कोणों में कर
षट्-कोण के दोनों ओर शङ्ख-निधि और पद्म-निधि का पूजन-तर्पण करे । फिर
केसरों में षडङ्गों का पूजन-तर्पण कर 'गायत्री' के सम्मुख भगवती श्री भुवनेश्वरी
का पूजन-तर्पण कर पूर्व-वत् 'तृतीय आवरण' के अर्चन को पुष्पाञ्जलि छोड़कर
भक्ति-पूर्वक समर्पित करे—

अभीष्ट-सिद्धि मे देहि शरणागत-वत्सले !

भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम् ॥

इति कुसुमाञ्जलिं दत्वा योनि-मुद्रया प्रणमेत् । इति
तृतीयावरणम् ॥

पुष्पाञ्जलि देकर 'योनि-मुद्रा' से भगवती को प्रणाम करे । यह 'तृतीय
आवरण' का अर्चन हुआ ।

चतुर्थ आवरण—अष्ट-दल-पूजा

अथाष्ट-दल-पूजा—'मूलं सर्व-संक्षोभण-चक्राय नमः'

इति प्रथमतः कुसुमाञ्जलिं दत्वा पूजयेत् । यथा—पूर्वादितः

ॐ अनङ्ग-कुसुमा-श्रीपा० । ॐ अनङ्ग-कुसुमातुरा-श्रीपा० ।

ॐ अनङ्ग-मदना-श्रीपा० । ॐ अनङ्ग-मदनातुरा-श्रीपा० ।

ॐ भुवन-पाला-श्रीपा० । ॐ गगन-वेगा-श्रीपा० । ॐ शशि-

रेखा-श्रीपा० । ॐ गगन-रेखा-श्रीपा० ।

इति सम्पूज्य सन्तर्प्य अतङ्ग-कुसुमाग्रे मूलेन देवीं सम्पूज्य
सन्तर्प्य कुसुमाञ्जलि गृहीत्वा—

अथ 'अष्ट-दल' अर्थात् 'सर्व-संक्षोभण चक्र' की पूजा पुष्पाञ्जलि द्वारा
करे। फिर क्रमशः अतङ्ग-कुसुमा, अतङ्ग-कुसुमातुरा, अतङ्ग-मदना, अतङ्ग-
मदनातुरा, भुवन-पाला, गगन-वेगा, शशि-रेखा और गगन-रेखा—इत आठ शक्तियों
का ८ दलों में पूजन-तर्पण कर 'अतङ्ग-कुसुमा' के सम्मुख मूल-मन्त्र द्वारा भग-
वती श्री भुवनेश्वरी का पूजन-तर्पण कर पूर्व-वत् 'चतुर्थ आवरण' के अर्चन को
पुष्पाञ्जलि छोड़कर भक्ति-पूर्वक समर्पित करे—

अभीष्ट-सिद्धि मे देहि शरणागत-वत्सले !

भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम् ॥

इति कुसुमाञ्जलि दत्त्वा योनि-मुद्रया प्रणमेत् । इति
चतुर्थावरणम् ।

पुष्पाञ्जलि देकर 'योनि-मुद्रा' से भगवती को प्रणाम करे। यह 'चतुर्थ
आवरण' का अर्चन हुआ।

पञ्चम आवरण—षोडश-दल-पूजा

अथ षोडश-दल-पूजा—'मूलं सर्वाशा-पूरक-चक्राय
नमः' इति प्रथमतः कुसुमाञ्जलिना सम्पूज्य पूजयेत् ।
यथा—ॐ कराली - श्रीपा० । ॐ विकराली - श्रीपा० ।
ॐ उमा-श्रीपा० । ॐ सरस्वती-श्रीपा० । ॐ दुर्गा-श्रीपा० ।
ॐ उषा-श्रीपा० । ॐ लक्ष्मी-श्रीपा० । ॐ श्रुति-श्रीपा० ।
ॐ स्मृति-श्रीपा० । ॐ धृति-श्रीपा० । ॐ अद्धा-श्रीपा० ।
ॐ मेधा श्रीपा० । ॐ मति-श्रीपा० । ॐ कान्ति-श्रीपा० ।
ॐ आर्या-श्रीपा० । तद्-बहिर्वृत्त-मध्ये दल-सन्धिषु—आं
ब्राह्मी-श्रीपा० । ईं माहेश्वरी-श्रीपा० । ऊं कौमारी-श्रीपा० ।
ऋं वैष्णवी-श्रीपा० । लं वाराही-श्रीपा० । ऐं इन्द्राणी-
श्रीपा० । ओं चामुण्डा-श्रीपा० । अं महालक्ष्मी श्रीपा० ।

तद्-बहिः पूर्वादितः—ॐ अनङ्ग-रूपा-श्रीपा० । ॐ अनङ्ग-
मदना-श्रीपा० । ॐ अनङ्ग-मदनातुरा-श्रीपा० । ॐ भुवन-
वेगा-श्रीपा० । ॐ भुवन-पालिका-श्रीपा० । ॐ सर्व-शिशिरा-
श्रीपा० । ॐ अनङ्ग-वेदना-श्रीपा० । ॐ अनङ्ग-मेखला-
श्रीपा० ।

इति सम्पूज्य, सन्तर्प्य, कराल्यग्रे मूलेन देवीं सम्पूज्य,
सन्तर्प्य, कुसुमांजलिं गृहीत्वा—

अब 'षोडश-दल' अर्थात् 'सर्वांशा-पूरक चक्र' की पूजा पुष्पांजलि द्वारा करे ।
फिर क्रमशः कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति,
स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति, और आपा—इन सोलह शक्तियों का
१६ दलों में पूजन-तर्पण कर उनके बाहर वृत्त में दलों के सन्धि-भाग में क्रमशः
ब्राह्मी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चाण्डिका, महालक्ष्मी—
इन आठ माताओं का पूजन-तर्पण कर उनके बाहर भाग में पूर्वादि-क्रम से क्रमशः
अनङ्ग-रूपा, अनङ्ग-मदना, अनङ्ग-मदनातुरा, भुवन-वेगा, भुवन-पालिका, सर्व-
शिशिरा, अनङ्ग-वेदना, अनङ्ग-मेखला—इन आठ शक्तियों का पूजन-तर्पण कर
'कराली' के सम्मुख मूल-मन्त्र द्वारा भगवती श्री भुवनेश्वरी का पूजन-तर्पण कर
पूर्ववत् 'पञ्चम आवरण' के अर्चन को पुष्पांजलि छोड़कर भक्ति-पूर्वक समर्पित करे—

अभीष्ट-सिद्धि मे देहि, शरणागत-वत्सले !

भक्त्या समर्पये तुभ्यं, पञ्चमावरणार्चनम् ।

इति कुसुमांजलिं दत्वा योनि-मुद्रया प्रणमेत् । इति
पञ्चमावरणार्चनम् ।

पुष्पांजलि देकर 'योनि-मुद्रा' से भगवती को प्रणाम करे । यह 'पञ्चम आवरण'
का अर्चन हुआ । षष्ठ आवरण : चतुर्द्वार-पूजा

अथ चतुर्द्वार-पूजा—'मूलं त्रैलोक्य-मोहन-चक्राय नमः'
इति कुसुमांजलिना सम्पूज्य पूर्वादितः पूजयेत् । यथा—ॐ लं
इन्द्र-श्रीपा० । रं अग्नि-श्रीपा० । यं यम-श्रीपा० ।
क्षं निर्वर्ति-श्रीपा० । वं वरुण-श्रीपा० । वं वायु-श्रीपा० ।

सं सोम-श्रीपा० । हं ईशान-श्रीपा० । ईशान-पूर्वयोर्मध्ये—
 ओं ब्रह्म-श्रीपा० । निऋति-वरुणयोर्मध्ये— ॐ ह्रीं अनन्त-
 श्रीपा० ।

इति सम्पूज्य सन्तर्प्य, तद्-बहिर्वज्रादीन् पूजयेत् । यथा—
 अब 'चतुर्द्वार' अर्थात् 'त्रैलोक्य-मोहन' चक्र की पूजा पुष्पाञ्जलि द्वारा करे ।
 फिर पूर्वादि क्रम से क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, सोम,
 ईशान, ब्रह्म और अनन्त—इन दश दिक्-पालों का पूजन-तर्पण कर उनके बाहर
 क्रमशः वज्रादि की पूजा करे । यथा—

ॐ वज्र-श्रीपा० । शक्ति-श्रीपा० । दण्ड-श्रीपा० । खड्ग-
 श्रीपा० । पाश-श्रीपा० । ध्वज-श्रीपा० । गदा-श्रीपा० ।
 त्रिशूल-श्रीपा० । पद्म-श्रीपा० । चक्र-श्रीपा० ।

इति सम्पूज्य सन्तर्प्य, वरुणाग्रे देवीं मूलेन सम्पूज्य,
 सन्तर्प्य, कुसुमाञ्जलि गृहीत्वा—

वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, पद्म और चक्र—
 दश-दिक्-पालों के इन दस अस्त्रों का पूजन-तर्पण कर 'वरुण' के सम्मुख मूल-
 मन्त्र द्वारा भगवती श्री भुवनेश्वरी का पूजन-तर्पण कर पूर्व-वत् 'षष्ठ आवरण'
 के अर्चन को पुष्पाञ्जलि छोड़कर भक्ति-पूर्वक समर्पित करे—

अभोष्ट-सिद्धि मे देहि, शरणागत-वत्सले !

भक्त्या समर्पये तुभ्यं, षष्ठमावरणार्चनम् ॥

इति कुसुमाञ्जलि दत्त्वा योनि-मुद्रया प्रणमेत् । इति
 षष्ठमावरणम् ॥

पुष्पाञ्जलि देकर योनि-मुद्रा से भगवती को प्रणाम करे । यह 'षष्ठ आवरण'
 का अर्चन हुआ ।

इत्थं पुनश्चतुर्द्वारमारभ्य विन्दन्तं सम्पूजयेत् । ततः
 पुनर्विन्दौ—'मूलं श्रीमदीश्वर-भैरवाङ्गोपविष्टां स-वाहनां स-
 परिकरां सावरणां श्रीमद्-भुवनेश्वरी-भगवतीं पूजयामि
 नमस्तर्पयामि नमः' इति पाद्यादिभिः सम्पूज्य सन्तर्पयेत् ।

अब पुनः 'चतुर्द्वार' से प्रारम्भ कर 'विन्दु' तक पूजन करे। तब पुनः 'विन्दु' में भगवती भुवनेश्वरी का पाद्यादि उपचारों से पूजन कर तर्पण करे।

ततो देवी-वाम-हस्तोर्ध्वे—ॐ पांश-श्रीपा० । दक्ष-हस्तोर्ध्वे ॐ अंकुश-श्रीपा० । वाम-हस्ताधः—ॐ वं वर-श्रीपा० । दक्ष-हस्ताधः—ॐ अं अभय-श्रीपा० । इति सम्पूज्य सन्तर्पयेत् ।

तब भगवती भुवनेश्वरी के बाएँ ऊपरी हाथ में 'पांश' का, दाएँ ऊपरी हाथ में 'अंकुश' का, निचले बाएँ हाथ में 'वर-मुद्रा' का और निचले दाएँ हाथ में 'अभय-मुद्रा' का पूजन-तर्पण करे।

ततः पुनश्चतुरस्रे, पश्चिमे—वां बटुक-श्रीपा० । उत्तरे—यां योगिनी-श्रीपा० । पूर्वे—क्षं क्षेत्रपाल-श्रीपा० । दक्षे—गं गणेश-श्रीपा० । इति सम्पूज्य सन्तर्पयेत् । पुनर्विन्दो पूर्व-वन्मूल-देवीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, पुनः मुद्राः प्रदर्श्य योनि-मुद्रया प्रणम्य, पुनर्मूलं पठन् पुष्पाञ्जलि-द्वयेण च सम्पूज्य नित्य-होममारभेत् । यथा—

तदनन्तर पुनः 'चतुरस्र' के चार कोनों में बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल और गणेश का पूजन-तर्पण कर पुनः 'विन्दु' में पूर्व-वत् भगवती भुवनेश्वरी का पूजन-तर्पण कर पुनः मुद्राएँ दिखाकर योनि-मुद्रा से प्रणाम करे और पुनः मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए तीन पुष्पाञ्जलियों द्वारा पूजन कर नित्य-होम प्रारम्भ करे। यथा—

नित्य-होम-विधि । तत्र कुण्डं त्रिकोणं चतुरस्रं वा विधाय 'ॐ क्रिया-शक्त्यात्मने कुण्डाय नमः' इति कुण्डं सम्पूज्य तत्राग्नि-मानीय स्व-चेतन्यान्तलं तस्मिन् संयोज्य—'रं अग्नये नमः' इति सम्पूज्य, नैऋते पात्रं सजलं पुष्प-त्रितय-सहितं मूलेन मन्त्रितं संस्थाप्य—'अस्त्राय फट्' इति सामान्यार्घ्य-वत् सम्पूज्य—'ॐ फट् कव्यादं निष्कर्षयामि फट्' इति दर्भ-काण्ड-द्वयं प्रज्वालय बहिः क्षिपेत् ।

पूजा-गृह में कुण्ड या स्थण्डिल की व्यवस्था कर उसकी पूजा करे। फिर उसमें अग्नि रखकर उसे अपने चैतन्य-रूपी अंश से संयुक्त करने की भावना कर उस अग्नि की पूजा करे। तब नैऋत कोण में जल-सहित तीन पुष्प एक पात्र में रखकर उसे मूल-मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करे। 'अस्त्राय फट्' आदि मन्त्रों से सामान्यार्घ्य-पात्र के समान ही उसकी पूजा कर 'क्रव्याद' शोधन के लिए दो दर्भ-काण्ड (कुशा के दो खण्ड) निम्न मन्त्र से जलाये—

'ॐ फट् क्रव्यादं निष्कर्षयामि फट्'।

उन जलते हुए कुशाओं को बाहर फेंक दे।

इति क्रव्याद-शुद्धिं कृत्वा सामान्यार्घ्य-जलेन 'ॐ फट् अग्निं परिसमूहामि फट्, ॐ फट् अग्निं पर्युक्ष्यामि फट्, ॐ फट् अग्निं परिषिञ्चामि फट्' इति सम्प्रोक्ष्य 'ॐ फट् यज्ञस्य सन्तति - रसि यज्ञस्य त्वा सन्तत्यै-स्तृणामि फट्' इति पूर्वे त्रयः, दक्षिणे पञ्च, उत्तरे पञ्च, पश्चिमे त्रयः दर्भान् संस्तोय 'रं' अग्नये नमः' इति पुन-गन्धादिना सम्पूज्य 'शिव शक्तिभ्यां समालम्बनं गन्धो नमः' इति स्त्रुक्-स्त्रुवौ सम्पूज्य आज्य-पात्रमानी-याम्ग्युपरि संस्थाप्य स्व-मन्त्रेण सम्पूज्य वीक्षणं कुर्यात्। यथा—

'क्रव्याद-शुद्धि' कर सामान्यार्घ्य-जल से 'ॐ फट् अग्नि' इत्यादि मन्त्र से अग्नि का प्रोक्षण करे। तब 'ॐ फट् यज्ञस्य' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए पूर्व दिशा में तीन, दक्षिण दिशा में पाँच, उत्तर दिशा में पाँच और पश्चिम दिशा में तीन दर्भ (कुशा) बिछाकर 'रं अग्नये नमः' से पुनः गन्धादि द्वारा पूजन करे। तब 'शिव-शक्तिभ्यां' इत्यादि मन्त्र से 'स्त्रुक्' और 'स्त्रुवा' की पूजा कर 'आज्य' (घृत) पात्र को लाकर अग्नि के ऊपर स्थापित कर अपने मन्त्र से उसकी पूजा कर निम्न मन्त्र को पढ़ते हुए उसे देखे।

ॐ आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पाप - हरं परम्।

आज्यं सुराणामाहारः, आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥

दिव्यान्तरिक्ष - भोमाद्यैर्यत् ते किल्बिषमागतम्।

तत् - सर्वमाज्य - स्पर्शेन, विनाशमुपगच्छतु ॥

‘आज्य’ अर्थात् ‘घृत’ तेज है, ‘घृत’ अत्यन्त पाप-नाशक है, ‘घृत’ देवताओं का भोजन है, ‘घृत’ में सभी लोक प्रतिष्ठित हैं। स्वर्ग, अन्तरिक्ष (वायु-मण्डल) और पृथ्वी (भूमि) आदि से जो भी दोष तुममें आ गए हों, वे सब ‘घृत’ के स्पर्श से नष्ट हो जायें।

‘आत्मनो वाङ्-मनः - कायोपार्जित-पाप - निवारणार्थं श्रीभुवनेश्वरी-प्रोत्थय्य इदमाज्यं समर्पयामि नमः’—इत्याज्यं संवीक्ष्य, मूलेन चर्वादिकं सम्मन्त्र्य, पूर्णा दद्यात्। मूलं पठन्, स्रुवं घृत-पूर्णं कृत्वा, स्व-देवता-ध्यानं पठन्, पूर्णाहुतिं दद्यात्।

‘अपनी वाणी मन और शरीर द्वारा हुए पापों के निवारण के लिए श्रीभुवनेश्वरी के प्रसन्नार्थ यह घृत समर्पित करता हूँ’—इस भावना के साथ घृत को देखकर मूल-मन्त्र द्वारा ‘चरु’ (उबले हुए चावल या जौ से बना हवनीय पदार्थ) आदि को अभिमन्त्रित करे। तब मूल-मन्त्र का उच्चारण करते हुए स्रुवा (पलाश या खदिर की लकड़ी का बना चमचा) को घृत-पूर्ण कर अपने देवता का ध्यान-श्लोक पढ़ते हुए पूर्णाहुति प्रदान करे।

ततोऽग्नौ देवतामावाह्य, पाद्यादिभिः सम्पूज्य, वाम-करेण मालां गृहीत्वा, दक्ष-करेण स्रुवं गृहीत्वा, यथा-शक्ति भनु-होमं कृत्वा, षडङ्गाहुतीर्जुह्यात्। यथा—

तदनन्तर अग्नि में देवता का आवाहन कर, पाद्यादि उपचारों से उनकी पूजा करे। फिर बाएँ हाथ में माला और दाएँ हाथ में स्रुवा लेकर यथा-शक्ति ‘मन्त्र’ द्वारा होम करे। तब षडङ्ग-मन्त्रों से आहुतियाँ दे। यथा—

ॐ ह्रां हृदयाय नमः स्वाहा। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा स्वाहा। ॐ ह्रूं शिखायै वषट् स्वाहा। ॐ ह्रौं कवचाय हुं स्वाहा। ॐ ह्रौं नेत्र-त्रयाय वौषट् स्वाहा। ॐ ह्रः अस्त्राय फट् स्वाहा।

इस प्रकार होम कर ‘प्राणाय स्वाहा’ आदि मन्त्रों से आहुतियाँ दे यथा—
इति हुत्वा ‘प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, ॐ भूः स्वाहा,

ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा, ॐ महः स्वाहा, ॐ जनः स्वाहा, ॐ तपः स्वाहा, ॐ सत्यं स्वाहा' इति हुत्वाऽऽवरण-देवता-होमं कुर्यात् । यथा—

इस प्रकार होम कर आवरण-देवताओं के लिए आहुतियाँ दे । यथा—

तत्रादौ गुरुवः—'ऐं दिव्यौघ-पराख्य-गुरु-पंक्त्यै स्वाहा, ऐं सिद्धौघ-परापराख्य-गुरु-पंक्त्यै स्वाहा, ऐं मानवौघा-पराख्य-गुरु-पंक्त्यै स्वाहा, शक्ति-ऋषये स्वाहा'—इति हुत्वा स्वगुरु-परमगुरु-परापरगुरु-परमेष्ठिगुरु-परमाचार्यादि-गुरुणां पृथक्-पृथगाहुतिं दद्यात् ।

पहले दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ गुरु-पंक्तियों के प्रति आहुतियाँ दे । फिर अपने गुरु-चतुष्टय और आचार्य आदि के लिए अलग-अलग आहुति प्रदान करे ।

अथावरण-देवताः—ऐं गगनायै स्वाहा, उं रक्तायै, इं करालिकायै, अं महोच्छुषमायै, ॐ गायत्री-सहित-ब्रह्मणे, ऐं सावित्री-सहित-विष्णवे, ॐ सरस्वती-सहित-रुद्राय, ऐं श्री-सहित-धनपतये, ॐ रति-सहित-स्मराय, ॐ पुष्टि-सहित-गणपतये, ॐ शङ्ख-निधये, ॐ पद्म-निधये, ह्रां हृदयाय, ह्रीं शिरसे, ह्रूं शिखायै, ह्रौं कवचाय, ह्रौं नेत्र-त्रयाय, ह्रः अस्त्राय, ॐ अनङ्ग - कुसुमायै, अनङ्ग - कुसुमातुरायै, अनङ्ग-मदनायै, अनङ्ग-मदनातुरायै, भुवन-पालायै, गगन-वेगायै, शशि-रेखायै, गगन-रेखायै, ॐ कराल्यै, विकराल्यै, ॐ उमायै, ॐ सरस्वत्यै, ॐ श्रियै, ॐ दुर्गायै, उषायै, लक्ष्म्यै, श्रुत्यै, स्मृत्यै, धृत्यै, श्रद्धायै, मेधायै, मत्यै, कान्त्यै, आर्यायै, आं बाह्म्यै, इं माहेश्वर्यै, अं कौमार्यै, ऋं वैष्णव्यै, लृं वाराह्यै, ऐं इन्द्राण्यै, औं चामुण्डायै, अः महा-लक्ष्म्यै, ॐ अनङ्ग-रूपायै, अनङ्ग - मदनायै, अनङ्ग - मदनातुरायै,

भुवन-वेगायै, भुवन - पालिकायै, सर्व - शिशिरायै, अनङ्ग-
वेदनायै, ॐ अनङ्ग - मेखलायै, तं इन्द्राय, रं अग्नये,
यं यमाय, क्षं निऋतये, वं वरुणाय, यं वायवे, सं सोमाय,
हं ईशानाय, आं ब्रह्मणे, ह्रीं अनन्ताय, ॐ वज्राय, शक्तये,
दण्डाय, खड्गाय, पाशाय, ध्वजायै, गदायै, त्रिशूलाय, पद्माय,
चक्राय, मूलं श्रीमदीश्वराङ्गोपविष्टायै सायुधायै स-वाहनाय
स-मुद्रायै स-परिकरायै श्रीमच्छ्री-भुवनेश्वरी-भगवत्यै स्वाहा ।
इति शत-वारं हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्यात् । यथा—

अब 'ऐं गगनायै स्वाहा' आदि मन्त्रों द्वारा आवरण-देवताओं के लिए
एक-एक आहुतियाँ देते हुए भगवती श्री भुवनेश्वरी के प्रति १०० आहुतियाँ देकर
पूर्णाहुति प्रदान करे । यथा—

मूलं ध्यान स्मरन् 'न्यूनातिरिक्त-चक्र-तृप्तिरस्तु वौषट्
स्वाहा' इति पूर्णाहुतिं दत्वा—

मूल-मन्त्र और ध्यान का स्मरण करते हुए निम्न मन्त्र से पूर्णाहुति प्रदान करे
"न्यूनातिरिक्त-चक्र-तृप्तिरस्तु वौषट् स्वाहा ।"

इसके बाद यथा-शक्ति मूल-मन्त्र का जप कर उसे भगवती को निम्न मन्त्र
द्वारा समर्पित कर दे—

गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं, गूहाणास्मत्-कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्-प्रसादान्महेश्वरि ! ॥

इति जप-समर्पणं विधाय—'अग्निरिति भस्म, वायुरिति
भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, आकाश इति
भस्म । शिवमस्तु यजमानस्य छिद्रं माऽभूत कदाचन ।
देव - देव्याः प्रसादेन, रक्ष रक्षाऽस्तु मे भृशं'—इति पठेत्,
ललाटे च भस्म-तिलकं कुर्यात् । ततो देवतां विसृज्य, 'ॐ फट्
अग्निं विमुञ्चामि फट्' इत्याग्निं विमुञ्च्य—

जप-समर्पण करने के बाद 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रों द्वारा होम-
कुण्ड की भस्म को अभिमन्त्रित कर उसका तिलक अपने मस्तक पर लगाए । तब

देवता का विसर्जन कर 'ॐ फट् अग्नि विमुञ्चामि फट्' कहकर अग्नि का विमुञ्चन कर हाथ में पुष्प लेकर क्षमा-प्रार्थना करे—

क्षमस्व मन्त्र - नाथाय, नित्यानन्द - मयाय च ।

धर्मार्थ - काम - मोक्षाय, पुनरागमनाय च ॥

इत्यग्नौ पुष्पं दत्त्वा योनि-मुद्रयाऽऽवाह्याग्निं स्वात्माग्नौ संयोज्य प्रणमेत् । इति नित्य-होम-विधिः ॥

अग्नि को पुष्प समर्पित कर योनि-मुद्रा द्वारा अग्नि का आवाहन कर अपनी आत्माग्नि से उसे संयुक्त करने की भावना करते हुए प्रणाम करे । यह 'नित्य-होम' की विधि पूर्ण हुई ।

अत्र बटुकादि-बलिः—तत्रादौ ईशाने मण्डलं कृत्वा, तत्र पात्रं संस्थाप्य, 'वां बटुकाय नमः' इति बटुक-पात्रं सम्पूज्य 'ह्रीं श्रीं एहोहि-देवी-पुत्र, बटुकनाथ, कपिल - जटा-भार-भास्वर, त्रिनेत्र, ज्वाला-मुख ! सर्व-विघ्नान्नाशय नाशय, मम सर्वोपचार-सहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इति वामांगुष्ठानामिकाभ्यां बटुक-बलिं दद्यात् ।

अब बटुक आदि को बलि प्रदान करे । पहले ईशान कोण में मण्डल बनाकर, उस पर पात्र रखकर 'वां बटुकाय नमः' से उसका पूजन करे । फिर 'ह्रीं श्रीं एहोहि' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए बाएँ अंगूठे और अनामिका से बटुक-बलि का उत्सर्ग करे ।

ततः आग्नेये योगिनी-पात्रं संस्थाप्य, 'यां योगिनीभ्यो नमः' इति सम्पूज्य, 'ॐ ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगन-तले भूतले निष्कले वा, पातालं वा तले वा पवन-सलिल-योर्यत्र कुत्र स्थिता वा, क्षेत्रे पोथोपपोठादिषु च कृत-पदा धूप-दीपादिकेन प्रीता देव्यः सदा नः शुभ - बलि - विधिना पान्तु वीरेन्द्र-वन्द्याः यां योगिनीभ्यः स्वाहा, सर्व-योगिनीभ्यो हुं फट् स्वाहा' इति वामांगुष्ठ-मध्यमाभ्यां योगिनी-बलिं दद्यात् ।

तब आग्नेय कोण में योगिनी-पात्र स्थापित कर 'धां योगिनीभ्यो नमः' से उसकी पूजा कर 'ॐ ऊर्ध्वं' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए बाएँ अँगूठे और मध्यमा से योगिनी-बलि का उत्सर्ग करे ।

ततः नैऋत्ये क्षेत्रपाल-पात्रं संस्थाप्य 'क्षां क्षेत्रपालाय नमः' इति सम्पूज्य, 'क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपाल ! अलि-बलि-सहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा, योऽस्मिन् क्षेत्रे निवासी च क्षेत्रपालः स किङ्करः, सु-प्रीतो बलिदानेन मम रक्षां करोतु सः' इति वामांगुष्ठ-तर्जनीभ्यां क्षेत्रपाल-बलिं दद्यात् ।

तब नैऋत्य कोण में क्षेत्रपाल-पात्र स्थापित कर 'क्षां क्षेत्रपालाय नमः' से उसकी पूजा कर 'क्षां क्षीं क्षूं' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए बाएँ अँगूठे और तर्जनी से क्षेत्रपाल-बलि का उत्सर्ग करे ।

ततो वायव्ये गणपति-पात्रं संस्थाप्य, 'गं गणपतये नमः' इति सम्पूज्य, 'गां गीं गूं गैं गौं गः गणपतये वर वरद सर्व-जनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इति वामांगुष्ठ-मध्यमाभ्यां गणपति-बलिं दद्यात् ।

तब वायव्य कोण में गणपति-पात्र स्थापित कर 'गं गणपतये नमः' से उसकी पूजा कर 'गां गीं गूं' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए बाएँ अँगूठे और मध्यमा से गणपति-बलि का उत्सर्ग करे ।

ततः उत्तरे सर्व-भूत-बलि-पात्रं संस्थाप्य, 'ॐ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः' इति सम्पूज्य, 'ॐ ह्रीं सर्व-विघ्न - कृद्भ्यः सर्व-भूतेभ्यो हूं स्वाहा, सर्व-भूतेभ्यः एष बलिर्नमः' इति वाम-हस्तस्य सर्वाभिरंगुलीभिः सर्व-भूत-बलिं दद्यात् । इति बटुकादि-बलिः ।।

तब उत्तर दिशा में सर्व-भूत-बलि का पात्र स्थापित कर 'ॐ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः' से उसकी पूजा कर 'ॐ ह्रीं सर्व-विघ्न-कृद्भ्यः' इत्यादिमन्त्र का उच्चारण करते हुए बाएँ हाथ की सभी अँगुलियों से सर्व-भूत-बलि का उत्सर्ग करे ।

अस्मिन्नेवावसरे छागादि-बलिं दद्यात् । यथा—तत्रादौ पशुं मूलेनानीय, पाद्यादि - गन्ध-लगादिभिलंकृत्य, देव्यग्रे संस्थाप्य, मूलेन प्रोक्षणी - जलेन सम्प्रोक्ष्य, 'अस्त्राय फट्' इति संरक्ष्य, 'हूं' इत्यवगुण्ठ्य, धेनु-मुद्रयाऽमृतीकृत्य, 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्व-देवता-रूपिणे बलि-रूपायामुक-पशवे नमः' इति गन्धादिना त्रिः सम्पूज्य, तस्य दक्ष-कर्णे 'पशु-पाशाय विद्महे विप्र-कर्णाय धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात्' इति पशु-गायत्रीं त्रिः पठित्वा पुरतः खड्गं निधाय, 'ॐ ह्रीं किलि किलि वज्रेश्वरी-लोह-दण्ड्यै नमः' इति गन्धादिना त्रिरभ्यर्च्य तस्य मुष्टौ 'ॐ वागेश्वरी-ब्रह्माभ्यां नमः', मध्ये 'ॐ लक्ष्मी-नारायणाभ्यां नमः', अग्रे 'ॐ उमा-महेश्वराभ्यां नमः' इति सम्पूज्य, तं धृत्वा मन्त्रं पठेत्—

इसी अवसर पर छागादि-बलि देनी चाहिए । यथा—पहले मूल-मन्त्र का जप करते हुए पशु को लाए । पाद्यादि और गन्ध, पुष्प-मालादि से उसे सुशोभित कर देवी के सम्मुख खड़ा करे । फिर मूल-मन्त्र से प्रोक्षणी-पात्र के जल से उसका प्रोक्षण कर 'अस्त्राय फट्' से संरक्षण, 'हूं' से अवगुण्ठन, धेनु-मुद्रा से अमृतीकरण कर निम्न मन्त्र से गन्धादि द्वारा तीन बार उसका पूजन करे—

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्व-देवता-रूपिणे बलि-रूपायामुक-पशवे नमः ।'

इसके बाद उसके दाएँ कान में निम्न 'पशु-गायत्री-मन्त्र' तीन बार पढ़कर सुनाए—

'पशु-पाशाय विद्महे विप्र-कर्णाय धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात् ।'

तब अपने सामने खड्ग रखकर गन्धादि द्वारा निम्न मन्त्र से उसका तीन बार पूजन करे—

'ॐ ह्रीं किलि किलि वज्रेश्वरी-लोह-दण्ड्यै नमः ।'

फिर खड्ग के मुष्टि-भाग में 'ॐ वागेश्वरी - ब्रह्माभ्यां नमः' से, मध्य-भाग में 'ॐ लक्ष्मी - नारायणाभ्यां' से और अग्र - भाग में 'ॐ

उमा-महेश्वराभ्यां नमः' मन्त्र से पूजन करे । तब खड्ग को पकड़कर निम्न मन्त्र पढ़े—

ॐ खड्गायासुर - नाशाय, देव - कार्यार्थ-तत्परः ।

पशुः छेद्यस्त्वया शीघ्रं, खड्ग-नाथ ! नमोऽस्तु ते ॥

अर्थात् हे खड्ग-नाथ ! देव-कार्य के लिए तत्पर पशु का छेदन आप शीघ्र कर दें । असुरों का नाश करनेवाले खड्ग के लिए आपको नमस्कार है ।

—इत्यभिमन्त्र्य, गन्धाक्षत - जलादिकमादाय, 'मूलं अद्यामुक-मासस्येत्यादि अमुक-गोत्रोऽमुक - शर्माऽमुक-कामः श्रीभुवनेश्वरि ! इमं पशुं तुभ्यमर्पयाम्यहं, प्रसीद' इति पठित्वा, पशोः शिरसि निक्षिप्य, तच्चिच्छरो धृत्वा—

उक्त प्रकार खड्ग को अभिमन्त्रित कर गन्धाक्षत और जल आदि लेकर 'मूलं अद्यामुकं-मास०' इत्यादि सङ्कल्प-वाक्य पढ़कर पशु के सिर पर छिड़क दे । तब उसके सिर को पकड़कर निम्न मन्त्र पढ़े—

ॐ यज्ञार्थं पशवः सृष्टा, यज्ञार्थं पशु - घातनम् ।

अतस्त्वां घातयिष्यामि, तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ॥

शिवायत्तमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां गतः ।

उद्बुध्यस्व पशो ! त्वं हि, नाशिवस्त्वं शिवोऽसि हि ॥

अर्थात् यज्ञ के लिए पशुओं की सृष्टि हुई है । यज्ञ के लिए पशुओं का घात किया जाता है । अतः यज्ञ में किया गया वध वध नहीं होता । अतएव मैं तुम्हारा घात करूँगा । यह पिण्ड शिवा द्वारा ग्रहण किया गया है, अतः तुम शिवत्व को प्राप्त हो । हे पशु ! तुम उद्बोधन को प्राप्त करो । तुम अशिव नहीं हो, निश्चय ही शिव ही हो ।

इति सम्बोधयित्वा खड्गमादाय 'सौः अस्त्राय फट्, छिन्धि-छिन्धि स्वाहा' इति खड्गं तस्य स्कन्धे योजयेत् । ततो स्वयं देवी-रूपो भूत्वा निर्विकल्पः एकेन प्रहारेण

**छिन्धात् । सविकल्पः पर-हस्तेन छेदयेत् । अत्रैव ब्राह्मणाति-
रिक्तः स्वास्त्रादि-बलिं दद्यात् । इति बलि-प्रदान-विधिः ॥**

उक्त प्रकार पशु से कहकर खड्ग लेकर 'सौः अस्त्राय फट् छिन्धि छिन्धि स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण करते हुए उससे उसके कन्धे को स्पर्श करे । तदनन्तर अपने आपको देवी - रूप ध्यान कर निर्विकल्प भाव से एक ही प्रहार में उसका छेदन करे । यदि सविकल्प हो, तो दूसरे के हाथ द्वारा छेदन कराए ।

यहीं ब्राह्मण के अतिरिक्त लोगों द्वारा अपने रक्त आदि की बलि देने का विधान है । यही बलि-प्रदान की विधि है ।

**ततो गुरु-देव्यौ ध्यायन् प्राणायाम-ऋष्यादि-कर-षडङ्ग-
न्यासान् कृत्वा मन्त्र-संस्कारं कुर्यात्—**

इसके बाद गुरुदेव और देवी का ध्यान करते हुए प्राणायाम, ऋष्यादि, कर-षडङ्ग-न्यासों को कर मन्त्र के संस्कार करने चाहिए ।

**'ह्रीं ह्रीं ह्रीं' इति त्रिः पठेत् । इति सञ्जीवनं ॥
अथोत्कीलनं—'नमः ह्रीं' इत्युत्कीलनं त्रिजपेत् ॥ अथ शाप-
हरी विद्या—'ह्रीं भैरव-शापं मोचय मोचय ह्रीं' इति शाप-
हरीं दशधा जपेत् ॥**

'ह्रीं ह्रीं ह्रीं' का तीन बार पाठ करे । यह 'सञ्जीवन'-संस्कार है । 'नमः ह्रीं' का तीन बार जप करे, तो 'उत्कीलन' होता है । शाप-हरी विद्या है—'ह्रीं भैरव-शापं मोचय मोचय ह्रीं', जिसका १० बार जप करने से शाप-मोचन होता है ।

**इति मन्त्र-संस्कारं कृत्वा, ईश्वर-मन्त्रं दश-वारं जप्त्वा,
वाम-हस्ते पात्रे वा मालां संस्थाप्य—**

उक्त प्रकार मन्त्र - संस्कार कर ईश्वर - मन्त्र का १० बार जप कर बाएँ हाथ या किसी पात्र में 'माला' को रखकर उसकी प्रार्थना करे—

ॐ माले माले महा-माले, सर्व-सत्त्व-स्वरूपिणि !

चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे फलदा भव ॥

अर्थात् हे समस्त-सत्त्व-स्वरूपात्मिके, महा - माले ! तुममें चारों वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) निहित हैं । अतः तुम मेरे प्रति फल-प्रदायिनी हो ।

इति मालां मूलेनापि सम्पूज्य, 'गं अविघ्नं कुरु कुरु माले ! त्वं' इति दक्ष-करेण गृहीत्वा, यथा-शक्ति जपं विधाय जपान्ते—

फिर मूल-मन्त्र से माला की पूजा कर उसे दाएँ हाथ में और 'गं अविघ्नं कुरु' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण कर यथा-शक्ति जप करने के बाद निम्न मन्त्र को पढ़ते हुए माला को अपने शिर पर स्थापित करे—

त्वं माले ! सर्व-देवानां, प्रोतिदा शुभदा तथा ।

शुभं कुरुष्व मे देवि ! यशो - वीर्यं ददस्व मे ॥

अर्थात् हे माले ! तुम सभी देवों को प्रसन्न करती हो और कल्याणकारिणी हो । हे देवि ! मेरा कल्याण करो और मुझे यश तथा शक्ति दो ।

इति पठन् शिरसि मालां संस्थाप्य, पुनरपि प्राणायाम-ऋष्यादि-कर-षडङ्ग-न्यासान् विधाय, दश-वारमोश्वर - मनुं जप्त्वा, 'नमः ह्रीं' इति सम्पुट-मन्त्रं संजप्य—

तदनन्तर पुनः ऋष्यादि कर-षडङ्ग-न्यासों को कर दस बार ईश्वर-मन्त्र का जप कर सम्पुट मन्त्र 'नमः ह्रीं' का जप कर निम्न मन्त्र द्वारा तेजोमय जप-फल को देवी के बाएँ हाथ में समर्पित करे—

गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं, गृहाणास्मत्-कृतं जपम् ।

सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्-प्रसादान्महेश्वरि ! ॥

अर्थात् हे देवि ! तुम अत्यन्त गोपनीय से भी अधिक गोप्य हो । मेरे द्वारा किए गए जप को स्वीकार करो ! हे महेश्वरि ! तुम्हारी कृपा से मुझे सिद्धि प्राप्त हो ।

इत्यनेन तेजो-मयं जप-फलं देवी-वाम-हस्ते समर्प्य, कवच-सहस्रनाम-स्तोत्रादि पठित्वा, गुरु-स्तोत्रमपि पठित्वा—

अब भुवनेश्वरी के कवच, सहस्रनाम आदि स्तोत्रों का पाठ करे ।
तब निम्न मन्त्र को पढ़ते हुए चार बार प्रदक्षिणा करे ।—

सर्व-मङ्गल - माङ्गल्ये, शिवे सर्वार्थ - साधिके !

शरण्ये त्र्यम्बके! गौरि, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥

इति चतुर्वारं प्रदक्षिणी-कृत्य—

अपराधो भवत्येव, सेवकस्य पदे पदे ।

कोऽपरः सहते लोके, केवलं स्वामिनं विना ॥

इत्यष्टांगं प्रणिपत्य, ततः सामान्यार्घ्योदकं चुलकेन
गृहीत्वा—

‘अपराधो भवत्येव’ इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए साष्टाङ्ग प्रणाम
करे । तब सामान्यार्घ्य से चुल्लू में जल लेकर निम्न मन्त्र द्वारा
अपने समस्त क्रिया-कलाप को भगवती श्री भुवनेश्वरी के चरण-
कमलों में समर्पित करे—

ॐ इतः पूर्वं प्राण - बुद्धि-देह - धर्माधिकारतो जाग्रत्-
स्वप्न-सुषुप्त्यवस्थाषु मनसा वाचा कर्मणा पद्भ्यामुदरेण
शिशना यत् - स्मृतं यदुक्तं यत् - कृतं तत् - सर्वं मां मदीयं
श्रीभुवनेश्वरी - भगवती - चरण - कमले समर्पणमस्तु,
ॐ तत्-सत् ।

इति सामान्यार्घ्योदकं समर्प्याञ्जलिं बध्वा—

अब पुष्पाञ्जलि लेकर दोनों हाथ जोड़कर क्षमा-प्रार्थना करे—

यद्-दत्तं भक्ति - मात्रेण, पुष्पं पत्रं फलं जलम् ।

निवेदितं च नैवेद्यं, तद् गृहाणानुकम्पया ॥

आह्वानं नैव जानामि, न जानामि विसर्जनम् ।

पूजा-भागं न जानामि, क्षम्यतां परमेश्वरि ! ॥

देवी दात्री च भोक्त्री च, देवो सर्वमिदं जगत् ।

देवी जयतु सर्वत्र, या देवी सोऽहमेव हि ॥

यदक्षर - परिभ्रष्टं, मात्रा-हीनं च यद्-गतम् ।
 तत्-सर्वं कृपया देवि ! क्षम्यतां परमेश्वरि ! ॥
 मन्त्र-हीनं क्रिया-हीनं, विधि-हीनं च यद् भवेत् ।
 तत्-सर्वं कृपया देवि ! गृहाणाराधनं मम ॥
 प्रातः-प्रभृति-सायान्तं, सायादि - प्रातरं ततः ।
 यत्-करोमि जगद् - योने ! तदस्तु तव पूजनम् ॥
 क्षमस्व देव - देवेशि ! भुवनेशि ! महेश्वरि !
 तव पादाम्बुजे नित्यं, निश्चला भक्तिरस्तु मे ॥

इति देवीं पुष्पाञ्जलिना क्षमाप्य, ततः शङ्खमुत्थाप्य—
 उक्त प्रकार क्षमा-प्रार्थना कर पुष्पाञ्जलि देवी के सम्मुख छोड़
 दे और पूजा विसर्जन करने के लिए शङ्ख-पात्र को उठाकर निम्न
 मन्त्र पढ़े—

साधु वाऽसाधु वा कर्म, यद् - यदाचरितं मया ।
 तत् - सर्वं कृपया देवि ! गृहाणाराधनं मम ॥
 इति शङ्खं त्रिः परिभ्राम्य; तज्जलं देवी - दक्ष - हस्ते
 समर्प्य, पुनस्तज्जलं वाम-हस्तेन गृहीत्वा; शङ्खं स्व-स्थाने
 संस्थाप्य; तज्जलं स्व-मन्त्रेण सम्मन्त्र्य, तेन जलेन सप्तधा
 मूलं पठन्, स्व-शरीरं सम्प्रोक्षयेत् । ततः पुष्पाञ्जलि
 गृहीत्वा—

‘साधु वाऽसाधु’ मन्त्र पढ़ते हुए शङ्ख-पात्र को तीन बार घुमाकर
 उसके कुछ जल को देवी के दाएँ हाथ में अर्पित कर शेष जल को अपने
 बाएँ हाथ में लेकर शङ्ख को अपने स्थान पर रख दे और बाएँ हाथ
 के जल को अपने मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित कर मूल-मन्त्र का
 उच्चारण करते हुए उस जल द्वारा अपने शरीर का प्रोक्षण करे ।
 तब पुष्पाञ्जलि लेकर—

गच्छ गच्छ परं स्थानं, स्व - स्थानं परमेश्वरि !
 यत्र ब्रह्मादयः सर्वे, सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥

अर्थात् हे परमेश्वरि ! मेरे हृदय में अपने परम पद को आप जाइए, जहाँ ब्रह्मा आदि देव रहते हैं ।

इति देवीं विसृज्य संहार-मुद्रया निर्माल्य-पुष्पमाधाय—
'गच्छ-गच्छ' इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए देवी को विदाकर संहार-मुद्रा से निर्माल्य पुष्प को उठाकर सूँघे और कहे—

तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने, स्व - स्थाने परमेश्वरि ।

यत्र ब्रह्मादयः सर्वे, सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥
अर्थ स्पष्ट है ।

इति श्रीचक्रात् तेजो-रूपां देवीं मनसोत्थाप्य, स्व-हृदि संस्थापयेत् । ततः 'चण्डेश्वराय नमः' इति निर्माल्यं सम्पूज्य; ईशान-कोणे त्रिकोणं संलिख्य; तत्र 'ॐ ह्रीं उच्छिष्ट-चाण्डालिनि ! सर्व-सत्त्व-वशङ्कुरि ! स्वाहा' इति उच्छिष्ट-चाण्डालिनीं निर्माल्येन सम्पूज्य; 'लेह्य - चोष्य - भक्ष्य-पानादि-ताम्बूल-स्रग्-विलेपनं निर्माल्य-भोजनं तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया' इति नैवेद्यं शतांशं तस्यै दत्त्वा विसृजेत् । ततः श्रीपात्रमुत्थाप्य; गुरु-मन्त्रं स्मरन्, शिरसि संस्थाप्य; तज्जल किञ्चित्-पात्रान्तरे संस्थाप्य; तेन 'अं...अः मूलं आत्म-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा; कं...मं मूलं विद्या-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा; यं...लं क्षः मूलं शिव-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा; अं...अः कं...मं यं...लं क्षः मूलं सर्व-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा' इति चुलुक-चतुष्टयं स्वीकुर्यात् । ततो गुरु-पात्रमुत्तोल्य, श्रीगुरु-मन्त्रं पठन्, गुरु-सद्भावे गुरवे दद्यात्, गुरोरभावे स्व-शिरसि गुरु-पादुका-स्थाने निक्षिपेत् । अथवा गुरु-ज्येष्ठ-पुत्राय दद्यात् । ततः शक्ति-पात्रमुत्तोल्य—

उक्त प्रकार 'श्री-यन्त्र' से तेजोरूपी देवी को भावना द्वारा उठा कर अपने हृदय में स्थापित करे । तब 'चण्डेश्वराय नमः' से निर्माल्य

की पूजा कर, ईशान-कोण में एक त्रिकोण बनाकर उस पर 'ॐ ह्रीं उच्छिष्ट-चाण्डालिनि' इत्यादि मन्त्र द्वारा निर्मात्य की पूजा कर 'लेह्य-चोष्य' इत्यादि मन्त्र से नैवेद्य का शतांश उच्छिष्ट-चाण्डालिनी देवी को अर्पित कर उन्हें विदा करे। तब 'श्रीपात्र' को उठाकर, गुरु-मन्त्र को स्मरण करते हुए अपने सिर पर रखे और उसके कुछ जल को दूसरे पात्र में लेकर 'अं...अः मूलं आत्म-तत्त्वं' आदि मन्त्रों से चार बार में उसे पी जाय। इसके बाद गुरु-पात्र को उठाकर, श्रीगुरु-मन्त्र का उच्चारण करते हुए, यदि गुरुदेव उपस्थित हों, तो उन्हें प्रदान कर दे और यदि वे न हों, तो अपने शिर पर गुरु-पादुका स्थान पर उसके अमृत को छिड़क दे। अथवा गुरुदेव के ज्येष्ठ पुत्र को प्रदान करे। तब शक्ति-पात्र को उठाकर निम्न मन्त्र पढ़े—

अलि-पात्रमिदं तुभ्यं, दत्तं स-पिशितं मया ।

स्वीकृत्य सुभगे, देवि ! यशो विद्यां च देहि मे ॥

हे सुभगे देवि ! यह अलि-पात्र शुद्धि के साथ मैं आपको देता हूँ । इसे स्वीकार कर आप मुझे यश और ज्ञान प्रदान करें ।

इति पठन्, शक्तये दद्यात् । ततो वीर - पात्रामृतं वीरेभ्यो दद्यात् । ततः स्व-पात्रं कपालिनी - मुद्रितेन वाम-करेण गृहीत्वा, स्व-गुरु-मार्गेण सामयिकैः सह पात्र-वन्दनं कुर्यात् । यथा—

उक्त प्रकार शक्ति को पात्र प्रदान करे। तब 'वीर-पात्र' के अमृत को वीरों को बाँट दे। फिर अपने पात्र को बाँए हाथ की कपालिनी-मुद्रा से लेकर, अपनी गुरु-परम्परा के अनुसार, साधकों के साथ 'पात्र-वन्दना' करे। यथा—

श्रोमद् - भैरव-शेखर-प्रविलसच्चन्द्रामृताप्लावितम् ।

क्षेत्राधीश्वर-योगिनी-गण-महा-सिद्धैः समाराधितम् ॥

आनन्दागमकं महात्मकमिदं साक्षात् त्रिखण्डामृतम् ।

वन्दे श्रीप्रथमं कराम्बुज - गतं पात्रं विशुद्धि-प्रदम् ॥१

इत्यभिवन्द्य, वन्दनं कृत्वा, 'जुहोमि' इति गुरु - शक्ति-
साधकेभ्यः आज्ञां गृह्णीयात् । ते च यथोचितं 'जुषस्व'
'जुषध्वं' इति ब्रूयुः । ततो मूलाधारात् कुण्डलिनीमिष्ट-
देवता-स्वरूपामाजिह्वान्तं विभाव्य, 'ॐ आत्म-तत्त्वं शोध-
यामि स्वाहा' इति कुल-कुण्डलिनीं जुहुयात् ॥१॥

हैमं सिन्धु - रसावहं दयितया दत्तं च पेयादिभिः ।

किञ्चिच्चञ्चल-रक्त-पङ्कज-दृशा सानन्दमुद्-बोधितम् ॥

वामे स्वादु-विशुद्ध-शुद्धि कवलं पाणौ विधायात्मके ।

वन्दे पात्रमहं द्वितीयमधुनाऽऽनन्दैक - सम्बद्धनम् ॥२॥

ॐ विद्या-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

सर्वास्माय - कला-कलाप-कलितं कौतूहलोद्योतितम् ।

चन्द्रोपेन्द्र - महेन्द्र-शम्भु-वरुण-ब्रह्मादिभिः सेवितम् ॥

ध्यातं देव-गणैः परं मुनि^१-वरैर्मोक्षाथिभिः सर्वदा ।

वन्दे पात्रमहं तृतीयमधुना स्वात्मावबोध - क्षमम् ॥३॥

ॐ शिव-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

मद्यं मीन - रसावहं हरि-हर-ब्रह्मादिभिः पूरितम् ।

मुद्रा-मैथुन-धर्म-कर्म-निरतं क्षाराम्ल - तिक्ताश्रयम्^२ ॥

आचार्याचितमष्ट-भैरव-कला-न्यासेन चाच्छादितम्^३ ।

पायात् पञ्च-मकार-तत्त्वं - निलय पात्रं चतुर्थं नमः ॥४॥

ॐ प्रकृति-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

आधारे भुजगाधिराज-वलये पात्रं मही - मण्डलम् ।

मद्यं सप्त-समुद्र-वारि-पिशितं चाष्टौ च दिग्-दन्तिनः ॥

सोऽहं भैरवमर्चयेत्^१ प्रति - दिनं तारा - गणैरक्षतैः ।
आदित्य - प्रमुखैः सुरासुर-गणैराज्ञा-करैः किङ्करीः ॥५

ॐ पुरुष-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

छत्रं चामर-भद्र - पीठ - परमानन्दोदय - दायकम् ।
वाजो-दन्त-मनोहरं मुख - करं सायुज्य-साम्राज्यदम् ॥
नाना-व्याधि-भयान्धकार^२-हरणं जन्मान्तर-ध्वंसनम् ।

श्रीमद्-भैरव - भैरवी - प्रियतरं पात्रं च षष्ठं नमः ॥६

ॐ मनस्तत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति - बोध-पवनं चैतन्य-साक्षि - प्रदम् ।
विद्युद्-भास्कर-वह्नि-जिष्णु-धनुषां ज्योतिष्कला-व्यापितम् ॥
वामा-पिङ्गल-मध्यगा त्रि-वलया सत्कुण्डली चोर्ध्वगा ।
पात्रं सप्तम - पूरणेन तरुणानन्द - प्रदं पातु माम् ॥७

ॐ बुद्धि-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

खड्गं पादुक-मञ्जुलं^३ सु-तिलकं कण्ठे हि सारस्वतम् ।
शत्रोर्वाग्बल - शौर्य-कार्य-हरणं देह - स्थिते कारणम् ॥
वाञ्छा-सिद्धि-करं मनः-स्थिर^४-करं वश्यं जगद्योषितां ।
पात्रं चाष्टममष्ट - सिद्धि - करणं प्रौढ - प्रसन्नं भजे ॥८

ॐ अहङ्कार-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

सर्वानन्द-करं सदा-शिव-पदं सर्वार्थ - सम्पत् - प्रदम् ।
साम्राज्यार्थ-करं समस्त-सुखदं चाज्ञान-विध्वंसनम् ॥
आयुः-कान्ति-यशो-विवर्धन-करं संसार-मोहच्छिदम् ।
पात्रं लक्ष-गुणात्मकं^५ च नवमं प्रौढ - प्रतापं भजे ॥९

ॐ शक्ति-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

पाठ-भेद— १ भैरवमर्चयेत्, २ भवान्धकार ३ मञ्जुकं, ४ स्थिति, ५ प्रौढ-
प्रतापं, ६ गुणाकरं, ७ सर्वार्थ- सिद्धि-प्रदम्

ब्रह्मा-विष्णु-महेशानां देवानां च विशेषतः ।

दुर्लभं पावनं पात्रं दशमं प्रणमाम्यहम् ॥१०॥

ॐ भैरव-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

पापघ्नं शान्ति-शुभदं, दिव्यं स्वादु - सुखालयम् ।

पात्रमेकादशं वन्दे, शुभं^१ सेवा - सुखागतम् ॥११॥

ॐ सर्व-तत्त्वं शोधयामि स्वाहा । इति पात्र-वन्दनम् ॥

उक्त ११ पात्र-वन्दनाग्रीं का पाठ करते हुए साधक अमृत-पान करते हैं । इसके बाद 'पात्र' की प्रशंसा के कुछ श्लोकों का पाठ किया जाता है । यथा—

अथ पात्र-प्रशंसा—

पात्रं कृत्वा करे मन्त्री, सर्व-कर्म लभेत् सुखी ।

इह - लोके श्रियं भुक्त्वा, देहान्ते भैरवो भवेत् ॥१॥

वामे रामा रमण-कुशला, दक्षिणे चालि-पात्रम् ।

अग्रे मुद्राश्रणक-वटुकौ, शूकरस्योष्ण - शुद्धिः ॥

तन्त्री वीणा सरस-मधुरा, सद्-गुरुः सत्कथायाम् ।

कौलो मार्गः परम - गहनो, योगिनामप्यगम्यः ॥२॥

अलि-पिशित-पुरन्ध्री, भोग - पूजा - परोऽहम् ।

बहु-विध - कुल - मार्गारम्भ - सम्भावितोऽहम् ॥

पशु - जन - विमुखोऽहं, भैरवीमाश्रितोऽहम् ।

गुरु - चरण - रतोऽहं, भैरवोऽहं शिवोऽहम् ॥३॥

करे पात्रं मुखे स्तोत्रमानन्दो हृदयान्तरे ।

भक्तिर्गुरु - पदाम्भोजे, शरणं किमतः परम् ॥४॥

एकेन शुष्केन वटकेन^२ घटं पिबामि ।

वापीं पिबामि सहसा लवणार्द्रकेन ॥५॥

पाठ-भेद—१ गुरु, २ चणकेन

आस्वाद्य मांसमलि - रोहित - मुण्ड - खण्डम् ।

गङ्गां पिबामि यमुनां सह सागरेण ॥६॥

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा, यावत् पतति भू-तले ।

पुनस्तथाय वै^१ पीत्वा, पुनर्जन्म न विद्यते ॥७॥

यावन्न चलते चित्तः^२, यावन्न चलते मनः ।

तावत् पानं प्रकर्तव्यं, पशु - पानमतः परम् ॥८॥

इति पात्र-प्रशंसां कृत्वा बलि-पात्रस्थ-निर्माल्यादिकं च पात्रान्तरे गृहीत्वा बहिर्गत्वा शुद्ध-देशे ईशान-कोणे मण्डलं विलिख्य—

उक्त प्रकार पात्र-प्रशंसा करने के बाद बलि-पात्र में रखे निर्माल्य आदि को दूसरे पात्र में लेकर पूजा-गृह से बाहर जाकर ईशान कोण में किसी शुद्ध स्थान में मण्डल बनाकर निम्न मन्त्र से उच्छिष्ट-भैरव को अर्पित करते हैं—

‘ॐ ऐं ह्रीं श्रीं उच्छिष्ट-भैरव ! आगच्छागच्छ बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा’ इत्युच्छिष्ट-भैरवमावाह्य सम्पूज्य तन्निर्माल्यं तत्र संक्षिप्य, योनि-मुद्रयोच्छिष्ट-भैरवं विसृज्य, नदी-तीरं गत्वा, पाणि-पादौ प्रक्षाल्य, पात्रं जल-पूर्णं गृहीत्वा, स्व-हृदि देवीं स्मरन्, पूजा-गृह-द्वारं गत्वा, ‘उदयोऽस्तु’ इति ब्रुवन्नन्तः प्रविश्य तत्र स्वासने समुपविश्य, जल-पात्रे श्रीपात्र-विन्दुं निक्षिप्य, तेन जलेन स्वात्मानं सम्प्रोक्ष्यन्, शान्ति-स्तोत्रं पठेद् । यथा—

‘ॐ ऐं ह्रीं श्रीं उच्छिष्ट-भैरव’ इत्यादि मन्त्र से उच्छिष्ट-भैरव का आवाहन, पूजन-पूर्वक बलि देकर, योनि-मुद्रा द्वारा उन्हें विदा कर जलशय के पास जाए और हाथ-पैर धोकर जल-पूर्ण पात्र हाथ में लेकर अपने हृदय में श्री भुवनेश्वरी देवी का ध्यान करते हुए पूजा-पाठ-भेद—१ च, २ मनः

गृह के द्वार पर वापस आए । वहाँ 'उदयोऽस्तु' मन्त्र का उच्चारण कर भीतर प्रवेश करे और अपने आसन पर बैठकर जल-पात्र में श्रीपात्र का बिन्दु डालकर उससे अपने ऊपर प्रोक्षण करते हुए 'शान्ति-स्तोत्र' का पाठ करे । यथा—

श्रीभैरव उवाच—

देवि ! वक्ष्यामि पूजान्ते, शान्ति-स्तोत्रमनुत्तमम् ।

वीराः येन परानन्द-पदं प्राप्स्यन्ति निःस्पृहाः ॥१

योगिनी-चक्र-मध्यस्थं, मातृ-मण्डल - वेष्टितम् ।

नमामि शिरसा नाथं, भैरवं भैरवी - प्रियम् ॥२

अनादि-घोर - संसार - व्याधि - ध्वंसैक - हेतवे ।

नमः श्रीनाथ - वैद्याय, कुलौषध - प्रदायिने ॥३

आपदो दुरितं रोगाः, समयाचार - लङ्घनात् ।

ये सर्वे ते व्यपोहन्तु, दिव्य-चक्रस्य मेलनात् ॥४

आयुरारोग्यमैश्वर्यं, कीर्तिर्लाभः सुखं जयः ।

शान्ति-मनोरथश्चास्तु, पान्तु सर्वाश्च देवताः ॥५

सम्पूजकानां प्रति-पालकानाम्,

यतीन्द्र - योगीन्द्र - तपोधनानाम् ।

देशस्य राष्ट्रस्य कुलस्य राज्ञः,

करोतु शान्तिं भगवान् कुलेशः ॥६

नन्दन्तु साधक-कुलान्वय-दर्शकाः,

ये मृष्टाद्यनाख्य चतुरुक्त-महान्वये ।

नन्दन्तु सर्व-कुल-कौल-रताः परे,

येऽप्यन्ये विशेष-पद-भेदक-शाम्भवा ये ॥७

नन्दन्तु सिद्ध-गुरवः स्व-गुरु-क्रमौघा,

ज्येष्ठानुगाः समयिनो वटुकाः कुमार्यः ।

षड्-योगिनी-प्रवर-वीर-कुल-प्रसूता,

नन्दन्तु भूमि-पतयो द्विज-साधु-लोकाः ॥८

नन्दन्तु नोति-निपुणा निरवद्य-निष्ठा,

निर्मत्सरा निरुपमा निरुपद्रवाश्च ।

नित्या निरञ्जन-रता गुरवो निरीहाः,

शान्ताश्च शान्त-मनसो हृत-शोक-शान्ताः ॥९

नन्दन्तु योग-निरताः कुल-योग-युक्ताः,

आचार्य-सामयिक-साधक-पुत्रकाश्च ।

गावो द्विजा युवतयो यतयः कुमार्यो,

धर्मे भवन्तु निरताः गुरु-भक्ति-युक्ताः ॥१०

नन्दन्तु साधक-कुलान्यणिमादि-निष्ठाः,

शापात् पतन्तु द्विषता कुल-योगिनीनाम् ।

सा शाम्भवी स्फुरतु काऽपि ममाद्यवस्था,

यस्यां गुरोश्चरण-पङ्कजमेव लभ्यम् ॥११

याश्चक्र-क्रम-भूमिका वसतयो, नाडीषु याः संस्थिताः ।

याः काय-द्रुम-रोम-कूप - निलयायाः संस्थिता धातुषु ॥१२

उच्छ्वासोमि-मरुत्तरङ्ग-निलया निःश्वास-वासाश्च या—

स्ता देव्यो रिपु-भक्ष्य-भक्षण-परास्तृप्यन्तु कौलार्चिताः ॥१३

या दिव्य-क्रम-पालिका क्षिति-गता या देवता - तोयगा ।

या नित्यं प्रथिताः प्रभाः शिखि-गता या मातरिश्वाश्चयाः ॥१४

या व्योमामृत - मण्डलामृत - मयायास्सर्वगाः सर्वदा ।

ताः सर्वाः कुल-मार्ग - पालन-पराः शान्तिं प्रयच्छन्तु मे ॥१५

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगन-तले भू-तले निष्कले वा ।

पाताले वा वने वा पवन-सलिलयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा ॥१६

क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृत - पदा धूप - दीपालि-मांसैः ।

प्रीताः देव्यः सदानः शुभ-वलि-विधिना पान्तु वीरेन्द्र-वन्द्याः ॥१७

ब्रह्मा-श्री-शेष-दुर्गा-गुह-बटुक-गणा भैरवाः क्षेत्रपालाः ।
 वेतालादित्य-रुद्र-ग्रह-वसु-मनु - सिद्धाप्सरो गुह्यकाद्याः ॥१८
 भूता गन्धर्व-विद्याधर-ऋषि - पितृ-गणा सुरा हि प्रभूता ।
 योगीशाश्चारणाः किंपुरुष-मुनि-सुराश्चक्रगाः पान्तु सर्वे ॥१९
 सत्यं चेद् गुरु-वाक्यमेव पितृ-देवाः शेष - वद् - योगिनी ।
 प्रीतिश्चेत् पर-देवताश्च यदि चेत् वेदाः प्रमाणं च चेत् ॥२०
 शाक्त्यं यदि दर्शनं भवति चेदाज्ञेयमेवाऽस्ति चेत् ।
 सन्त्यत्रापि च कौलिकाश्च यदि चेत् स्यान्मे जयः सर्वदा ॥२१
 तृप्यन्तु मातरः सर्वाः, स - मुद्राः स - गणाधिपाः ।
 योगिन्यः क्षेत्रपालश्च, मम देहे व्यवस्थिताः ॥२२
 शिवाद्यवनि - पर्यन्तं, ब्रह्मादि - स्तम्भ - संयुतम् ।
 कालाग्न्यादि - शिवान्तं च जगद् - यज्ञेन तृप्यतु ॥२३

इति शान्ति-स्तोत्रं ॥ अथ वीर-वन्दनं—

पठित्वेदं नमेद् वीरान् वीर-वन्दनमाचरेत् । स्तुवन् वीरान्
 नमेद् वीरान् मन्त्र-सिद्धिः प्रजायते ॥१

'शान्ति-स्तोत्र' पढ़ने के बाद वीर साधकों की स्तुति कर उन्हें
 नमस्कार करना चाहिए । इससे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है । वीर-
 वन्दना हेतु कृपया देखें 'चक्र-पूजा के स्तोत्र' नामक पुस्तक ।



सप्तमः पटलः

[‘श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य’ के सातवें पटल में भगवती भुवनेश्वरी का ‘त्रैलोक्य-मोहन कवच’ प्रकाशित है। यह कवच ‘श्रीभुवनेश्वरी स्तव मञ्जरी’ पृष्ठ १६ में प्रकाशित है। यहाँ केवल उसका अन्तिम अप्रकाशित अंश दिया जा रहा है।—सं०]

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

भगवन् ! करुणाम्भोधे ! कीदृशं मन्त्रमुत्तमम् ।

मूलकं भुवनेश्वर्याः, कृपया वक्तुमर्हसि ॥१॥

श्री देवी ने पूछा—हे दया-सागर, भगवन् ! भुवनेश्वरी देवी का उत्तम मूल-मन्त्र क्या है ? कृपया बताइए ॥१॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

शृणु देवि ! प्रवक्ष्येऽहमुद्धारं मन्त्र-विग्रहम् ।

देवेशि ! भुवनेश्वर्याः, गोप्याद् गोप्य-तमं कुरु ॥२॥

प्रणवं सकला लक्ष्मीः, कामं वाग्भवमेव च ।

शरश्च भुवनेश्वर्यै, मध्येऽन्तश्च नमः इति ।

प्रोक्तोऽयं भुवनेश्वर्या, मन्त्रं त्रयोदशाक्षरः ॥३॥ (इत्युद्धारः)

प्रकाशम्—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं सौः भुवनेश्वर्यै नमः (इति मूलम्)

ईश्वर बोले—हे देवि ! सुनो । मैं भुवनेश्वरी के मन्त्र-स्वरूप का ‘उद्धार’ कहूँगा । इसे गोप्य से भी अत्यधिक गोप्य रखना । प्रणव (ॐ), सकला (ह्रीं), लक्ष्मी (श्रीं), काम (क्लीं), वाग्भव (ऐं), शर (सौः), ‘भुवनेश्वर्यै’ मध्य में और अन्त में ‘नमः’—यह भुवनेश्वरी का १३ अक्षरों का मन्त्र कहा गया है (देखें, ऊपर श्लोक ३ के नीचे) ॥२-३॥

अनेन मन्त्रेण नरेश्वरो यो, ध्यायेद् हृदब्जे भुवनेश्वरीं ताम् ।

स याति भूपेश्वरतां च भूमौ, मृतो भवेत् सः त्रिदिवे सुरेशः ॥४॥

इस मन्त्र के द्वारा जो श्रेष्ठ मनुष्य उन भुवनेश्वरी का अपने हृदय-कमल में ध्यान करता है, वह पृथ्वी पर भूपति होता है और मरने पर वह स्वर्ग में देवताओं का स्वामी बनता है ॥४॥

भूर्जे विलिख्य गुटिकां, स्वर्णस्थां धारयेद् यदि ।

पुरुषो दक्षिणे बाहौ, योषिद् वाम-करे तथा ॥५॥

सर्व-सिद्धि-युतो भूत्वा, विचरेद् भैरवो यथा ।

तद्-गात्रं प्राप्य शस्त्राणि, ब्रह्मास्त्रादीनि पार्वति! ॥६॥

अल्पाणि कुसुमानीव, भवन्ति सुखदानि च ।

तस्य गेहे चिरं लक्ष्मीः, वाणी च निवसेद् ध्रुवम् ॥७॥

भोज-पत्र में इस मन्त्र को लिखकर स्वर्ण की गुटिका में यदि पुरुष दाईं भुजा में और स्त्री बाईं भुजा में धारण करे, तो सभी सिद्धियों से युक्त होकर वह भैरव के समान रहता है और हे पार्वति ! उसके शरीर से ब्रह्मास्त्र आदि शस्त्र टकरा कर छोटे - छोटे पुष्प के समान सुख-दायक हो जाते हैं और उसके घर में लक्ष्मी या सरस्वती निवास करती हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥५-७॥

इदं कवचमज्ञात्वा, स - यन्त्रं मन्त्र - विग्रहम् ।

यो भजेदधमो मर्त्यो, देवेशि ! भुवनेश्वरीम् ।

अल्पायुर्निर्बलो मूर्खो, भवत्येव न संशयः ॥८॥

हे देवेशि ! इस कवच को जाने बिना यन्त्र-सहित मन्त्र-विग्रह जो नीच भुवनेश्वरी की उपासना करता है, वह मूर्ख अल्पायु और दुर्बल होता ही है, इसमें सन्देह नहीं ॥८॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

कीदृशं भुवनेश्वर्याः, यन्त्रं मन्त्र - मयं महत् ।

यं दृष्ट्वा लभते मुक्तिं, पूजित्वा मानवेश्वरः ॥९॥

श्री देवी ने पूछा—भुवनेश्वरी का मन्त्र-मय यन्त्र किस प्रकार का है, जिसे देखकर और जिसका पूजन कर श्रेष्ठ मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥९॥

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

ब्रवीमीमं यथा तुभ्यं, गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१०॥

यस्य कस्य न दातव्यं, दत्त्वा कुण्ठी भवेच्छिवे ! ॥१०॥

श्री भैरव ने कहा—हे शिवे ? जैसा मैं तुम्हें बताता हूँ, उसे प्रयत्न करके गुप्त रखना चाहिए । जिस किसी को इसे न देना चाहिए अन्यथा देनेवाला कुण्ठ-रोगी हो जाता है ॥१०॥

त्रिकोणं पूर्वमुद्धृत्य, ह्यधस्ताद् वीर-वन्दिते !
 ऊर्ध्वं च तादृशं कुर्यात्, त्रिकोणं च पुनः क्षिपेत् ॥११॥
 अधस्तात् कोण-कुहराद्, ऊर्ध्व-कोणे समाक्षिपेत् ।
 उत्थाप्योर्ध्वं त्रिकोणं च, यन्त्र-मध्ये विनिक्षिपेत् ॥१२॥
 पुनस्त्रिकोण-मध्ये तु, बिन्दु-स्थानं समाचरेत् ।
 यन्त्रान्ते चतुरस्राभिः, मयाभिः सहितं चरेत् ॥१३॥
 लताभिः सहिता रेखाः, चतस्रस्त्रिः समाचरेत् ।
 बीजाक्षरान् विभज्यैवं, यन्त्रं प्रोक्तं मया तव ॥१४॥

हे वीर साधकों द्वारा वन्दिते ! पहले 'त्रिकोण' अधोमुख बनाकर पुनः ऊर्ध्व-मुख 'त्रिकोण' बनाए । त्रिकोण के मध्य में 'विन्दु' बनाकर 'यन्त्र' के बाहर 'चतुरस्र' बनाए । 'चतुरस्र' में तीन रेखाएँ बनाए । बीजाक्षरों को उसमें अङ्कित करे । इस प्रकार मैंने 'यन्त्र' तुम्हें बता दिया ॥११-१४॥

बिन्दोरुर्ध्वं च प्रणवं, तत ऊर्ध्वं परां न्यसेत् ।
 तत ऊर्ध्वं च कमलां, सव्ये च मदनं न्यसेत् ॥१५॥
 वामेऽपि चारणं प्रोक्तं, पुनः सव्ये शर-स्मृता ।
 वामेऽप्यचरमां वर्णं, नान्यः पर्वत - नन्दिनि ! ॥१६॥
 पर-नाम्नो परं वर्णं, पुनः वामेऽपि तादृशम् ।
 पुनर्नामाक्षरं सव्ये, तथा वामेऽपि विन्यसेत् ॥१७॥
 बिन्दोरधस्तादपरं, तदधस्तात् स्मृतं परम् ।
 अस्मिन् बीजाक्षराण्येवं, विभज्य भुवनेश्वरी ॥१८॥
 पूजयेत् साधको धीमान्, धारयेत् साधकोत्तमः ।
 कवचं यन्त्र - संयुक्तं, सर्व - मन्त्र - मयं महत् ॥१९॥

॥ विन्दु के ऊपर प्रणव (ॐ), उसके ऊपर परा (ह्रीं) को रखे । उसके ऊपर कमला (श्रीं) और दाईं ओर मदन (क्लीं) को रखे । बाईं ओर चारण (ऐं), फिर दाईं ओर शर (सौः) को रखे । हे पर्वत-नन्दिनि ! दाईं ओर नामाक्षर (भुवनेश्वर्यै) और बाईं ओर 'नमः' को रखे । इस प्रकार भुवनेश्वरी के बीजाक्षरों को विभाजित कर बुद्धिमान् साधक पूजन करे । श्रेष्ठ साधक इस यन्त्र को धारण करें । 'यन्त्र' से युक्त 'सर्व-मन्त्र-मय-कवच' महान् है ॥१५-१९॥

सम्पूज्य कवचं यन्त्रं, धृत्वाऽपि साधकेश्वरः ।

त्रैलोक्ये विचरेद् वीरो, यथैवाऽहं तथैव सः ॥२०॥

कवच और यन्त्र का पूजन करे तथा धारण भी करे, तो श्रेष्ठ वीर साधक तीनों लोकों में मेरे समान विचरण करता है ॥२०॥

इदं रहस्यं परमं, भक्त्या तव मयोदितम् ।

यस्य कस्य न वक्तव्यं, सत्यं जानीहि सुव्रते ! ॥२१॥

कर्मणा मनसा वाचा, सत्यं सत्यं सुरेश्वरि !

रहस्यं भुवनेश्वर्याः, न देयं यस्य कस्य - चित् ॥२२॥

हे सुव्रते ! तुम्हारी भक्ति से मैंने यह रहस्य कहा है । इसे जिस किसी से न कहना चाहिए, इसे सत्य समझो ॥२१॥

हे सुरेश्वरि ! यह सर्वथा सत्य है कि भुवनेश्वरी का रहस्य मन, कर्म और वचन द्वारा जिस किसी को न बताना चाहिए ॥२२॥

दद्याच्छिष्याय शान्ताय, गुरु-भक्ति-पराय च ।

लोभ-मोह-विहीनाय, देवी - भक्ति - युताय च ॥२३॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं, सत्यं जानीहि पार्वति !

इत्येषः पटलो देवि ! गोपनीयं महेश्वरि !

कवचोद्धारको नाम, साधकेष्ट - फल - प्रदः ॥२४॥

शान्त, गुरु-भक्ति में तत्पर, लोभ-मोह से रहित और देवी-भक्ति युक्त शिष्य को ही इसे बताना चाहिए ॥२३॥

हे महेश्वरि ! यह सर्वथा सत्य है कि 'कवचोद्धारक' नामक यह 'पटल' साधकों के लिए अभीष्ट फल-दायक है और गोपनीय है ॥२४॥

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये कवचोद्धारक-नाम-सप्तमः पटलः सम्पूर्णः ॥



अष्टमः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

देवि ! तुष्टोऽस्मि सेवाभिस्त्वद् - रूपेण च भाषया ।

मनोऽभिलषितं किञ्चिद्, वरं वरय सुव्रते ! ॥१॥

श्री भैरव बोले—हे देवि ! तुम्हारे वार्तालाप-रूपी सेवा से मैं प्रसन्न हूँ । अतः हे सुव्रते ! कोई अभीष्ट वर माँगो ॥१॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

तुष्टोऽसि यदि मे देव ! वर - योग्यास्म्यऽहं यदि ।

वद मे भुवनेश्याः, मन्त्रं नाम - सहस्रकम् ॥२॥

श्रीदेवी ने कहा—हे देव ! यदि मुझ पर आप प्रसन्न हैं और मैं यदि वर पाने के योग्य हूँ, तो मुझे भुवनेश्वरी के सहस्र-नाम बताइए ॥२॥

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

तव भक्त्या ब्रवीम्यद्य, देव्या नाम - सहस्रकम् ।

मन्त्र - गर्भं चतुर्वर्ग - फलदं मन्त्रिणां कलौ ॥३॥

गोपनीयं सदा भक्त्या, साधकैश्च सु-सिद्धये ।

सर्व - रोग - प्रशमनं, सर्व - शत्रु - भयावहम् ॥४॥

सर्वोत्पात - प्रशमनं, सर्व - दारिद्र्य - नाशनम्,

यशस्करं श्री - करं च, पुत्र - पौत्र - विवर्द्धनम् ।

देवेशि ! वेत्सि त्वद् भक्त्या, गोपनीयं प्रयत्नतः ॥५॥

श्री भैरव बोले—तुम्हारी भक्ति से आज मैं देवी के सहस्र-नाम बताता हूँ, जो मन्त्र-गर्भित हैं और कलियुग में मन्त्र-साधकों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इन चारों वर्गों के फल-दायक हैं । साधकों को उत्तम सिद्धि प्राप्त करने के लिए सदा भक्ति-पूर्वक इन्हें गुप्त रखना चाहिए । ये सभी रोगों को शान्त करते हैं, समस्त शत्रुओं को भय-दायक हैं, सभी उपद्रवों के शामक हैं, सब प्रकार की दरिद्रता के नाशक हैं, यश-दायक हैं, लक्ष्मी-प्रद हैं और पुत्र-पौत्र की वृद्धि करने-वाले हैं । हे देवेशि ! भक्ति-पूर्वक जानो और प्रयत्न - पूर्वक गुप्त रखो ॥३-५॥

०१॥ श्रीभैरव उवाच ॥ [१६५]

विनियोगः - अस्य नाम्नां सहस्रस्य, ऋषिः भैरव उच्यते, पंक्ति-
श्छन्दः समाख्याता, देवता भुवनेश्वरी । ह्रीं बीजं श्रीं च शक्तिः स्यात्,
क्लीं कीलकमुदाहृतम्, मनोऽभिलाष-सिद्धयर्थं, विनियोगः प्रकीर्तितः ॥

उक्त विनियोग के बाद 'ऋष्यादि-न्यास' करे । यथा—

श्री भैरव-ऋषये नमः शिरसि । पंक्तिश्छन्दसे नमः मुखे । श्री
भुवनेश्वरी-देवतायै नमः हृदि । ह्रीं बीजाय नमः हृदि । शक्तये नमः
नाभौ । क्लीं कीलकाय नमः पादयोः । मनोऽभिलाष-सिद्धयर्थं पाठे
विनियोगाय नमः सर्वांगे ॥

इसके बाद सहस्र-नाम का पाठ करे—

॥ मन्त्र-गर्भ नाम-सहस्रकम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं जगदीशानि, ह्रीं-श्रीं-बीजा जगत्-प्रिया ।

ॐ श्रीं जय - प्रदा ॐ ह्रीं, जया ह्रीं जय-वर्द्धिनो ॥१

ॐ ह्रीं श्रीं वां जगन्माता, श्रीं क्लीं जगद्-वर-प्रदा ।

ॐ श्रीं जुं जटिनी ह्रीं क्लीं, जयदा श्रीं जगन्धरा ॥२

ॐ क्लीं ज्योतिष्मती ॐ जुं, जननी श्रीं जरानुरा ।

ॐ स्त्रीं जुं जगतीं ह्रीं श्रीं, जप्या ॐ जगदाश्रया ॥३

ॐ श्रीं जुं सः जगन्माता, ॐ जुं जगत् - क्षयङ्करी ।

ॐ श्रीं क्लीं जानकी स्वाहा, श्रीं क्लीं ह्रीं जात-रूपिणी ॥४

ॐ श्रीं क्लीं जाप्य-फलदा, ॐ जुं सः जन-वल्लभा ।

ॐ श्रीं क्लीं जन-नीतिज्ञा, ॐ श्रीं जन - त्रयेष्टदा ॥५

ॐ क्लीं कमल-पत्राक्षी, ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं च कामिनी ।

ॐ गूं घोर - रवा ॐ श्रीं घोर-रूपा हंसैः गतिः ॥६

ॐ गं गणेश्वरी ॐ श्रीं, शिव - वामाङ्ग-वासिनी ।

ॐ श्रीं शिवेष्टदा स्वाहा, ॐ श्रीं शीतातप - प्रिया ॥७

ॐ श्रीं गूं गण-माता च, ॐ श्रीं क्लीं गुणि-रागिणी ।

ॐ श्रीं गणेश - माता च, ॐ श्रीं शङ्कर-वल्लभा ॥८

ॐ श्रीं क्लीं शीतलाङ्गी श्रीं, शीतला श्रीं शिवेश्वरी ।

ॐ श्रीं क्लीं गौरी गज-राजस्था, ॐ श्रीं गौरी गौतमी तथा ॥९

ॐ घां घुर-घुर-नादा च, ॐ गीं गीत-प्रिया हंसैः ।

घरिणी गीं घटान्तःस्था, ॐ गीं गन्धर्व - सेविता ॥१०

ॐ गौं श्रीं गो-पति स्वाहा, ॐ गौं गौं ॐ गण-प्रिया ।
 ॐ गौं गोष्ठी हसौः गोप्या, ॐ गौं घर्माशु-लोचना ॥११
 ॐ श्रीं गन्त्रीं हसौः घण्टां, ॐ घं घण्टा रवाकुला ।
 ॐ त्रीं श्रीं घोर-रूपा च, ॐ गौं श्रीं गरुडी हसौः ॥१२
 गणया गौं हसौः गुर्वी, ॐ श्रीं घोर - द्युतिस्तथा ।
 ॐ श्रीं गौं गण - गन्धर्व - सेवताङ्गी गरीयसी ॥१३
 ॐ श्रीं गाथ हसौः गोप्त्री, ॐ गौं गणक - सेविता ।
 ॐ श्रीं गुण-मति स्वाहा, श्रीं क्लीं गौरी हसौः गदा ॥१४
 ॐ श्रीं गौं गौर-रूपा च, ॐ गौं गौर - स्वरा तथा ।
 ॐ श्रीं गौं क्लीं गदा-हस्ता, ॐ गौं गोंदा हसौः पयः ॥१५
 ॐ श्रीं क्लीं गम्यारूपा च, ॐ अगम्या हसौः वनम् ।
 ॐ श्रीं गौं घोर - वदना, घोराकारा हसौः पयः ॥१६
 ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कोमलाङ्गी च, ॐ क्लीं काल-क्षयङ्करी ।
 ॐ क्लीं कर्पट - हस्ता च, क्लीं हूं कादम्बरी हसौः ॥१७
 क्लीं श्रीं कनक - वर्णा च, ॐ क्लीं कनक - भूषणा ।
 ॐ क्लीं काली हसौः कान्ता, क्लीं हूं कारुण्य-रूपिणी ॥१८
 क्लीं श्रीं कूट-प्रिया क्लीं हूं, त्रिकूटा क्लीं कुलेश्वरी ।
 ॐ क्लीं कम्बल-वस्त्रा च, क्लीं पीताम्बर - सेविता ॥१९
 क्लीं श्रीं कुल्या हसौः कीर्तिः, क्लीं श्रीं क्लीं क्लेश-हारिणी ।
 ॐ क्लीं कूटालया क्लीं ह्रीं, कूट-कर्त्री हसौः कुटोः ॥२०
 ॐ श्रीं क्लीं काम-कमला, क्लीं श्रीं कमला क्लीं च कौरवी ।
 क्लीं श्रीं कुरुरवा ह्रीं श्रीं, हाटकेश्वर - पूजिता ॥२१
 ॐ हारां रम्य-रूपा च, ॐ श्रीं क्लीं कान्चना गदा ।
 ॐ क्लीं श्रीं कुण्डली क्लीं हूं, कारा-बन्धन - मोक्षदा ॥२२
 ॐ क्लीं कुरा हसौः क्लीं ब्लू, ॐ क्लीं कौरव-मर्दिनी ।
 ॐ श्रीं कटु हसौः कुण्ठी, ॐ श्रीं कुण्ठ - क्षयङ्करी ॥२३
 ॐ श्रीं चकोरकी कान्ता, क्लीं श्रीं कपालिनी परा ।
 ॐ श्रीं क्लीं कालिका कामा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कलङ्किता ॥२४
 क्लीं श्रीं क्लीं कठोराङ्गी, ॐ श्रीं कपट-रूपिणी ।
 ॐ क्लीं कामवती क्लीं श्रीं, कन्या क्लीं कालिका हसौः ॥२५
 श्मशान-कालिका श्रीं क्लीं, ॐ क्लीं श्रीं कुटिलालका ।
 ॐ क्लीं श्रीं कुटिल-भूष, क्लीं हूं कुटिल - रूपिणी ॥२६

- ॐ क्रीं कमल-हस्ता च, क्रीं कुण्टी ॐ क्रीं कौलिनी ।
 ॐ श्रीं क्लीं कण्ठ-मध्यस्था, क्रीं क्लीं कान्ति-स्वरूपिणी ॥२७
 ॐ क्रीं कार्त-स्वरूपा च, ॐ क्रीं कात्यायनी हसौः ।
 कलावती हसौः काम्या, क्रीं कला - निधोशेश्वरी ॥२८
 ॐ क्रीं श्रीं सर्व - मध्यस्था, ॐ क्रीं सर्वेश्वरी पयः ।
 ॐ क्रीं ह्रूं चक्र-मध्यस्था, ॐ क्रीं श्रीं चक्र-रूपिणी ॥२९
 ॐ क्रीं ह्रूं चं चकोराक्षी, ॐ चं चन्दन - शीतला ।
 ॐ चं चर्माम्बरा ह्रूं क्रीं, चारु-हासा हसौः च्युता ॥३०
 ॐ श्रीं चौर-प्रिया ह्रूं च, चार्वङ्गी श्रीं चलाऽचला ।
 ॐ श्रीं ह्रूं काम-राज्येष्ठा, कुलिनी क्रीं हसौः कुहू ॥३१
 ॐ क्रीं क्रिया कुलाचारा, क्रीं क्रीं कमल - वासिनी ।
 ॐ क्रीं हेलाः हसौः लीलाः, ॐ क्रीं काल-विलासिनी ॥३२
 ॐ क्रीं काल-प्रिया ह्रूं क्रीं, काल-रात्री हसौः बला ।
 ॐ क्रीं श्रीं शशि-मध्यस्था, क्रीं श्रीं कन्दर्प - लोचना ॥३३
 ॐ क्रीं शीतांशु - मुकुटा, क्रीं श्रीं सर्व - वर - प्रदा ।
 ॐ श्रीं श्यामाम्बरा स्वाहा, ॐ श्रीं श्यामल-रूपिणी ॥३४
 ॐ श्रीं क्रीं श्रीं सती स्वाहा, ॐ क्रीं श्रीधर-सेविता ।
 ॐ श्रीं रूक्षा हसौः रम्मा, ॐ क्रीं रस - वर्ति-पथा ॥३५
 कुण्ड-गोल-प्रियकरी, ह्रीं श्रीं ॐ क्लीं कु-रूपिणी ।
 ॐ श्रीं सर्वा-हसौः तृप्तिः, ॐ श्रीं तारा हसौः त्रया ॥३६
 ॐ श्रीं तारुण्य - रूपा च, ॐ क्रीं त्रि - नयना पय ।
 ॐ श्रीं ताम्बूल - रक्तास्या, ॐ क्रीं उग्र-प्रभा तथा ॥३७
 ॐ श्रीं उग्रेश्वरी स्वाहा, ॐ श्रीं उग्र - रवाकुला ।
 ॐ क्रीं च सर्व-भूषाढ्या, ॐ श्रीं चम्पक - मालिनी ॥३८
 ॐ श्रीं चम्पक-वल्ली च, ॐ ह्रीं श्रीं च च्युतालया ।
 ॐ श्रीं द्युति - मति स्वाहा, ॐ श्रीं देव-प्रसूः पयः ॥३९
 ॐ श्रीं दैत्यारि - पूजा च, ॐ क्रीं दैत्य - विमर्दिनी ।
 ॐ श्रीं द्यु-मणि-नेत्रा च, ॐ श्रीं दम्भ - विवर्जिता ॥४०
 ॐ श्रीं दारिद्र्य-राशिघ्नी, ॐ श्रीं दामोदर-प्रिया ।
 ॐ क्लीं दर्पापहा स्वाहा, ॐ क्रीं कन्दर्प - लालसा ॥४१

ॐ क्रीं करीर-वृक्षस्था, ॐ क्रीं हृङ्कारि - गामिनी ।
 ॐ क्रीं शुकात्मिका स्वाहा, ॐ क्रीं शुक-करा तथा ॥४२
 ॐ श्रीं शुक-श्रुतिः श्रीं क्लीं, श्रीं ह्रीं शुक-कवित्व-दा ।
 ॐ क्रीं शुक-प्रसू स्वाहा, ॐ श्रीं क्रीं शव-गामिनी ॥४३
 ॐ श्रीं रक्ताम्बरा स्वाहा, ॐ क्रीं पीताम्बराचिता ।
 ॐ श्रीं क्रीं स्मित-संयुक्ता, ॐ श्रीं क्रीं सौः स्मरा पुरा ॥४४
 ॐ श्रीं क्रीं हं च स्मेरास्या, ॐ श्रीं स्मर-विवद्विनी ।
 ॐ श्रीं सर्पाकुला स्वाहा, ॐ श्रीं सर्वोप - वेशिनी ॥४५
 ॐ क्रीं सौः सर्प-कन्या च, ॐ क्रीं सर्पासन - प्रिया ।
 सौः सौः क्लीं सर्व-कुटिला, ॐ श्रीं सुरासुराचिता ॥४६
 ॐ श्रीं सुरारि - मथिनी, ॐ श्रीं सुरि-जन-प्रिया ।
 ऐं सौः सूर्येन्दु - तयना, ऐं क्लीं सूर्यायुत - प्रभा ॥४७
 ऐं श्रीं क्लीं सुर-सेव्या च, ॐ श्रीं सर्वेश्वरी तथा ।
 ॐ श्रीं क्षेम-करी स्वाहा, ॐ क्रीं हं भद्र-कालिका ॥४८
 ॐ श्रीं श्यामा हसौःस्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं शर्वरी-स्वाहा ।
 ॐ श्रीं क्लीं शर्वरी तथा, ॐ श्रीं क्लीं शान्त-रूपिणी ॥४९
 ॐ क्रीं श्रीं श्रीधरेशानि, ॐ श्रीं क्लीं शासिनी तथा ।
 ॐ क्लीं शितिर्हसौः शौरी, ॐ श्रीं क्लीं शारदा तथा ॥५०
 ॐ श्रीं ह्रीं शारिका स्वाहा, ॐ श्रीं शाकम्भरी तथा ।
 ॐ श्रीं क्लीं शिव-रूपा च, ॐ श्रीं क्लीं काम-चारिणी ॥५१
 ॐ यं यज्ञेश्वरी स्वाहा, ॐ श्रीं यज्ञ - प्रिया सदा ।
 ऐं क्लीं यं यज्ञ-रूपा च, ॐ श्रीं यं यज्ञ - दक्षिणा ॥५२
 ॐ श्रीं यज्ञाचिता स्वाहा, ॐ यं याज्ञिक - पूजिता ।
 श्रीं ह्रीं यं यजमान-स्त्री, ॐ श्रीं यज्वा हसौः वधूः ॥५३
 श्रीं वां बटुक - पूजिता, ॐ श्रीं वरूथिनी स्वाहा ।
 ॐ श्रीं क्रीं वार्ता हसौस्तथा ॥५४
 ॐ श्रीं क्लीं ऐं च वाराही, ॐ श्रीं क्लीं वर-वर्णिनी ।
 ॐ ऐं सौः वार्तदा स्वाहा, ॐ श्रीं वराङ्गना तथा ॥५५
 ॐ श्रीं वैकुण्ठ-पूजा च, वां श्रीं ऐं क्लीं च वैष्णवी ।
 ॐ श्रीं वां ब्राह्मणी स्वाहा, ॐ क्रीं ब्राह्मण-पूजिता ॥५६

ॐ श्रीं ऐं क्लीं च इन्द्राणी, ॐ ॐ क्लीं इन्द्र-पूजिता ।
 ॐ श्रीं क्लीं ऐन्द्र ऐं स्वाहा, ॐ श्रीं क्लीं इन्दु-शेखरा ॥५७
 ॐ ऐं इन्द्र - समानाभा, ॐ ऐं क्लीं इन्द्र-वल्लभा ।
 ॐ श्रीं इडा हसौः नाभिः, ॐ श्रीं ईश्वर - पूजिता ॥५८
 ब्रां ब्राह्मी क्लीं हं रुद्राणी, ॐ ऐं द्रीं श्रीं रमा तथा ।
 ऐं क्लीं स्थाणु-प्रिया स्वाहा, ॐ गीं गद-क्षय-करी ॥५९
 ॐ गीं गीं श्रीं गुरुस्था च, ऐं क्लीं गुद-विवर्द्धिनी ।
 ॐ श्रीं क्रीं कृं कुलीरस्था, ॐ क्रीं श्रीं कूर्म-पृष्ठगा ॥६०
 ॐ श्रीं श्रूं तोतला स्वाहा, ॐ त्रौं त्रिभुवनाचिता ।
 ॐ प्रीं प्रीतिहंसोः प्रीतां, प्रीं प्रभा प्रीं पुरेश्वरी ॥६१
 ॐ प्रीं पर्वत-पुत्री च, ॐ प्रीं पर्वत-वासिनी ।
 ॐ श्रीं प्रीति-प्रदा स्वाहा, ॐ ऐं सत्त्व-गुणाश्रिता ॥६२
 ॐ क्लीं सत्य-प्रिया स्वाहा, ऐं सौः क्लीं सत्य-सङ्गरा ।
 ॐ श्रीं सनातनी स्वाहा, ॐ श्रीं सागर-शायिनी ॥६३
 ॐ क्लीं चं चन्द्रिका ऐं सौः, चन्द्र-मण्डल-मध्यगा ।
 ॐ श्रीं चारु-प्रभा स्वाहा, ॐ क्रीं प्रे प्रेत-शायिनी ॥६४
 ॐ श्रीं श्रीं मथुरा ऐं क्रीं, काशी श्रीं श्रीं मनोरमा ।
 ॐ श्रीं मन्त्र-मयी स्वाहा, ॐ चं चन्द्रक-शीतला ॥६५
 ॐ श्रीं क्लीं शाङ्करी स्वाहा, ॐ श्रीं सर्वाङ्ग-वासिनी ।
 ॐ श्रीं सर्व-प्रिया स्वाहा, ॐ श्रीं क्लीं सत्य-भामिनी ॥६६
 ॐ क्लीं सत्यात्मिका स्वाहा, ॐ क्लीं ऐं सौः च सात्त्विकी ।
 ॐ श्रीं रां राज्ञी स्वाहा, ॐ क्रीं रम्भोपमा तथा ॥६७
 ॐ श्रीं राघव-सेव्या च, ॐ श्रीं रावण-घातिनी ।
 निशुम्भ-हन्त्री ह्रीं श्रीं क्लीं, ॐ क्रीं शुम्भ-मदापहा ॥६८
 ॐ श्रीं रक्त-प्रिया हरा, रक्त - बीज - क्षयङ्करी ।
 ॐ श्रीं माहिष-पृष्ठस्था, ॐ श्रीं माहिष-घातिनी ॥६९
 ॐ श्रीं माहिणे स्वाहा, ॐ श्रीं श्रीं मानवेष्टदा ।
 ॐ श्रीं मति-प्रदा स्वाहा, ॐ श्रीं मनु-मयी तथा ॥७०
 ॐ श्रीं मनोहराङ्गी च, ॐ श्रीं माधव-सेविता ।
 ॐ श्रीं मागध-स्तुत्या च, ॐ श्रीं बन्दी-स्तुता सदा ॥७१
 ॐ श्रीं मान-प्रदा स्वाहा, ॐ श्रीं मान्या हसौः मतिः ।
 ॐ श्रीं श्रीं भामिनी स्वाहा, ॐ श्रीं मान-क्षयङ्करी ॥७२

ॐ श्रीं मार्जार-गम्या च, ॐ श्रीं श्रीं मृगो-लोचना ।
 ॐ मराल-मतिः श्रीं श्रीं, मकुरा प्रीं च पूतना ॥७३
 ॐ श्रीं परापरा ॐ श्रीं, परिवार - समुद्भवा ।
 ॐ श्रीं पद्म - वरा ऐं सौः, पद्मोभव - क्षयङ्करी ॥७४
 ॐ प्रीं पद्मा हसौः पुरायै, ॐ प्रीं पुराङ्गना तथा ।
 ॐ श्रीं पयोदश - दृशी, ॐ प्रीं परावतेश्वरी ॥७५
 ॐ पयोधर - नम्राङ्गी, ॐ ध्रीं धाराधर-प्रिया ।
 ॐ धृति ऐं दया स्वाहा, ॐ श्रीं कीं श्रीं दया-वती ॥७६
 ॐ श्रीं द्रुत-गतिः स्वाहा, ॐ द्रीं द्रं वन-घातिनी ।
 ॐ चं चर्माम्बरेशानी, ॐ चं चण्डाल - रूपिणी ॥७७
 ॐ चामुण्डा-हसौः चण्डी, ॐ चं कीं चण्डिका-पयः ।
 ॐ कीं चण्ड-प्रभा स्वाहा, ॐ चं कीं चारु-हासिनी ॥७८
 ॐ कीं श्रीं अच्युतेष्टा ह्रीं, चण्ड-मुण्ड - क्षयङ्करी ।
 ॐ त्रौं श्रीं त्रितये स्वाहा, ॐ श्रीं त्रिपुर-भैरवी ॥७९
 ॐ ऐं सौः त्रिपुरानन्दा, ॐ ऐं त्रिपुर-सूदिनी ।
 ऐं क्लीं सौः त्रिपुराध्यक्षा, ऐं त्रौं श्रीं त्रिपुराऽऽश्रया ॥८०
 ॐ श्रीं त्रिनयने स्वाहा, ॐ श्रीं तारा वर-कुला ।
 ॐ श्रीं तुबुरु-हस्ता च, ॐ श्रीं मन्द-भाषिणी ॥८१
 ॐ श्रीं महेश्वरी स्वाहा, ॐ श्रीं मोदक-भक्षिणी ।
 ॐ श्रीं मन्दोदरी स्वाहा, ॐ श्रीं मधुर-भाषिणी ॥८२
 ॐ श्रीं श्रीं मधुरालापा, ॐ श्रीं मधुर-भाषिणी ।
 ॐ श्रीं माता-मही स्वाहा, ॐ मान्या श्रीं मदालसा ॥८३
 ॐ श्रीं मदोद्धता स्वाहा, ॐ श्रीं मन्दिर-वासिनी ।
 ॐ श्रीं क्लीं षोडशारस्था, ॐ श्रीं द्वादश-रूपिणी ॥८४
 ॐ श्रीं द्वादश-पत्रस्था, ॐ श्रीं अं अष्ट-कोणगा ।
 ॐ श्रीं मातङ्गी हसौः श्रीं क्लीं, मत्त-मातङ्ग-गामिनी ॥८५
 ॐ श्रीं मालापहा स्वाहा, ॐ श्रीं माता हसौः सुधा ।
 ॐ श्रीं सुधा-कला स्वाहा, ॐ श्रीं श्रीं मांसिनी स्वाहा ॥
 ॐ श्रीं माला - करी तथा ।
 ॐ श्रीं माध्वी रसापूर्णा, ॐ श्रीं सूर्या हसौः सती ॥८६

- ॐ ऐं सौः क्लीं सत्य-रूपा, ॐ श्रीं दीक्षा हसौः दरी । ॥६३॥
 ॐ द्रीं दातृ-प्रिया ह्रीं, श्रीं दक्ष-यज्ञ-विलासिनी ॥६४॥
 ॐ दातृ - प्रसू स्वाहा, ॐ श्रीं दाता हसौः पयः । ॥६५॥
 ॐ श्रीं ऐं सौः च सुमुखी, ॐ ऐं सौः सत्य-वारुणी । ॥६६॥
 ॐ श्रीं साडम्बरा स्वाहा, ॐ श्रीं ऐं सौः सदा-गतिः । ॥६७॥
 ॐ श्रीं सीता हसौः सत्या, ॐ ऐं सन्तान-शायिनी ॥६८॥
 ॐ ऐं सौः सर्व-दृष्टिश्च, ॐ क्लीं कल्पान्त-कारिणी । ॥६९॥
 ॐ श्रीं चन्द्र-कला-धरा, ॐ ऐं श्रीं पशु - पालिनी ॥७०॥
 ॐ श्रीं शिशु - प्रिया ऐं सौः, शिशूत्सङ्ग-निवेशिता । ॥७१॥
 श्रीं ऐं सौः तारिणी स्वाहा, ॐ ऐं क्लीं तामसी तथा ॥७२॥
 ॐ श्रीं मोहान्धकारघ्नी, ॐ श्रीं मत्त-मनास्तथा । ॥७३॥
 ॐ श्रीं श्रीं माननीया च, ॐ प्रीं पूजा-फल - प्रदा ॥७४॥
 ॐ श्रीं श्रीं श्री-फला स्वाहा, ॐ श्रीं क्लीं सत्य-रूपिणी । ॥७५॥
 ॐ श्रीं नारायणी स्वाहा, ॐ श्रीं क्लीं तूपुराकिला ॥७६॥
 ॐ श्रीं श्रीं नारसिंही च, ॐ श्रीं नारायण-प्रिया । ॥७७॥
 ॐ श्रीं हंस-गतिः स्वाहा, ॐ श्रीं हंसो हसौः पयः ॥७८॥
 ॐ श्रीं क्लीं करवालेष्टा, ॐ क्लीं कोटर - वासिनी । ॥७९॥
 ॐ क्लीं काञ्चन-भूषाढ्या, ॐ क्लीं श्रीं कुरी - पयः ॥८०॥
 ॐ क्लीं शशि-रूपा च, ॐ श्रीं सः सूर्य - रूपिणी । ॥८१॥
 ॐ श्रीं वाम-प्रिया स्वाहा, ॐ वीं वरुण - पूजिता ॥८२॥
 ॐ वीं वटेश्वरी स्वाहा, ॐ वीं वामन - रूपिणी । ॥८३॥
 ॐ रं व्रीं खर्पर स्वाहा, ॐ रं व्रीं खार-रूपिणी ॥८४॥
 ॐ रं व्रीं खर्पर - यात्रा च, ॐ प्रीं प्रेतालया तथा ॥८५॥
 ॐ श्रीं क्लीं प्रीं च दूतात्मा, ॐ प्रीं पुण्य-विवर्द्धिनी । ॥८६॥
 ॐ श्रीं श्रीं शान्तिदा स्वाहा, ॐ प्रीं पाताल-चारिणी ॥८७॥
 ॐ श्रीं मूकेश्वरी स्वाहा, ॐ श्रीं श्रीं मन्त्र-सागरा । ॥८८॥
 ॐ श्रीं क्लीं क्रयदा स्वाहा, ॐ क्लीं विक्रय-कारिणी ॥८९॥
 ॐ क्लीं क्रयात्मिका स्वाहा, ॐ क्लीं श्रीं क्लीं कृपा-वती । ॥९०॥
 ॐ क्लीं श्रीं व्रीं विचित्राङ्गी, ॐ श्रीं क्लीं वीं विभावरी ॥९१॥
 ॐ वीं विभाव - सुनेत्रा, वीं श्रीं वीं वामकेश्वरी । ॥९२॥
 ॐ श्रीं वसु - प्रदा स्वाहा, ॐ श्रीं वैश्रवणाचिता ॥९३॥

ॐ भै श्रीं भाग्यदा स्वाहा, ॐ भै भै भग-मालिनी ।
 ॐ श्रीं भगोदरा स्वाहा, ॐ भै क्लीं वन्दवेश्वरी ॥१०२
 ॐ श्रीं श्रीं भव-मध्यस्था, ऐं क्लीं त्रिपुर - सुन्दरी ।
 ॐ श्रीं क्लीं भीति-हर्त्री च, ॐ भै भूत - क्षयङ्करी ॥१०३
 ॐ भै भय-प्रदा भै श्रीं, भगिनी भै भयापहा ।
 ॐ ह्रीं श्रीं भोगदा स्वाहा, श्रीं क्लीं ह्रीं भुवनेश्वरी ॥१०४

॥ फल-श्रुति ॥

इति श्रीदेव-देवेशि ! नाम्ना सहस्रकोत्तमः ।

मन्त्र-गर्भं परं रहस्यं, गोप्यं श्रीदं शिवात्मकम् ॥१

माङ्गल्यं भद्रदं सेव्यं, सर्व - रोग - क्षयङ्करम् ।

सर्व-दारिद्र्य - राशिघ्नं, सर्वाभिर - प्रपूजितम् ॥२

रहस्यं सर्व - देवानां, रहस्यं सर्व - देहिनाम् ।

दिव्यं स्तोत्रमिदं नाम्नां, सहस्र - मनुभिर्युतम् ॥३

परापरं मनु - मयं, परापर - रहस्यकम् ।

इदं नाम्नां सहस्राख्यं, स्तवं मन्त्र-मयं परम् ॥४

हे देव-देवेशि ! उक्त उत्तम मन्त्र-गर्भित सहस्रनाम अति सुन्दर, श्री-प्रद, कल्याणकारी व गोपनीय है; मङ्गलकारी, कल्याण-प्रद, पठनीय, सर्व-रोग-नाशक, दरिद्रता के समस्त समूह का विनाशक और सभी देवों द्वारा पूजित है । सहस्र मन्त्रों से युक्त यह दिव्य नाम-स्तवन सभी देवों का और सभी शरीर-धारियों का रहस्य है । मन्त्र-मय होने से यह सहस्र-नाम स्तोत्र श्रेष्ठ है और परापर रहस्यों से युक्त है ॥१-४

पठनीयं सदा देवि ! शून्यागारे चतुष्पथे ।

निशीथे चैव मध्याह्ने, लिखेद् यत्नेन देशिकः ॥५

गन्धैश्च कुसुमैश्चैव, कर्पूरेण च वासितैः ।

कस्तूरी - चन्दनैर्देवि ! द्वर्वा च महेश्वरि ! ॥६

हे देवि ! इसका पाठ सदा रात्रि में या दोपहर में शून्य गृह में या चोराहे पर करना चाहिए । हे देवि, महेश्वरि ! द्वार (द्वर्वा) के द्वारा सुगन्धित पुष्पों और कपूर से युक्त कस्तूरी-चन्दन से यत्न-पूर्वक इसे लिखना चाहिए ॥५-६॥

रजस्वलाया रक्तेन, लिखेन्नाम्नां सहस्रकम् ।

लिखित्वा धारयेन्मूर्ध्नि, साधकः शुभ-वाञ्छकः ॥७

यं यं कामयते कामं, तं तं प्राप्नोति लीलया ।

अपुत्रो लभते पुत्रान्, धनार्थो लभते धनम् ॥८

कन्यार्थो लभते कन्यां, विद्यार्थी शास्त्र-पारंगः ।

वन्ध्या पुत्र-युता देवि ! मृत-वत्सा तथैव च ॥९

अपना कल्याण चाहनेवाला साधक रजस्वला के रक्त से उत्त-
सहस्र-नामों को लिखकर अपने सिर पर धारण करे, तो वह जो-जो
कामना करेगा, उस सबको सहज ही प्राप्त कर लेगा । पुत्र-हीन पुत्र
पाता है और धन-हीन धन ! कन्या का इच्छुक कन्या प्राप्त करता
है और विद्यार्थी शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है । हे देवि ! बाँझ स्त्री
पुत्र पाती है और जिसके पुत्र होकर मर जाते हैं, वह दीर्घायु पुत्र
प्राप्त करती है ॥७-९॥

पुरुषो दक्षिणे बाहौ, योषिद् वाम-करे तथा ।

धृत्वा नाम्नां सहस्रं तु, सर्व-सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१०

पुरुष दाईं भुजा में और स्त्री बाँईं भुजा में इस सहस्र-नाम को
धारण करे, तो निश्चय ही सभी सिद्धियाँ मिलती हैं ॥१०॥

नात्र सिद्धाद्यपेक्षाऽस्ति, न वा मित्रारि-दूषणम् ।

सर्व-सिद्धि-कृतं चैतत्, सर्वाभीष्ट - फल-प्रदम् ॥११

इसमें न 'सिद्ध' आदि की अपेक्षा है, न 'मित्र' या 'शत्रु'-भाव के
विचार की आवश्यकता है । यह सर्व-सिद्धियों का करनेवाला है और
सभी अभीष्ट फलों को देनेवाला है ॥११॥

मोहान्धकाराप-हरं, महा - मन्त्र - मयं परम् ।

इदं नाम्नां सहस्रं तु, पठित्वा त्रिविधं दिनम् ॥१२

मोहान्धकार को नष्ट करनेवाला यह श्रेष्ठ महा-मन्त्र-मय सहस्र-
नाम है । इसका पाठ दिन में तीन बार करे ॥१२॥

रात्रौ वार - त्रयं चैव, तथा मास-त्रयं शिवे !

बलि दद्याद् यथा-शक्त्या, साधकः सिद्धि-वाञ्छकः ॥१३

सर्व-सिद्धि-युतो भूत्वा, विचरेद् भैरवो यथा ।

पञ्चम्यां च नवम्यां च, चतुर्दश्यां विशेषतः ॥१४

पठित्वा साधको दद्याद्, बलि मन्त्र-विधान-वित् ।

कर्मणा मनसा वाचा, साधको भैरवो भवेत् ॥१५

अस्य नाम्नां सहस्रस्य, महिमानं सुरेश्वरि !

वक्तुं न शक्यते देवि ! कल्प-कोटि-शतैरपि ॥१६

तीन दिनों तक रात्रि में और हे शिवे ! तीन महीने तक इसका पाठ करे । सिद्धि का इच्छुक साधक यथा-शक्ति बलि प्रदान करे, तो वह सभी सिद्धियों से युक्त होकर भैरव के समान विचरण करता है । विशेष कर पञ्चमी, नवमी और चतुर्दशी की तिथियों में इसका पाठ कर मन्त्र-विधान को जाननेवाला साधक बलि प्रदान करे, तो वह मन-वचन-कर्म से भैरव-समान होता है ॥१३-१५॥

हे देवि ! इस सहस्र-नाम की महिमा का वर्णन करोड़ों सैकड़ों कल्पों में भी नहीं किया जा सकता है ॥१६॥

मारी-भये चौर-भये, रणे राज-भये तथा ।

अग्निजे वायुजे चैव, तथा काल-भये शिवे ! ॥१७॥

वनेऽरण्ये श्मशाने च, महोत्पाते चतुष्पथे ।

दुर्भिक्षे ग्रहे पीडायां, पठेन्नाम्नां सहस्रकम् ॥१८॥

तत् सद्यः प्रशमं याति, हिम-वद् भास्करोदये ।

एक-वारं पठेत् पात्रः, तस्य शत्रुर्न जायते ॥१९॥

त्रि-वारं सुपठेद् यस्तु, स तु पूजा-फलं लभेत् ।

दशावर्तं पठेद् यस्तु, देवी-दर्शनमाप्नुयात् ॥२०॥

शतावर्तं पठेद् यस्तु, स सद्यो भैरवोपमः ।

इदं रहस्यं परमं, तव प्रीत्या मया स्मृतम् ॥२१॥

महा-मारी का भय हो, चोरों का भय हो, युद्ध में या राजा का भय हो, अग्नि, वायु या मृत्यु का भय हो, जंगल में या श्मशान में हो या महान् उपद्रव के बीच में हो, दुर्भिक्ष में, ग्रह-पीडा में हो—इस सहस्र-नाम का पाठ करे, तो तुरन्त ही शान्ति मिलेगी, जैसे सूर्योदय होने पर ठण्डक से रक्षा होती है । एक बार पाठ करने से ही कोई शत्रु नहीं रहता । तीन बार जो पाठ करता है, उसे पूजा का पूरा फल मिलता है । दस बार पाठ करनेवाला देवी का दर्शन प्राप्त करता है और जो सौ बार पाठ करता है, वह तुरन्त ही भैरव-स्वरूप हो जाता है । यह रहस्य की बात मैंने तुम्हारे प्रेम-वश बताई है ॥१७-२१॥

गोपनीयं प्रयत्नेन, चेत्याज्ञा परमेश्वरि !

नाभक्तेभ्यस्तु दातव्यो, गोपनीयं महेश्वरि ! ॥२२॥

हे परमेश्वरि ! हे महेश्वरि ! इसे भक्ति-हीन को नहीं देना चाहिए और प्रयत्न-पूर्वक गोपनीय रखना चाहिए ॥२२॥

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये मन्त्र-गर्भ-सहस्रनामाष्टमः पटलः ॥

‘नवमः पटलः’ : ‘भुवनेश्वरी-स्तव मंजरी’, पृ० ४६ ‘श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य-स्तवः’ देखें। यही ‘तत्त्व-विद्या-स्तोत्र’ नाम से इसमें दिया है।

दशमः पटलः

॥ श्रीभैरव-उवाच ॥

मन्त्र-साधनं वक्ष्येऽहं, रहस्यं सर्व - मन्त्रिणाम् ।

येन साधन - मात्रेण, मन्त्र - सिद्धिमुपोष्यति ॥१॥

बिना शाप-हरीं नैव, मन्त्रः सिद्धि - प्रदायकः ।

सम्पुटे बिना देवि ! शृणु तान् प्राण-वल्लभे ! ॥२॥

श्री भैरव जी बोले—हे प्राण-वल्लभे ! अब मैं समग्र उपासकों के लिए मन्त्र-साधना के उपाय बताऊँगा, जिनके करने से मन्त्र-सिद्धि प्राप्त होती है। ‘शाप-हरी विद्या’ और ‘सम्पुट’ के बिना मन्त्र सिद्धि-दाता नहीं होता, उन्हें सुनो ॥१-२॥

विश्वान्ते सकलां दद्यात्, जपेत् पार्वति ! जापकः ।

मनोः श्रीभुवनेश्वर्याः, स्यादुत्कीलनमुत्तमम् ॥३॥

वार-त्रयं पठेदादौ, मूल - मन्त्रस्य वै पराम् ।

मन्त्रस्य भुवनेश्वर्याः, भवेत् सञ्जीवनं परम् ॥४॥

हे पार्वति ! जप-कर्ता विश्व-बीज ‘ॐ’ के अन्त में ‘कला’ (मातृका-अक्षरों) को देकर भुवनेश्वरी के मन्त्र का जप करे, तो सर्वोत्तम उत्कीलन होता है। यथा—‘ॐ’ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं एं ऐं लृं लृं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं संहं लं क्षं मूलं’ ।

सर्व-प्रथम ‘परा-बीज’ (सौ.) का जप कर लेना चाहिए। इससे भुवनेश्वरी-मन्त्र का ‘सञ्जीवन’ होता है ॥३-४॥

माया भैरव - शापं च, मोचयेद् द्वयमञ्जले ।

माया सा भुवनेश्वर्याः, विज्ञेयं शाप - हारिणी ॥५॥

ततः सिद्ध-मनुं देवि ! जपेन्मान्त्रिक - सत्तमः,

यथा - शक्त्या ततो दद्यात्, सम्पुटं साधकेश्वरः ।

यं विधाय भवेद् देवि ! सर्व-सौख्य-मयः सुधीः ॥६॥

‘माया (ह्रीं) से भी ‘भैरव-शाप’ मुक्त होता है। भुवनेश्वरी-मन्त्र में माया-बीज सम्पुटित करने से शाप दूर होता है। हे देवि ! इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर श्रेष्ठ साधक जप करे। तब साधक यथा-शक्ति ‘सम्पुट’ लगाए। ऐसा करने से वह बुद्धिमान् सभी सुखों से युक्त होता है ॥५-६॥

विश्वान्ते च परा-बीजं, दश - वारं पठेच्छिवे !

मन्त्रोऽयं भुवनेश्वर्याः, सम्पुटाख्यः सु - सिद्धिदः ॥७

एवं संस्थितमीशानि ! मनुं देव्याः जपेत् सदा ।

सर्व - सिद्धिमवाप्नोति, साधको मन्त्र - साधकः ॥८

हे शिवे ! विश्व-बीज 'ॐ' के अन्त में परा-बीज (सौः) लगाकर दस बार जप करे । भुवनेश्वरी का यह 'सम्पुट' मन्त्र उत्तम सिद्धि-दायक है । हे ईशानि ! देवी के इस मन्त्र का सदा जप करना चाहिए ।

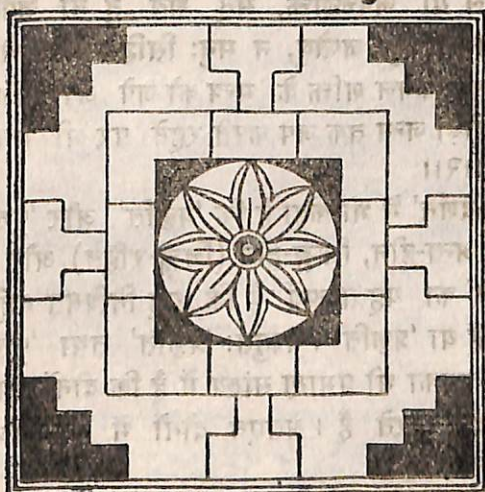
इससे साधक सभी सिद्धियों को प्राप्त करता है ॥७-८॥

इत्येष पटलो देवि ! साधनाख्यो महेश्वरि !

तव स्नेहान्मया प्रोक्तः, वक्तव्यः साधकोत्तमैः ॥९

हे देवि महेश्वरि ! 'साधन' नामक यह पटल मैंने तुम्हारे स्नेह से कहा है, जो उत्तम साधकों को ही बताना चाहिए ॥९॥

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये उत्कीलन-कथन-नाम दशमः पटलः ॥१०॥



एकादशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

अधुना विश्व - विद्याऽन्ते, वक्ष्यामि परमार्थदाम् ।

सर्व-सिद्धि - मयीं सांख्यां, सर्व-तन्त्रेषु गोपिताम् ॥१॥

भैरवजी बोले—अब 'विश्व-विद्या' के बाद परमार्थ को देनेवाली विद्या कहूँगा, जो अखिल सिद्धियों से परिपूर्ण है। इसमें सांख्य दर्शन की प्रतिपाद्या प्रकृति का वर्णन है, जो सभी तन्त्रों में गुप्त है ॥१॥

'सांख्य' दर्शन में स्पष्ट बताया है कि ईश्वर 'प्रकृति' के बिना सामर्थ्य-हीन है। इस प्रकार 'सांख्य' और 'तन्त्र'—ये दोनों एक ही तत्त्व के प्रतिपादक हैं। भगवान् के हृदय में जब यह भावना उत्पन्न हुई कि 'एकोऽहं बहु स्याम्', तो योग-माया की सहायता से ही यह भावना पूर्ण हो सकी। सप्तशती के अनुसार देवासुर-संग्राम में देवी ने ही दानवों का संहार कर अमर-वृन्द को निरापद किया। अतएव 'तन्त्र' तथा 'सांख्य' दोनों में एक-वाक्यता है और यह परमार्थदा विद्या तन्त्र-रूपी सागर में गुप्त है।

केवलं यो जपेच्छाक्तं, मनुं शैवं तु नो जपेत् ।

जन्म-कोटिषु जप्तेषु, न मनुः सिद्धि-भाग् भवेत् ॥२॥

जो साधक केवल शक्ति के मन्त्र को जपे और शिव-मन्त्र को न जपे, तो करोड़ों जन्म तक जप करते रहने पर भी मन्त्र सिद्धि-दाता नहीं होता ॥२॥

'सांख्य-दर्शन' में भी कहा है कि 'प्रकृति' और 'पुरुष'—दोनों ही आदि-हीन, अन्त-हीन, लिङ्ग-हीन (चिह्न-रहित) और परापर-रहित हैं। 'परापर' का यह तात्पर्य है कि यह निश्चित नहीं है कि पहले 'पुरुष' हुए हैं या 'प्रकृति'। वस्तुतः 'प्रकृति' तथा 'पुरुष' दोनों एक ही रूप हैं। इसका भी प्रमाण सांख्य में है कि दोनों समान धर्मानुकूल कार्य-सम्पादन करते हैं। अतएव दोनों में एक-निष्ठता के नाते समवाय-सम्बन्ध है।

जैसे सूर्य हैं, तो उनकी छाया भी है, वैसे ही शिव की शक्ति हैं और शक्ति के शिव हैं। इसी को कहते हैं—'अङ्गाङ्गी-भाव'।

अतः शक्ति-पूजा के साथ शिव-पूजन परमावश्यक है।

यस्याः देव्यास्तु यो देवः, शिवस्तत्-साधको भवेत् ।

ईश्वरो भुवनेश्वर्याः, शिव इत्येवमीश्वरि ॥३॥

हे ईश्वरि ! जिन देवी के जो देवता होते हैं, वही उनके साधक शिव होते हैं । 'भुवनेश्वरी' के भी ईश्वर शिव ही हैं ॥३॥

ईश्वरस्य मनुं वक्ष्ये, सर्व - सिद्धि - करं परम्—

तारं भूति रमा लक्ष्मीरीश्वरी याऽश्मरी ततः ।

मन्त्रोऽयमीश्वर - प्रोक्तः, साधकेष्ट - फल - प्रदः ॥४॥

अब ईश्वर अर्थात् शिवजी का सर्व-सिद्धि-दायक श्रेष्ठ मन्त्र बताऊँगा—“तार = ‘ॐ’, भूति = ह्रीं, रमा = श्रीं, लक्ष्मी = श्रीं, (सौं हसक्षमलवरयूं) अश्मरी = नमः”—यही मन्त्र साधकों को अभिलषित फल-दाता है ॥४॥

अस्य-मन्त्रस्य देवेशि ! ऋषिः प्रोक्तः सदा-शिवः ।

छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातं, ईश्वरो देवता स्मृतः ॥५॥

बीजं च प्रणवः शक्तिः, मा रमा कीलकं स्मृतम् ।

धर्मार्थ - काम - मोक्षार्थ, विनियोगः प्रकीर्तितः ॥६॥

हे देवेशि ! इस मन्त्र के ‘सदाशिव’ ऋषि कहे गए हैं । ‘ईश्वर’ देवता हैं । ‘अनुष्टुप्’ छन्द है । बीज ‘प्रणव’ = ‘ॐ’ है, शक्ति ‘मा’ = ‘श्री’ है । कीलक ‘रमा’ = ‘श्री’ है और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के साधन में इसका प्रयोग है । ‘विनियोग’ प्रयोग को ही कहते हैं ॥५-६॥

तारं माया रमा बीजं, न्यासं षड्-दीर्घ-संयुतैः ।

कुर्यात् कराङ्गया देवि ! साधकोऽभोष्ट - सिद्धये ॥७॥

हे देवि ! साधक तार (ॐ), माया (ह्रीं) और रमा-बीज (श्रीं) को छः दीर्घ स्वरों से युक्त कर कराङ्ग-न्यास अपनी अभिलषित सिद्धि के लिए करे ॥७॥

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्व - कामार्थ - सिद्धिदम्—

अब सभी कामार्थी (चतुर्वर्ग) की सिद्धि देनेवाले ध्यान को कहूँगा—

१ शिव जी का मन्त्र मन्त्रोद्धार के अनुसार ‘ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं नमः’ सप्ताक्षर बनता है किन्तु एक मत से ‘श्रीं’ के बाद ‘सौः’ हसक्षमलवरयूं जोड़ लेना चाहिए ।

शुद्ध - स्फटिक - सङ्काशं त्रि - नेत्रमीश्वरं प्रभुम्,
सिंह - चर्म - परीधानं गज - चर्मोत्तरीयकम् ।

मुधाढ्य - कलशं शूलं वरं चाभयमेव च,
धारयन्तं कराम्भोजैः शशाङ्क - कृत - शेखरम् ॥८॥
पद्मासनं स्मित - मुखं, वामाङ्गं संसृतं परम् ।

भुवनेश्याः महा - देव्याः, हृत्पद्मे भावयाम्यहम् ॥९॥

शुद्ध धवल या सत्त्व-मय स्फटिक के समान कान्ति-मान्, तीन नेत्रों से विभूषित, सिंह की छाल पहिने, हाथी के चर्म का उत्तरीय लिए, अमृत-पूर्ण कलश, त्रिशूल, वर और अभय कर-कमलों में धारण किए, चन्द्रमा से शोभित ललाट, पद्मासन से बैठे, मुस्कान-युक्त देवी भुवनेश्वरी का दक्षिणाङ्ग जिनके वामाङ्ग में संलग्न है अर्थात् जो अर्द्ध-नारीश्वर हो रहे हैं, ऐसे भगवान् ईश्वर का मैं अपने हृदय-कमल में ध्यान करता हूँ ॥८-९॥

अनेन ध्यान - राजेन, मनसा चिन्तितेन च ।

विद्या हि भुवनेश्वर्याः, कलौ सिद्ध्यति सत्वरम् ॥१०॥

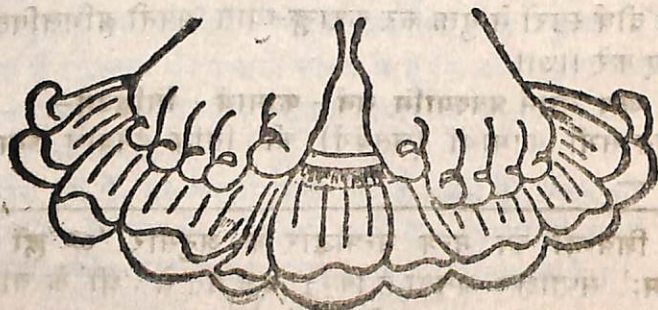
इस ध्यान-राज का चिन्तन मन में करने से कलि-युग में श्री भुवनेश्वरी विद्या शीघ्र ही सिद्ध होती हैं ॥१०॥

इत्येष पटलो देवि ! दिव्य - मन्त्र - प्रकाशकः ।

गोपनीयो महेशानि ! साधकैः स्वात्म - सिद्ध्ये ॥११॥

हे देवि ! यह पटल अपूर्व मन्त्र का प्रकाशक है । अतएव अपनी सिद्धि के हेतु साधकों द्वारा गोपनीय है ॥११॥

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये ईश्वर-मन्त्र-प्रकाशको नाम एकादशः पटलः ॥



द्वादशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

दीक्षा - विधिं प्रवक्ष्यामि, साधकानां हितेच्छया ।

विधाय विधि-वद् दीक्षां, पशुत्वात् प्रविमुच्यते ॥१॥

भैरवजी बोले—साधकों की हित - कामना से मैं दीक्षा-विधि कहूँगा । नियमानुकूल दीक्षा को प्राप्त कर मानव पशुता से विमुक्त हो जाता है ॥१॥

दीयते परमां सिद्धिं, क्षीयते कर्म - वासना ।

आप्यते परमं ध्यानं, तेन दीक्षा स्मृता शिवे ! ॥२॥

हे शिवे ! अनुपम सिद्धि देती है, कर्मों की लालसा क्षीण करती है और श्रेष्ठ ध्यानावस्था प्राप्त कराती है । इसी से 'दीक्षा' कहते हैं ॥२॥

दीक्षा के बिना लाखों मन्त्र जपते रहने पर भी सिद्धि नहीं मिलती और इसके बिना वैराग्य होने पर भी सांसारिक लालसा से, जो कर्म-बन्धन का मूल है, छुटकारा नहीं मिलता । फलतः श्रेष्ठ ध्यानावस्था नहीं मिल पाती । श्रेष्ठ ध्यान कहते हैं अपने हृदय में परमात्मा का सतत चिन्तन, जो सद्-गुरु के उपदेश बिना असम्भव है । कहा भी है—'बिन गुरु मिले न ज्ञान ।' ज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञान—'मैं क्या हूँ'—इस विषय को जान लेना ही वास्तविक ज्ञान है । पुस्तकों से यह ज्ञान नहीं मिलता । गुरु-मुख से दीक्षा पाकर ही ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

ब्रह्मादि - कीट - पर्यन्तं, जगत् सर्वं महेश्वरि !

पशुत्व-मोहितं देवि ! तस्माद् दीक्षां चरेत् कलौ ॥३॥

हे महेश्वरि ! ब्रह्मा से लेकर कीट-पर्यन्त चराचर सारा जगत् पशुता की भावनाओं में मुग्ध रहता है । इसलिए कलि-युग में दीक्षा लेनी चाहिए ॥३॥

श्रीदेवी - सेवया देवि ! चक्रार्चन - पुरस्सरम् ।

साधकः पशु - भावेन, मुक्तो ज्ञानं भजेत् ततः ॥४॥

हे देवि ! साधक अर्थात् दीक्षित व्यक्ति चक्र-पूजा-पूर्वक देवी की आराधना से युक्त होकर पशु-भाव से मुक्त हो । तभी वह ज्ञान-लाभ करने में समर्थ होता है ॥४॥

देवी के यन्त्रात्मक स्वरूप की आराधना से ही ज्ञान-लाभ होता है ।
यहाँ ज्ञान का अर्थ है 'आत्म-ज्ञान' और यह ज्ञान बिना यन्त्रार्चन के
मिलता नहीं ।

दीक्षितो याति चरणं, दीक्षा-हीनो भवेत् पशुः ।

दीक्षितस्तु लभेद् ज्ञानं, पशु - भावोज्जितो विधुः ॥५॥

जिसे दीक्षा मिल गई है, वह देवी के परम पद को प्राप्त होता
है । दीक्षा-हीन व्यक्ति पशु-समान है । दीक्षित व्यक्ति ही ज्ञान को
प्राप्त कर पाता है । वह पशु-भाव से मुक्त होकर चन्द्रमा के समान
प्रकाश-स्वरूप हो जाता है ॥५॥

सर्व - पातक - मुक्तो हि, लभेत् सः परमां गतिम् ।

यस्य दीक्षा शिवे ! नास्ति, जीवनान्तं च जन्मनाम् ॥६॥

हे शिवे ! दीक्षा पानेवाला सभी पापों से छुटकारा पाकर परम
पद अर्थात् देवी-पद को पाता है और जिसे दीक्षा नहीं है, उसका
जन्म निरर्थक है या यों भी कह सकते हैं कि उसके जीवन में ही मृत्यु
का सञ्चार है ॥६॥

दीक्षा-हीन मनुष्य जिस स्थान पर पैर रखता है, वह स्थान ही
अपवित्र हो जाता है । अतः दीक्षा-रहित मानव जीवित होते हुए भी
मृतक-समान होता है ।

स यातु नोत्तरेद् देवि ! निरयाम्बु-निधेः क्वचित् ।

दीक्षा - हीनस्य देवेशि ! पशोः कुत्सित - जन्मनः ॥७॥

पापोऽधोऽन्तिकमायाति, पुण्यं दूरं पलायते ।

तस्माद् यत्नेन दीक्षेष्वा, ग्राह्या कृतिभिरुत्तमा ॥८॥

दीक्षा-हीन मनुष्य नरक-समुद्र में जाता है और उससे कभी पार
नहीं हो पाता । दीक्षा-हीन मनुष्य का जीवन पशु-जीवन है ।
पाप-पुञ्ज उसके समीप आते हैं, पुण्य दूर भागते रहते हैं । अतः यत्न
से कर्म-शील पुरुषों को यह उत्तम दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए ॥७-८॥

बाल्ये वा यौवने वापि, वार्धक्येऽपि सुरेश्वरि !

अन्यथा निरयं याति, द्वा-त्रिंशद्-वत्सरं नयेत् ॥९॥

हे सुरेश्वरि ! बाल्यावस्था में, युवावस्था में या वृद्धावस्था में भी
दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए । यदि न ग्रहण करे, तो नरक में जाता है
और उस नरक में ३२ वर्षों तक रहना पड़ता है ॥९॥

अन्ते पशु - मनुष्योऽसौ, सर्प-योनिं व्रजेच्छिवे !

पूर्व - पुण्याजितां प्राप्य, वासनां परमार्थदाम् ॥१०

कुलीनं तं च तन्त्रज्ञं, सर्वाङ्गैः सु - मनोहरम् ।

लब्ध्वा भक्त्या प्रणम्यादौ, तोषयित्वा विशेषतः ॥११

प्रणामैर्वन्दनैर्देवि ! दक्षिणाम्बर - पूर्वकम्,

सिद्धासाधारि - निर्णीतां, दीक्षां देव्या यथा-विधि ।

गृह्णीयात् परया भक्त्या, साधको येन जायते ॥१२

हे शिवे ! अन्त में वह नर-पशु सर्प-योनि को प्राप्त होता है ।

पुनः पूर्व-जन्माजित परमार्थ-दायिनी लालसा को पाकर सत्कुलोत्पन्न, सभी अङ्गों से मनोहर, तन्त्र-शास्त्र के ज्ञाता गुरु को पाकर, पहले उन्हें प्रणाम, वन्दना, वस्त्र, दक्षिणा आदि द्वारा विशेष रूप से प्रसन्न करके, सिद्ध, साध्य, अस्ति-क्रम से शुद्ध देवी-मन्त्र की दीक्षा को विधि-वत् ग्रहण करे, जिससे वह साधक बन जाय ॥१०-१२॥

‘साधक’ उसे कहते हैं, जो मन्त्रार्थ का ज्ञाता हो और जो मन्त्र-सिद्धि पाने के लिए यत्नवान हो ।

गुरुश्च शिष्य-रम्याङ्गं, सर्वाङ्गैः सु - मनोहरम् ।

गुरु-भक्ति-रतं बालं, कुलीनं गर्भ - दीक्षितम् ॥१३

देवी - भक्ति - रतं भक्तं, पाप-भीतं कृतात्मकम् ।

दृष्ट्वा दीक्षां परां दद्यात्, कृत-भागी भवेत् ततः ॥१४

गुरु भी सम्पूर्ण-अङ्गों से रमणीय, सभी अवयवों से मनोहर, गुरु-भक्ति में लीन, अन्य शास्त्रों के भी ज्ञाता, परन्तु मन्त्र - शास्त्र से अनभिज्ञ अर्थात् तन्त्र के लिए बालक, उत्तम कुलोत्पन्न, जिसकी दीक्षा वंश-परम्परागत है तथा पापों से डरनेवाले, उपकारों को न भूलने-वाले शिष्य को जानकर उत्तम दीक्षा प्रदान करें, जिससे वे भी पुण्य-लाभ के अधिकारी बनें ॥१३-१४॥

स्पष्ट है कि दीक्षा उत्तम व्यक्ति को ही देने से आचार्य पुण्याधिकारी होते हैं ।

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

भगवन्, करुणाम्भोधे ! साधकानां हितेच्छया ।

कदा दीक्षा परा ग्राह्या, साधकेन वदस्व मे ॥१५

देवी जी बोलों—हे दया-सागर ! यह उत्तम दीक्षा किस समय में ग्रहण करनी चाहिए, साधकों के हितार्थ आप मुझे बताएँ ॥१५

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

सु - दिने शुभ - नक्षत्रे, संक्रान्तावयने द्वये ।
 नवरात्र - दिने पितृयोः, श्राद्धे स्व - जनि-वासरे ॥१६॥
 नव - वर्ष - दिने देवि ! चन्द्र - सूर्योपरागके ।

शिव-रात्र्यां स्व-जन्मर्क्षे, दीक्षां दद्याद् विचक्षणः ॥१७॥

हे देवि ! अच्छे दिन, शुभ नक्षत्र, संक्रान्ति, उत्तरायण और दक्षिणायन में, शारदीय या वासन्तिक नवरात्रि में, माता या पिता के श्राद्ध-दिवस में, अपने जन्म-दिवस में, वर्ष के प्रारम्भिक दिन में, चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण-काल में, शिव-रात्रि में अथवा अपने जन्म-नक्षत्र में दीक्षा प्रदान करे ॥१६-१७॥

तत्रादौ शुभ - नक्षत्रे, स्नात्वा सस्पृज्य भैरवम् ।
 गत्वा नदी - तटं देवि ! तथा देवालयं क्वचित् ॥१८॥
 देवताग्नि - गुरुं नत्वा, मनः सन्तोष - हेतवे ।
 द्वीपं वा परमं पुण्यं, देवानामपि दुर्लभम् ॥१९॥
 देवता - पत्तनं वापि, प्राप्त्वा सुप्रणमेत् ततः ।

तत्रादावासनं देवि ! संशोध्य गुरुमर्चयेत् ॥२०॥
 हे देवि ! सर्व-प्रथम शुभ नक्षत्र में स्नान कर, भैरव की पूजा कर, नदी-तट या किसी देवालय में जाकर देवता, अग्नि और गुरु को मानसिक सन्तुष्टि के लिए प्रणाम कर अथवा देवताओं के लिए भी दुर्लभ परम पवित्र द्वीप या देव-नगरी (जैसे काशी, प्रयाग, पुरी, अयोध्या आदि) को प्राप्त कर, भक्ति-भाव से उसे प्रणाम करे । वहाँ हे देवि ! सबसे पहले आसन को शुद्ध करे, तब गुरु की पूजा करे ॥१८-२०॥

भूतान् निस्तार्य देवेशि ! साङ्गं न्यासं चरेत् ततः ।
 प्राङ् - मुखो गुरुमासीनमुत्तराभिमुखं शिशुम् ॥२१॥
 संस्थाप्य विधि-वद् देवि ! देवीं स्मृत्वा परा-मयः ।
 देवताग्रे परा - प्रीत्यै, दीक्षां दद्याद् यथा-विधि ॥२२॥

हे देवेशि ! भूतोत्सारण कर, ऋष्यादि-स्मरण-पूर्वक न्यास करे । गुरु पूर्वाभिमुख बैठें और शिष्य को उत्तराभिमुख बैठायें । विधि-वत् देवी की स्थापना कर देवी को स्मरण कर और अपने को देवी-मय जानकर देवता के आगे परा-देवी की प्रसन्नता के लिए यथा - विधि दीक्षा प्रदान करे ॥२१-२२॥

कर्ण - मूले महा - विद्यां, श्रीविद्या - साधकेश्वरः ।

आनन्दासक्त - हृदयः, शनैस्त्रिस्त्रिः समर्पयेत् ॥२३

गणेशस्य च गायत्र्यास्ततो मृत्युञ्जयस्य च ।

इष्ट-देव्याः शिवस्यापि, ततो विद्यां समर्पयेत् ॥२४

श्रीविद्या का श्रेष्ठ साधक आनन्द-पूर्ण हृदय से शिष्य के कर्ण-मूल में गणेश, गायत्री और मृत्युञ्जय, तब इष्ट-देवी और उनके शिव का मन्त्र तीन-तीन बार सुनाए ॥२३-२४॥

तोषयित्वा प्रणामैश्च, दक्षिणाभिः शुभाम्बरैः ।

तदाज्ञां शिरसाऽऽदाय, जपाय परमेश्वरि ! ॥२५

हे परमेश्वरि ! उत्तम वस्त्र, दक्षिणा और प्रणाम के द्वारा गुरु को प्रसन्न करे और मन्त्र-जप के लिए उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करे ॥२५॥

इति दीक्षा-विधेः सार-भूतो गुह्यो महेश्वरि !

पटलः साधकैर्या तु, न प्रकाश्यो कदाचन ॥२६

हे महेश्वरि ! यह 'पटल' दीक्षा-विधि का सार और अत्यन्त गुप्त है । साधकों द्वारा इसे कभी प्रकट नहीं करना चाहिए ॥२६॥

॥ श्रीभुवनेश्वरी - रहस्ये दीक्षा-विधिः द्वादशः पटलः ॥



तयोदशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

अथ देवि ! प्रवक्ष्यामि, पुरश्चरणमुत्तमम् ।

यस्य साधन-मात्रेण, मन्त्रः कल्प - समो भवेत् ॥१॥

भैरव जी बोले—हे देवि ! अब उत्तम पुरश्चरण-विधि बताऊँगा, जिसके साधन-मात्र से मन्त्र कल्प-वृक्ष के समान हो जाता है ॥१॥

तत्रादौ सुदिने देवि ! सुनक्षत्रे सु-पर्वणि ।

पुरश्चरण - कर्मादावारभेत् साधकोत्तमः ॥२॥

हे देवि ! उत्तम साधक पहले किसी उत्तम दिन, शुभ नक्षत्र या किसी पर्व-समय में 'पुरश्चरण'-कर्म आरम्भ करे ॥२॥

वर्ण-लक्षं जपेन् मन्त्रं, तद्वर्द्धं वा सुरेश्वरि !

एक-लक्षार्वाधि कुर्यान्नातो न्यूनं कदाचन ॥३॥

हे सुरेश्वरि ! मन्त्र के जितने वर्ण हों, उतने ही लक्ष उस मन्त्र का जप करना चाहिए । अथवा उसका आधा जप करे । जप की अवधि एक लक्ष है, उससे कम जप कभी न करे ॥३॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

लक्ष-जप्तो मनुर्देव ! यदि कल्प-द्रुमो भवेत् ।

तदा किं साधको लोके, लभेत् तत्त्वं वदस्व मे ॥४॥

कस्य हस्तेन मन्त्रस्य, पुरश्चरणक - क्रियाम् ।

कारयेत् साधकश्चैतत्, संशयं छिन्धि धूर्जटे ! ॥५॥

देवी जी बोलीं—हे देव ! लक्ष-जप से यदि मन्त्र कल्पद्रुम के समान होता है, तो साधक संसार में किस तत्त्व का लाभ पाता है, यह मुझे बताइए । हे धूर्जटे ! साधक इस मन्त्र की पुरश्चरण-क्रिया किसके हाथ से सम्पन्न कराए ? इस संशय को दूर करें ॥४-५॥

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

साधु पृष्ठं त्वया देवि ! शृणु वक्ष्यामि पार्वति !

न कदाचित् स्वयं कुर्यादादौ मन्त्र-पुरस्क्रियाम् ॥६॥

गुरु - हस्तेन देवेशि ! साधकस्य करेण वा ।

कुर्यान्मन्त्र-वरस्यास्य, पुरश्चरणक - क्रियाम् ॥७॥

भैरव जी बोले—हे पार्वति ! तुमने अच्छा पूछा । सुनो, बताता हूँ । मन्त्र की पुरश्चरण-क्रिया पहले कभी अपने हाथ से न करनी चाहिए । गुरु द्वारा या किसी साधक द्वारा इस श्रेष्ठ मन्त्र की पुरश्चरण-क्रिया सम्पन्न करानी चाहिए ॥६-७॥

सर्वोत्तम यह है कि दीक्षा प्रदान करनेवाले अपने गुरुदेव से ही इस मन्त्र का पुरश्चरण करावे । किसी कारण - वश उनके अस्वीकार करने पर ही किसी अन्य साधक से कराना चाहिए ।

जीव - हीनो यथा देही, सर्व - कर्मसु न क्षमः ।

पुरश्चरण-हीनो हि, न मन्त्रः सिद्धि-दायकः ॥८

जिस प्रकार जीव-हीन शरीर किसी कार्य को करने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार पुरश्चरण-हीन मन्त्र सिद्धि-प्रद नहीं होता ॥८॥

जपाद् दशांशं होम स्यात्, तद्-दशांशं हि तर्पणम् ।

मार्जनं तद् - दशांशेन, तद् - दशांशेन भोजनम् ॥९

जप का दशांश होम अर्थात् १ लाख मन्त्र जपे, तो १० हजार मन्त्रों से हवन करे और उसका दशांश तर्पण अर्थात् १ हजार मन्त्रों से तर्पण करे तथा उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन अर्थात् १०० ब्राह्मणों को भोजन कराए ॥९॥

मन्त्रस्यादौ प्रमादाच्चेत्, स्वयं कुर्यात् पुरस्कृत्याम् ।

तदा जाप्यं भवेद् व्यर्थं, क्षेत्रेण्विव घृतं यथा ॥१०

यदि असावधानी से मन्त्र का पुरश्चरण पहले स्वयं करे, तो जप जमीन में गिरे हुए घृत जैसा व्यर्थ होता है ॥१०॥

तस्माच्च गुरु-हस्तेन, साधकस्य करेण वा ।

पुरश्चर्या स्व-मन्त्रस्य, कारयेत् साधकोत्तमः ॥११

अतएव अपने मन्त्र का पुरश्चरण गुरु द्वारा या किसी साधक से कराना चाहिए ॥११॥

पुरश्चरण - सङ्कल्पं, दत्वाऽऽदौ गुरवे शिवे !

यथा-विधि जपं कुर्याद्, गुरोः कुल-मनं प्रिये ! ॥१२

हे शिवे ! पहले गुरु के लिए पुरश्चरण-सङ्कल्प देकर गुरु - प्रदत्त मन्त्र को विधि-पूर्वक जपना चाहिए ॥१२॥

गुरोः पाद - प्रसादेन, पुरश्चर्या - फलं शिवे !

गृह्णीयात् साधको देवि ! गुरुं सन्तोषयेत् ततः ॥१३

दक्षिणाभिः शुभैः वस्त्रैर्यथा - विभवमात्मनः ।

ततः स्वयं पुरश्चर्यां, बह्वीं कुर्यात् तु साधकः ॥१४॥

येन मन्त्रः कलौ शीघ्रमष्ट-सिद्धि-प्रदो भवेत् ॥१५॥

हे शिवे ! गुरुदेव की कृपा से साधक पुरश्चरण के फल को ग्रहण करे । तब गुरु को उत्तम वस्त्रों से और अपने सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा देकर प्रसन्न करे । तदनन्तर साधक अनेक पुरश्चरणों को करे, जिससे इस कलि-काल में भी मन्त्र अणिमा आदि अष्ट-सिद्धियों को शीघ्र देनेवाला होता है ॥१३-१५॥

‘विभव’-शब्द का तात्पर्य यह है कि वित्त - शाठ्य (कजूसी) का आचरण न करे—अर्थात् यदि सम्पत्ति विशेष देने में समर्थ हो, तो कम न दे और शिष्य की अवस्था यदि सामान्य देने योग्य हो, तो अधिक दक्षिणा न दे । इसे ही कहते हैं—‘यथा-विभव’ ।

पर्वताग्रे नदी - तीरे, देवतायतने तथा ।

एकान्ते च शुचौ देशे, जपेन्नियत - मानसः ॥१६॥

ब्रह्मचर्य - धरो वीरो, मिताहारो जितेन्द्रियः ।

अनृतं मत्सरं दम्भं, त्यजेत् प्रतिग्रहं तथा ॥१७॥

चारु - मूल - फलं क्षीरं, दधिमिष्टान्न-सक्तवः ।

शाकं चाष्ट-विधं चान्नं, साधकस्योच्यते बुधैः ॥१८॥

पर्वत के अग्र-भाग में, नदी के तट में, अथवा किसी देवालय में, एकान्त में, पवित्र देश में, मन को स्थिर कर, ब्रह्मचर्य-पूर्वक, नियम के अनुसार भोजन करते हुए, अपनी इन्द्रियों पर अधिकार कर और वीर-व्रती होकर मन्त्र का जप करे । (‘मिताहार’ अर्थात् समान मात्रा और ठीक समय पर भोजन करना) ।

अब साधक अर्थात् मन्त्र जप करनेवाले के लिए नियम बताते हैं, यथा—

१. ‘अनृतं’ का अर्थ होता है सत्य भाषण । सत्य भाषण वही कर सकता है, जो मित-भाषी होता है अर्थात् अल्प भाषण करने से ही सत्य-भाषण करना सम्भव होता है । बहु-भाषी सत्य - भाषण कर ही नहीं सकता ।

२. 'मत्सर' अर्थात् दूसरों से द्वेष करना। जैसे कोई किसी के विभव या सौन्दर्य अथवा स्वास्थ्य को देखकर जलता है। भावार्थ यह है कि किसी की उन्नति देखकर भीतर-ही-भीतर जलना 'मत्सर' कहलाता है।

३. 'दम्भ' अर्थात् अहङ्कार।

४. 'प्रतिग्रह' अर्थात् दान। धर्म और नीति-शास्त्र का मत है कि 'दान' से दुर्गति का नाश होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिसे दान दिया जाता है, उसका पुण्य क्षीण होता है और दान देनेवाले का कल्याण होता है।

पुरुश्चरण-कर्त्ता को सत्य - भाषी होना चाहिए और 'मत्सर', 'दम्भ' तथा 'प्रतिग्रह' का त्याग करना चाहिए। उसे उत्तम फल-मूल, दूध, दही, मिठाई, सत्तू, शाक (भाजी) और आठ प्रकार के अन्न ग्रहण करने चाहिए, जो साधकों के लिए बुद्धिमानों ने बताया है ॥१६-१८॥

तदप्रशस्तं नात्युष्णं, न चोच्छिष्टं न चाधिकम्।

मृदुकोष्णं सु-पक्वं च, कुर्याद् वै लघु - भोजनम् ॥१६॥

विपरीत प्रभाववाले खाद्य पदार्थ साधकों के लिए प्रशस्त नहीं हैं। 'अति उष्ण' से केवल स्पर्श में ही उष्णता न समझनी चाहिए, अपितु जितने भी उष्ण-वीर्य खाद्य हैं, वे सब साधकों के लिए त्याज्य हैं। उच्छिष्ट (जूठा) भोजन भी साधक त्याग करे तथा साधक अधिक भोजन भी न करे। कोमल, किञ्चित् उष्ण, अच्छी तरह पका हुआ और हल्का भोजन ही करना चाहिए ॥१६॥

'श्रीमद्-भगवद्-गीता' १७/८ में बताया है कि—

आयुः- सत्त्व - बलारोग्य - सुख - प्रीति - विवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या, आहाराः सात्विक-प्रियाः ॥

अर्थात् सात्विक साधक को प्रिय आहार वह है, जो जीवनी-शक्ति को प्रोत्साहन देता हुआ आयु को पुष्ट करे और जिससे शरीर में बल उत्पन्न हो। बल का अर्थ है आत्म-बल। बल - कारक दो प्रकार के खाद्य हैं—१ उष्ण-वीर्य, जिससे काम-बल या तामसी शक्ति परिपुष्ट होती है। २ शीत-वीर्य, जिसके खाते ही चित्त प्रसन्न हो जाय उस।

प्रसन्नता से आत्म-बल स्वतः उन्नत होता है। इनमें द्वितीय बल ही इष्ट है। फिर जिस भोजन से शरीर स्वस्थ रहे। जिस पदार्थ के भोजन करने से भजन या जप-पूजा आदि में विशेष प्रेम हो, जिसमें रस हो। 'रस' का अर्थ आनन्द भी है, परन्तु यहाँ अर्थ यही है कि जिसके खाने से शरीर में रस का सञ्चार हो सके। सरसता से ही मधुर-भाषिता आती है, जो नम्रता का प्रथम सोपान है।

स्निग्ध—स्निग्ध भोजन उसे कहते हैं, जिससे शरीर में स्नेह अर्थात् तरल-रस का सञ्चरण हो।

स्थिर—जो भोजन उदरस्थ होकर अपने पाक-स्थल में नियमित समय तक भोजन से उत्पन्न होनेवाली तृप्ति को प्रदान करे तथा जिससे उदर की क्रिया स्थिर रहे।

हृद्य—जो मन-पसन्द हो।

उक्त प्रकार का भोजन साधना अर्थात् पुरुश्चरण में सहायक होता है।

नेन्द्रियाणां विकारः स्यात्, तथा भुञ्जीत-साधकः ॥२०॥

साधक उस प्रकार का भोजन करे, जिससे इन्द्रियों में विकार न उत्पन्न हो ॥२०॥

यद्वा तद्वा परित्याज्यं, दुष्टान्नं कुत्सितं फलम्।

प्रशस्तान्नं समश्नीयान्, मन्त्र - सिद्धि - समीहया ॥२१॥

साधक जैसा-तैसा भोजन न करे और दूषित अन्न तथा अहित-कर फलों को त्याग कर मन्त्र - सिद्धि की कामना से प्रशस्तान्न भोजन करे।

तपो - व्रतस्य सिद्धिः स्याल्लक्ष्णेनैव न संशयः।

शाक - भक्ष्यो हविष्याशी, कलौ लक्ष - त्रयं जपेत् ॥२२॥

तपश्चर्या और व्रत करनेवाले की सिद्धि तो लक्ष मन्त्र जपने से ही हो जाती है, परन्तु शाक तथा हविष्य भोजन करनेवाले को कलियुग में तीन लाख मन्त्र जप करना चाहिए ॥२२॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च, भिक्षास्र - जीविनौ मतौ।

सर्व - धर्म - बहिर्भूतो, गृही भिक्षास्र-जीवनात् ॥२३॥

यति और ब्रह्मचारी—ये दोनों भिक्षा के अन्न से जीवन-धारण करने के अधिकारी हैं। यदि गृहस्थाश्रमी भिक्षा के अन्न से जीवन-धारण करे, तो वह आर्य-प्रचलित जितने धर्म हैं, उन सबसे बाहर हो जाता है ॥२३॥

लवणं पललं चैव, क्षारं क्षौद्रं रसान्तरम् ।

माष - मुद्ग - मसूरादि, कोद्रकान् चणकानपि ॥२४

साधक नमक, मांस, खारे पदार्थ, मधु और मीठे-खट्टे आदि रस-पाक, उड़द, मूंग, मसूर, कोदो और चना को भी छोड़ दे ॥२४

असम्भाषणमन्यायं, वर्जयेदन्य - पूजनम् ।

बिना श्रमोचितं नित्यमथ नैमित्तिकं च यत् ॥२५

स्त्री-शूद्र-पतित - ब्रात्य-नास्तिकोच्छिष्ट-भाषणम् ।

असत्य - भाषणं चैव, कौटिल्यं च परित्यजेत् ॥२६

असंगत बातें न करे, अन्याय न करे और दूसरों का पूजन भी न करे तथा नित्य, नैमित्तिक कर्म अनायास करने की कामना न करे, अर्थात् नित्य या नैमित्तिक कर्म करने में परिश्रम समझ कर उनका परित्याग न करे। स्त्री, शूद्र, पतित (जिसे कोई पाप-जनित प्रायश्चित्त करना अनिवार्य हो, परन्तु उसने न किया हो) और ब्रात्य (वह ब्राह्मण, जो सोलह वर्ष तक, वह क्षत्रिय, जो २२ वर्ष तक और वह वैश्य जो २४ वर्ष तक यज्ञोपवीत के बिना रहा हो) तथा नास्तिक (जिसे ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास न हो) से बात न करे। उच्छिष्ट-भोजन न करे। असत्य भाषण न करे और कुटिलता का परित्याग करे ॥२५-२६॥

सद्भिरपि न भाषेत, जप - होमार्चनादिषु ।

वाग् - यतः कर्म निर्वर्त्य, निःस्पृहस्य वनादिषु ॥२७

वर्जयेद् गीत - काव्यादिः, श्रवणेऽनृत - दर्शनम् ।

ताम्बूल - गन्ध - लेपं च, पुष्प - धारणमेव च ॥२८॥

जप, होम तथा पूजन के समय सज्जनों से भी बातें न करे, मौना-वलम्बन-पूर्वक पूजनादि कर्म को समाप्त कर वन आदि अर्थात् वाग-वगीचों में सैर-सपाटा करने की भी कामना न करे और गीत-भजन आदि साहित्यिक सरस काव्यों को न सुने तथा जिसके देखने से मान-

सिक विकार उत्पन्न हो उसे न देखे । पान खाना, सुगन्ध लगाना और फूल की माला या फूल धारण करना छोड़ दे ॥२७-२८॥

मैथुनं तत्-कथाऽऽलापं, तद्-गोष्ठीं परि-वर्जयेत् ।

कौटिल्यं क्षौद्रमभ्यङ्गमनिवेदित - भोजनम् ॥२९

असङ्कल्पित - कृत्यं च, वर्जयेन्मर्दनादिकम् ।

स्नायाच्च पञ्च - गव्येन, केवलामलकेन च ॥३०

मैथुन अर्थात् स्त्री-सहवास, तत्सम्बन्धी बातें और यह कर्म करने-वालों की मण्डली को भी छोड़ दे । कुटिलता न करे, मधु न खाए, तेल न लगाए, बिना बुलाए भोजन न करे । बिना विचारे कर्म न करे, बदन में मालिश न कराए । पञ्च-गव्य से या केवल आँवले से स्नान करे ॥२९-३०॥

श्रुति-स्मृत्यागमोत्कैश्च, मन्त्रैः स्नायादनन्तरम् ।

स्नानं त्रिषुवणं प्रोक्तमशक्तौ द्विः-सकृत् तथा ॥३१

अस्नातस्य फलं नास्ति, न वाऽतर्पयतः पितॄन् ।

पुरश्चरण - काले तु, तद्धोमावरणे तथा ॥३२

इसके बाद वेद, स्मृति, तन्त्रोक्त मन्त्रों से स्नान करे । स्नान प्रातः, मध्याह्न और सायं-काल तीन बार करना चाहिए । यदि असमर्थ हो, तो प्रातः तथा सायं दो बार और इसमें भी असमर्थ हो, तो प्रातःकाल एक बार अवश्य स्नान करे, क्योंकि पुरश्चरण-काल में, होम-कालीन पूजा के समय और आवरण-पूजन में जो स्नान और पितृ-तर्पण नहीं करता, वह कोई फल नहीं पाता ॥३१-३२

मूलं जप्त्वैक - लक्षं तु, कृत्वा होमं दशांशतः ।

साधकैः क्षत्रियेणापि, दशांशं होममाचरेत् ॥३३

मूल-मन्त्र का एक लक्ष जप कर, दशांश हवन करे । क्षत्रिय साधक भी दशांश ही हवन करे ॥३३॥

तर्पयेत् सहितां देवीं, भोजयेत् साधकांस्ततः ।

पुरश्चर्या - विधिश्चैष, वर्णितः कुल-सुन्दरि ॥३४

हे कुल-सुन्दरि ! सपरिवार देवी का तर्पण कर तब साधकों को भोजन कराए । यह पुरश्चरण-विधि मैंने बतला दी ॥३४॥

अथवाऽन्य - प्रकारेण, पुरश्चरणमिष्यते ।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां, पक्षयोरुभयोरपि ॥३५

सूर्योदयात् समारभ्य, यावत् सूर्यास्तयो भवेत् ।

तावज्जप्त्वा निरातङ्को, मन्त्रः कल्पद्रुमो भवेत् ॥३६

अथवा पुरश्चरण के दूसरे प्रकार भी हैं । यथा—दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी को सूर्योदय से सूर्यास्त-पर्यन्त निर्भीक भाव से यदि मन्त्र जपे, तो वह कल्पद्रुम के समान सभी कामनाओं को पूर्ण करता है ॥३५-३६

चन्द्र-सूर्य - ग्रहे वापि, ग्रासावधि - विमुक्तिः ।

यावत्-संख्यो मनुजंप्त्वा, तावद्धोमादिकं चरेत् ॥३७

चन्द्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण में ग्रास के समय से लेकर मोक्ष-काल तक मन्त्र का जितना जप करे, उतना ही होम करे ॥३७

सर्व-सिद्धीश्वरो मन्त्रो, भवेत् साधक-वन्दिते !

शरत्-काले रवौ देवि ! जपेन्मन्त्रं यथा-विधि ॥३८

हे साधक-प्रणते ! शरत्-काल में रविवार के दिन विधि-पूर्वक मन्त्र को जपने से वह सम्पूर्ण सिद्धियों का प्रदाता होता है ॥३८

निशीथे रचयेद्धोमं, क्षत्र - न्यस्ताहुतिं शिवे !

तत्-क्षणात् साधको देवि ! क्षत्रियोऽपि शुभं लभेत् ॥३९

हे शिवे ! मध्य-रात्रि में क्षत्रिय होम की रचना करे और क्षत्रिय ही आहुति दे, तो हे देवि ! वह क्षत्रिय भी तत्क्षण कल्याण प्राप्त करता है ॥३९

अथवाऽन्य - प्रकारेण, पुरश्चरणमिष्यते ।

गुरुमानीय संस्थाप्य, देवता - पूजनं चरेत् ॥४०

अथवा दूसरे प्रकार से पुरश्चरण कर सकते हैं । यथा—गुरु को लाकर, उन्हें बैठाकर, देवता-पूजन करे ॥४०

वस्त्रालङ्कार - हेमाद्यैः, सन्तोष्य गुरुमेव च,

तत्-सुतं तत्-सुतांश्चैव, तस्य पत्नीं तथैव च ।

पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥४१

वस्त्र, अलङ्कार और सुवर्ण आदि से गुरु, उनके पुत्र और पुत्रियों तथा पत्नी को सन्तुष्ट कर मन्त्र जप कर मानव सम्पूर्ण सिद्धियों का स्वामी होता है ॥४१

अथवाऽन्य - प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते,

सहस्रारे गुरोः पाद-यद्मं ध्यात्वा प्रपूज्य च ।

केवलं देव - भावेन सर्वं - सिद्धीश्वरो भवेत् ॥४२

अथवा पुरश्चरण के अन्य प्रकार हैं । यथा—सहस्रार-चक्र में देवता-भाव से गुरु का ध्यान कर मानसिक उपचारों से उनका पूजन करे, तो साधक सभी सिद्धियों का अधिकारी होता है ॥४२

गुरवे दक्षिणां दद्यात्, यथा - विभवमात्मनः ।

गुरोरनुज्ञा - मात्रेण, दुष्ट-मन्त्रोऽपि सिध्यति ॥४३

जप-श्रान्तस्तु तां ध्यायेद्, ध्यान-श्रान्तस्तु तं जपेत् ।

जप-ध्यान-समायुक्तो, मन्त्री सिध्यति नान्यथा ॥४४

अपनी सम्पत्ति के अनुसार गुरुदेव को दक्षिणा दे । गुरु की आज्ञा पाते ही दुष्ट मन्त्र (अर्थात् जो मन्त्र दूषित हो) भी सिद्ध हो जाता है । जप से यदि श्रान्त हो गया हो, तो भगवती का ध्यान करे और ध्यान से श्रान्त होने पर मन्त्र का जप करे । इस प्रकार जप और ध्यान में निरन्तर लगा हुआ साधक सिद्धि को प्राप्त करता है । अन्यथा साधक को सिद्धि नहीं मिल सकती ॥४३=४४॥

इत्येष पटलो गुह्यो, मन्त्र - सार - मयो ध्रुवम् ।

अप्रकाशोऽप्यदातव्यो, नाख्येयो ब्रह्म-वादिभिः ॥४५

यह पटल गोपनीय है क्योंकि यह मन्त्र-तत्त्व से युक्त है । ब्रह्म को व्याख्या करनेवाले महात्माओं को भी इसकी व्याख्या नहीं करनी चाहिए । यह सब किसी को बताने या देने योग्य नहीं है ॥४५॥

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये पुरश्चरण-विधि-नामकः त्रयोदशः पटलः ॥



चतुर्दशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

अथ होम-विधि वक्ष्ये, सर्व - तन्त्रेषु गोपितम् ।

सारं श्रीभुवनेश्वर्याः, मन्त्र-राजस्य पार्वति ! ॥१॥

भैरव जी बोले—हे पार्वति ! अब सभी तन्त्रों में गुप्त, श्रीभुवनेश्वरी मन्त्र-राज के सर्वस्व, होम-विधि को बताऊँगा ॥१॥

ध्यात्वा देवि ! परां देवीं, गुरुं ध्यात्वा स-शक्तिकं ।

जपेच्छ्री - चक्र - पुरतो, निशोथे मन्त्रमीश्वरि !

अयुतं चैक - लक्षं वा, दशांशं होममाचरेत् ॥२॥

हे देवि ! परदेवी अर्थात् भुवनेश्वरी और सपत्नीक गुरु का ध्यान कर श्री यन्त्र के आगे मध्य रात्रि में दश हजार या एक लाख अपने इष्ट-मन्त्र को जपे और दशांश हवन करे ॥२॥

कोटि - लक्षं प्रजप्तस्य, मन्त्रस्य सुर - सुन्दरि !

बिना दशांश - होमेन, न तत्-फलमाप्नुयात् ॥३॥

हे सुर-सुन्दरि ! मन्त्र का करोड़ लाख जप करनेवाला भी दशांश हवन किए बिना जप का फल नहीं प्राप्त करता है ॥३॥

बिना श्मशान-गमनं, नित्य - होम - जपादयः ।

न सिध्यति वरारोहे ! कलौ भैरव - शापतः ॥४॥

हे वरारोहे ! बिना श्मशान गए तथा बिना नित्य-होम और जपादि किए कलि-युग में मन्त्र भैरव-शाप के कारण सिद्ध नहीं होते ॥४॥

घृत-पायस-मृद्वीका, गुड - पुष्प - शिता - शरः ।

होमैर्दशांशतः कार्यो, जपस्य सुर - वन्दिते ! ॥५॥

पञ्चामृतेन देवेशि ! तद् - दशांशेन मार्जयेत्,

तर्पयित्वा दशांशेन, पञ्चामृत - मुखं सुधीः ।

भोजयित्वा दशांशेन, दीक्षितांश्च द्विजोत्तमान् ॥६॥

हे देवेशि ! घी, पायस, दाख, गुड-पुष्प, महोवे के फूल, मिश्री से जप का दशांश हवन करे और हवन के दशांश पञ्चामृत से मार्जन तथा पञ्चामृत से ही मार्जन का दशांश तर्पण करे, तर्पण से दशांश दीक्षित उत्तम ब्राह्मणों को भोजन कराए ॥५-६॥

ततो देवि ! पुरश्चर्या - फलमाप्नोति साधकः ।

अन्यथा सिद्धि-हानिः स्याज्जन्तस्यापि मनोः सदा ॥७॥

हे देवि ! तब साधक पुरश्चरण का फल प्राप्त करता है, अन्यथा जप किए हुए मन्त्र की भी सिद्धि नष्ट हो जाती है ॥७॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

यस्य नैतावता शक्तिः, होमं कर्तुं दशांशतः ।

स कथं क्रियते होमं, तद् वदस्व महेश्वर ! ॥८॥

देवी जी बोलीं—हे महेश्वर ! यदि साधक में पूर्वोक्त दशांश हवन आदि करने की शक्ति न हो, तो वह किस प्रकार हवन करे, यह बताइए ॥८॥

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

यस्य होमं शिवे ! कर्तुं शक्तिर्नास्ति दशांशतः ।

तस्य युक्तिं ब्रवीम्यद्य, कौलिकानां हिताय च ॥९॥

भैरवजी बोले—हे शिवे ! जिसे दशांश हवन करने का सामर्थ्य नहीं है, ऐसे कुलाचारी साधक के कल्याण के लिए मैं आज उपाय बताता हूँ ॥९॥

शुभेऽह्नि सायं देवेशि ! गत्वोपवन - मण्डलम् ।

श्मशानं सुमुखं धृत्वा, पृष्ठे वा परमेश्वरि ! ॥१०॥

श्मशानं प्रणमेद् भक्त्या, साधकः साधकैः समम्—

‘ज्वाला-कराल-वदने, कल्पान्त - दहन - प्रिये !

प्राणे प्राण - लयोद्भूते, चित्ते मेऽनुग्रहं कुरु’ ॥११॥

इति नत्वा महा-देवि ! ज्ञात्वा दिग्-भूत-भैरवान् ।

निवसेत् तत्र रात्रौ तु, कुर्याद् होमं कुलेश्वरि ! ॥१२॥

हे देवेशि ! शुभ दिन, सायं-काल में, किसी वाग में जाकर, श्मशान की ओर मुख करके अथवा चिता-भूमि की ओर पीठ करके—साधक साधकों के साथ श्मशान-वासिनी भैरवी को निम्न मन्त्र से प्रणाम करे— “ज्वाला-कराल - वदने, कल्पान्त-दहन-प्रिये !

प्राणे, प्राण-लभोद्भूते ! चित्ते मेऽनुग्रहं कुरु ।”

अर्थात् हे ज्वालोपम भयङ्कर-वदने, प्रलय-काल में संसार को भस्म करनेवाले भैरव की प्रिये ! लयोन्मुख प्राण पर तथा मेरे चित्त पर अनुग्रह करो ।

हे महा-देवि ! इस प्रकार प्रणाम कर और दिशाओं के भूत, भैरवों आदि को जानकर हे कुलेश्वरि ! वहाँ निवास करे और रात्रि में हवन करे ॥१०-१२॥

ऐशान्यां दिशि देवेशि ! श्री-चक्रं तु विभावयेत् ।

सम्पूज्य विधिवन्मन्त्रैः, दिक्-पालास्तत्र पार्वति !

गणेशं पूजयेत् तत्र, पूजयेत् कुल - योगिनीन् ॥१३॥

तत्-पूर्वतः खनेत् कुण्डं, हुनेदाज्यं च विद्यया ।

त्रिकोणं कुण्डमोशानि ! हस्ताधोग्गाधमद्विजे !

हस्तैक-विस्तृतं विश्वं, तस्मिश्चक्रं विभावयेत् ॥१४॥

हे देवेशि ! ईशान कोण में श्रीचक्र की भावना करे । वहाँ विधिवत् मन्त्रों से दिक्पाल, गणेश और कुल - योगिनियों का पूजन करे । तब पूर्व-दिशा में कुण्ड खोदे और इष्ट-मन्त्र की आहुति दे । कुण्ड त्रिकोणाकार और एक हाथ गहरा होना चाहिए ॥१३-१४॥

बिन्दु-त्रिकोण - षट्कोणं वसुपत्रं त्रिवर्तुलम् ।

भू-गृहाङ्कं समाख्यातं, वह्नि - चक्रं सुरेश्वरि ! ॥१५॥

कुण्ड एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा हो । उसमें बिन्दु-त्रिकोण-षट्कोण-अष्टदल-कमल, तीन वृत्त और भूपुरात्मक यन्त्र (चक्र) की भावना करे । हे देवेश्वरि ! इसी को अग्नि-चक्र कहते हैं ॥१५॥

गणेश - धर्म - वरुणाः, कुबेर - सहितास्ततः ।

पूजनीयाः विशेषेण, गन्धाक्षत - प्रसूनकैः ॥१६॥

तब कुबेर-सहित गणपति, धर्म-राज और वरुण का विशेषकर गन्ध, अक्षत और पुष्पों से पूजन करे ॥१६॥

ब्राह्म्याद्याः मातरः पूज्याः, असिताद्याश्च भैरवाः ।

वसु-पत्रेषु सम्पूज्या, वह्नि - चक्रं महेश्वरि ! ॥१७॥

ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और चण्डिका—इन आठ माताओं और असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण, संहार—इन आठ भैरवों का पूजन-अग्नि चक्र के आठों दलों में करना चाहिए ॥१७॥

माया च मोहिनी चैव, तृतीया च मनोन्मना ।

मुक्त-केशी च मातङ्गी, मचिराक्षी षडस्रके ॥१८॥

षट्कोण में—माया, मोहिनी, मनोन्मना, मुक्त-केशी, मातङ्गी तथा मचिराक्षी का पूजन करे ॥१८

त्रिकोणे यमुना गङ्गा, सम्पूज्या च सरस्वती ।

बिन्दौ श्रीभुवनेशानी, गन्धाक्षत - प्रसूनकैः ।

विन्द्वावरणिना मध्ये, मूल-मन्त्रेण मान्त्रिकः ॥१९

त्रिकोण में गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती का पूजन करे और विन्दु में भगवती भुवनेश्वरी का आवरण-देवताओं के साथ मूल-मन्त्र द्वारा गन्ध, अक्षत और पुष्पों से पूजन करना चाहिए ॥१९

वह्निमावाह्य मूलेन, तदाऽऽवाहन - मुद्रया ।

‘ॐ ॐ रां अग्नये स्वाहा’, मन्त्रेणेति सुरेश्वरि ! ॥२०

तब हे सुरेश्वरि ! आवाहन-मुद्रा और मूल-मन्त्र से अग्नि का आवाहन करे—‘ॐ ॐ रां अग्नये स्वाहा’ ॥२०

वह्नि मूलेन संस्कृत्य, कृत्वाऽऽज्यं घृतमीश्वरि !

दशांशं होम-सङ्कल्पं, कुर्यान् मूलस्य साधकः ॥२१

हे ईश्वरि ! मूल - मन्त्र से अग्नि और घृत का संस्कार करके साधक जप के दशांश हवन करने का सङ्कल्प करे ॥२१

मालया दहने दद्यादाहुतीनां शत - त्रयम् ।

आहुतिः क्षत्रियैर्यस्ता, तत्र वह्नौ हुनेत् प्रिये ! ॥२२

हे प्रिये ! माला द्वारा गिनते हुए अग्नि में ३०० आहुतियाँ देवे । क्षत्रिय द्वारा स्थापित अग्नि में हवन करना चाहिए ॥२२

पुष्पैः फलेराज्य-मिश्रैः, ततो दद्यात् बलिं प्रिये !

मकारैः पञ्चभिर्देवि ! पुनर्जप्त्वाऽत्र पूर्व - वत् ॥२३

आहुतीनां शतं दद्यात्, चाष्टोत्तरमधो-मुखः ।

ततः साधक - चक्रस्य, क्षत्रियस्य च पार्वति ! ॥२४

पूजां विधाय चक्रेऽस्मिन्, तोषयेन्नतिभिर्गुह्यम् ।

आशीभिर्वर्धयेत् क्षेत्रं, येनाशु क्षोणिपो भवेत् ॥२५

क्षत्रियोऽपि वदेत् तत्र, पुरश्चर्या - फलं मनोः ।

‘लभस्व साधक-श्रेष्ठ !’ ततः पूर्णाहुतिं हुनेत् ॥२६

हे प्रिये ! घृत मिले फूलों और फलों से आहुतियाँ देकर तब पञ्च-मकारों से बलि प्रदान करे । फिर पूर्वोक्त प्रकार से पुनः जप

करके नीचे की ओर मुख करके १०८ आहुतियाँ दे। तदनन्तर साधक-मण्डल और क्षत्रिय (यजमान) का पूजन करे। इस 'चक्र' में पूजन कर क्षत्रिय बारम्बार प्रणाम कर गुरु को प्रसन्न करे और गुरुदेव उस क्षत्रिय को आशीर्वादों से उन्नत करें, जिससे वह शीघ्र ही पृथ्वी-नाथ हो जाय। क्षत्रिय भी पुरश्चर्या का जो फल अपने मन में चाहता हो, उसे बताए। तब गुरुदेव कहें, कि 'हे साधक - प्रवर ! पुरश्चरण का अभीष्ट फल प्राप्त करो।' तदनन्तर पूर्णहुति दे ॥२३-२६

ततो वरं पठेत् देवि ! येन देवी - मयो भवेत् ।

ततो देवीं च स-शिवां, मन्त्री संहार - मुद्रया ॥२७

साधकांस्तर्पयित्वाऽऽदौ, भक्ष्य-पानादिभिः शिवे !

विसृज्य साधकान् देवीं, स-शिवां स-परिच्छदाम् ॥२८

हे देवि ! तब कवच का पाठ करे, जिससे साधक देवी - मय हो जाय। अनन्तर हे शिवे ! साधक खाने-पीने आदि सामग्रियों से साधकों को तृप्त करके, संहार-मुद्रा से शिव-सहिता और सावरणा देवी भुवनेश्वरी को विसर्जित करे— ॥२७-२८

पुरश्चर्या-फलं प्राप्य, साधको मुक्ति-भाग् भवेत् ।

इत्येष पटलो दिव्यो, होम-पूजा - मयो ध्रुवम् ।

सर्व - तत्त्वैक - निलयो, गोपनीयो मुमुक्षुभिः ॥२९

साधक पुरश्चरण के फल को पाकर मुक्ति का अधिकारी होता है। होम और पूजन-प्रधान यह दिव्य पटल सम्पूर्ण तत्त्वों का भण्डार ही है। मोक्ष की कामना करनेवालों को इसे गोपनीय रखना चाहिए ॥२९

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये होम-विधिश्चतुर्दशः पटलः ॥



पंचदशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

अधुना चक्र - पूजान्ते, वक्ष्यामि नग - नन्दिति !

वरदा भविता शीघ्रं, यथा श्रीभुवनेश्वरी ॥१॥

श्री भैरव जी बोले—हे नग-नन्दिति ! अब 'चक्र - पूजा' के बाद की विधि बताता हूँ, जिससे भगवती श्रीभुवनेश्वरी शीघ्र ही वर-दायिनी होती हैं ॥१॥

एकादशाधिका देवि ! साधकाः परमार्थदाः ।

एकादशोऽपि चक्रे तु, वर्णिताः साधकाः शुभा ॥२॥

उत्तमा नव देवेशि ! मध्यमाः पञ्च साधकाः ।

अधमास्तु त्रयो देवि ! न पूज्याश्चक्र-मध्यगाः ॥३॥

बिना चक्रार्चनं नैव, नित्य - पूजा जपादयः ।

फलदा योगिनी-शापात्, तस्माच्चक्रं प्रपूजयेत् ॥४॥

हे देवि ! एकादश से अधिक साधक परमार्थ को देनेवाले होते हैं । 'चक्र-पूजन' में ग्यारह साधक भी शुभ-दायक हैं । हे देवेशि ! नौ साधक उत्तम होते हैं । पाँच साधक मध्यम हैं और तीन साधक अधम, जो 'चक्र' में पूजन के लिए पर्याप्त नहीं हैं । 'चक्र-पूजा' के बिना नित्य-पूजा और जपादि योगिनी के शाप से फल - प्रद नहीं होते । अतएव 'चक्र-पूजन' अवश्य करे ॥२-४॥

कुहू - पूर्णेन्दु - संक्रान्तौ, चतुर्दश्यष्टमीषु च ।

नवम्यां मङ्गले देवि ! चक्र - पूजा शुभ - प्रदा ॥५॥

अमावस, पूर्णमासी, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, नवमी और मङ्गलवार में 'चक्र-पूजा' शुभ-दायक होती है ॥

साधकास्तु स-तीर्थ्याश्च, मिलिता शिव-मन्दिरे ।

देवता - पत्तने वापि, शून्ये शृङ्गाटकेऽथवा ॥६॥

दिग्-भैरवान् विचार्यादौ, ततस्तु पर - साधकः ।

उपविश्यासने देवि ! संशोध्य वीर-मण्डलम् ॥७॥

साधकानुपवेश्याथ, कुर्यात् सङ्कल्पमादरात् ।
न्यासं विधाय सर्वाङ्गे, भूत-शुद्ध्यादिकं चरेत् ॥८८॥
तत्र प्राणान् प्रतिष्ठाप्य, श्रीचक्रं पूजयेच्छिवे !
आत्म-श्री-चक्रयोर्मध्ये, कुम्भ-स्थापनमाचरेत् ॥८९॥

तीर्थ आदि के साथ साधक किसी श्मशान-गृह में या देव-पुरी में
अथवा शून्य स्थान में किवा किसी चौवहे में एकत्र होकर पहले
दिशाओं के भैरवों का विचार कर, आसन पर बैठें और वीर-मण्डल
को शुद्ध कर साधकों को आदर - पूर्वक बैठाकर सङ्कल्प करें। तब
सम्पूर्ण अङ्गों में न्यास करके 'भूत-शुद्धि' आदि करे। फिर 'प्राण-
प्रतिष्ठा' करके हे शिवे ! 'श्री-चक्र' का पूजन करे। अपने और 'श्री-
चक्र' के मध्य में घट-स्थापन करे ॥८६-८९॥

गौडी माध्वी तथा पैण्टी, चासवं पूजयेत् शिवे !
एतेषां रसमादाय, तत्त्वतो भैरवाचने ॥९०॥
आनन्द - रस - पूजायां, तुष्यते परमेश्वरी ।
विप्राश्च क्षत्रिया वैश्या, शूद्राः पूज्याः सु-पावनाः ॥९१॥

हे शिवे ! गौडी, माध्वी तथा पैण्टी आसव का पूजन करे। इन
आसवों का रस ग्रहण कर भैरव-पूजन में वस्तुतः आनन्द - रस प्राप्त
होता है और भगवती भुवनेश्वरी प्रसन्न होती हैं। पवित्र-तम ब्राह्मण,
क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-ये चारों वर्ग के साधक पूजनीय हैं ॥९०-९१॥

गौडी विप्रेषु शुभदा, माध्वी क्षत्रेषु चोत्तमा ।
वैश्ये तु शुभदा पैण्टी, शूद्रेषु शिवमासवम् ॥९२॥

गौडी आसव ब्राह्मणों में शुभ-दायक है, माध्वी क्षत्रियों में उत्तम
है, पैण्टी वैश्यों में शुभदा है और शूद्रों में आसव उत्तम है ॥९२॥

ब्रह्म - क्षत्रिय - वैश्यानामानन्दस्तु शुभावहः ।
आसवं दूरतस्त्याज्यं, साधकैश्च मुमुक्षुभिः ॥९३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का आनन्द ही शुभदायी है। मोक्ष की
कामना करनेवाले साधकों द्वारा आसव दूर ही से त्याग करने
योग्य है ॥९३॥

अभावे तु सुराऽऽनन्द - रसानां परमेश्वरि !
मधुना पूजयेद् देवि ! देवमानन्द - भैरवम् ॥९४॥

हे परमेश्वरि ! मुरा के आनन्द-रस के अभाव में मधु द्वारा आनन्द-भैरव देवता का पूजन करे ॥१४॥

द्रव्यं संशोध्य देवेशि ! मकारान् पञ्च शोधयेत् ।

श्रीचक्राग्रेऽर्चयेत् तत्र, साधकान् भैरवागमे ॥१५॥

तत्र सम्पूज्य यन्त्रेशं, देवमावाह्य भैरवम् ।

योगिनीं पूजयेत् तत्र, बटुकं पूजयेत् ततः ॥१६॥

गणेशं क्षेत्रपालं च, पूजयेच्चक्र - नायिकाम् ।

सन्तर्प्य देवान् पितृंश्च, मुनीन् दिव्यान् महेश्वरि ! ॥१७॥

हे देवेशि ! 'द्रव्यों' को शुद्ध करके पञ्च - मकारों को शुद्ध करे । श्री-चक्र के आगे साधकों का पूजन करे । वहाँ यन्त्रेश्वर का पूजन करके और भगवान् भैरव का आवाहन कर, योगिनी, बटुक, गणेश, क्षेत्र-पाल और चक्र की नायिका का पूजन करे । हे महेश्वरि ! देवता, पितर और दिव्य मुनियों को तर्पण द्वारा प्रसन्न करके-॥१५-१७॥

श्री चक्राग्रे जपेन्मूलं, पठेत् कवचमीश्वरि !

मन्त्र-नाम सहस्रं तु, स्तोत्रं तत्त्व - निरूपणम् ॥१८॥

श्री-चक्र के आगे मूल-मन्त्र को जपे और कवच, सहस्रनाम तथा 'तत्त्व-निरूपण' नामक स्तोत्र का पाठ करे ॥१८॥

ततो देव्यै बलिं दत्त्वा, साधकांस्तर्पयेच्छिवे !

भैरवांस्तर्पयेदष्ट - दीक्षितांस्तर्पयेत् ततः ॥१९॥

हे शिवे ! तब बलि देकर साधकों को तृप्त करे, अनन्तर अष्ट-भैरवों को तृप्त करके दीक्षितों को तृप्त करे ॥१९॥

उत्तमं नव पात्राणि, पञ्च - पात्राणि मध्यमम् ।

अधमं त्रीणि पात्राणि, चैक - पात्रं न पूजतम् ॥२०॥

नौ पात्र उत्तम, पाँच पात्र मध्यम और तीन पात्र अधम होते हैं । एक पात्र से पूजन नहीं होता ॥२०॥

प्रवृत्ते भैरवी - चक्रे, सर्वे वर्णाः द्विजातयः ।

निवृत्ते भैरवी - चक्रे, सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ॥२१॥

‘भैरवी-चक्र’ में प्रवेश करने पर सभी वर्ण द्विज हो जाते हैं और जब भैरवी - चक्र की समाप्ति होती है, तब सभी वर्ण अलग - अलग समझे जाते हैं ॥२१॥

नव - कन्याः समस्यर्च्य, वीरेशो भैरवाचने ।

रेतसा तर्पयेद् देवीं, कुल - कोटिं समुदरेत् ॥२२॥

नौ कुमारियों का पूजन करके, ब्रह्मचर्य - पूर्वक देवी को तर्पण करे । इससे साधक अपने सहित कुल-मार्ग के करोड़ों भक्तों का उद्धार करता है ॥२२॥

शक्त्युच्छिष्टं पिबेद् द्रव्यं, वीरोच्छिष्टं च चर्वणम् ॥२३॥

‘शक्ति’ अर्थात् ‘चक्र’ में उपस्थित देवी - रूपा स्त्री के जूठे मद्य को पिए और वीर-भाववाले साधकों का जूठा भोजन प्रसाद - रूप में खाए ॥२३॥

मकार-पञ्च-संयुक्तं, कुर्याच्छ्री - चक्र - मण्डले ।

स्व-गुरुं पूजयेत् तत्र, तर्पयेच्छक्तितः परम् ॥२४॥

पञ्च-मकार के सहित श्रीचक्र - मण्डल में पूजनादि करे । वहीं अपने गुरु का पूजन करे और शक्ति के द्वारा तर्पण करे ॥२४॥

ब्रह्म-रन्ध्रेण मध्यस्थं, दिव्य-कुम्भ - समुद्रवम् ।

सद्यो मद्य - मयी पूर्णा, वारुणी परिकीर्तिता ॥२५॥

कामः क्रोधस्तथा लोभः, पशवस्त्रयमुच्यते ।

ज्ञान - खड्गेन हननं, द्वितीया परिकीर्तिता ॥२६॥

अहङ्कार महा-मत्स्यं, वैराग्ये जालं निक्षिपेत् ।

तपः - संयोजितो येन, तृतीया परिकीर्तिता ॥२७॥

विवेक-विश्वासयोर्मध्ये, राग-द्वेषादि-चूर्ण-वत् ।

तच्चूर्णं मुद्रिकां कृत्वा, चतुर्थं परिकीर्तितम् ॥२८॥

कुण्डलिनी नाद-रूपा, बिन्दु - रूपस्तथा शिवः ।

उभौ संयोजितो यत्र, पञ्चमं परिकीर्तितम् ॥२९॥

ब्रह्मरन्ध्र के मध्यस्थ अमृत-घट से उत्पन्न तत्काल - मादकता से पूर्ण करनेवाली वारुणी ही प्रथम ‘मकार’-मद्य है । काम, क्रोध, लोभ—ये तीन पशु कहे जाते हैं । इन्हें ज्ञान - रूपी खड्ग से मारना द्वितीय ‘मकार’-‘मांस’ है । अहङ्कार - रूपी बड़ी मछली फाँसने के लिए वैराग्य-सागर में जाल डाले और उस मछली को पकड़कर

तप में मिला देना ही 'तृतीय मकार'—'मत्स्य' है। विवेक और विश्वास के मध्य राग-द्वेषादि चूर्ण के समान रहते हैं, उस चूर्ण को मुद्रिका में परिणत करना 'चतुर्थ मकार'—'मुद्रा' है। कुण्डलिनी नाद - रूपा है और शिव बिन्दु-रूप—इन दोनों को संयुक्त करना 'पञ्चम मकार'—'मैथुन' है ॥२५-२६

तोषयित्वा गुरुं देवि ! दक्षिणाभिश्च वन्दनैः ।

तदाज्ञां शिरसाऽऽदाय, कुर्यादानन्दमात्मनः ॥३०॥

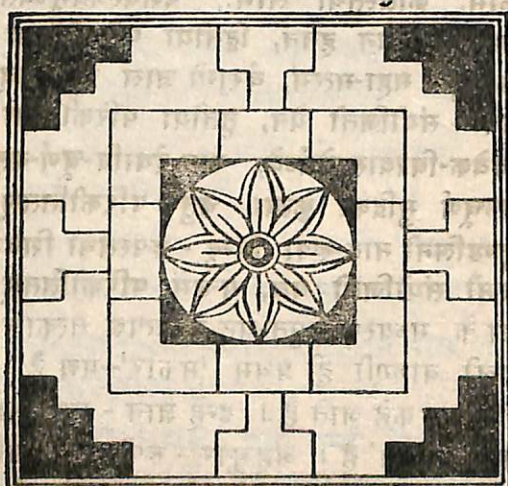
हे देवि ! दक्षिणा-सामग्रियों तथा स्तवन द्वारा गुरु को प्रसन्न कर और उनकी आज्ञा का शिरोधार्य कर अपना जीवन आनन्द - मय बनाना चाहिए ॥३०॥

इत्येष पटलो देवि ! चक्र - सर्वस्व - संज्ञकः ।

तव भक्त्या मया ख्यातो, गोपनीयो मुमुक्षुभिः ॥३१॥

हे देवि ! 'चक्र-सर्वस्व' नामक यह 'पटल' मैंने तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर कहा है। मोक्ष के इच्छुकों को इसे गोपनीय रखना चाहिए ॥३१॥

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये चक्र-सर्वस्व-संज्ञको पञ्चदशः पटलः ॥



षोडशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि, सारात् सार-तरं परम् ।

आचाराणां विधिं येन, कलौ देवी प्रसीदति ॥१॥

द्वौ मार्गौ चागमे स्यातां, वामाचारस्तु दक्षिणः ।

तयोस्तत्त्वं कुलाचारः, शृणु तेषां विधिं शिवे ! ॥२॥

साधको दीक्षितो येन, सिद्धिमवाप्नुयात् ।

तद्-वदामि तव स्नेहाद्, न चाख्येयं दुरात्मने ॥३॥

भैरव जी बोले—हे देवि ! परम सार-स्वरूप आचार - विधि को कहूँगा, जिससे देवी कलि-युग में प्रसन्न होती हैं, सुनो ! तन्त्र-शास्त्र में 'वाम' और 'दक्षिण' भेद से दो 'मार्ग' वर्णित हैं—इन दोनों मार्गों का 'सार' है—'कुलाचार' । अब उनकी विधि को सुनो, जिससे दीक्षित साधक सिद्धि को पाता है । तुम्हारे स्नेह से कह रहा हूँ, दुरात्मा लोगों को इसे न बताना चाहिए ॥१-३॥

प्रथमो दक्षिणाचारो, वामाचारो द्वितीयकः !

तृतीयस्तु कुलाचारो, विधिं तेषां शृणु प्रिये ! ॥४॥

पहला दक्षिणाचार है, दूसरा वामाचार है और तीसरा कुलाचार है । हे प्रिये ! उनकी विधि को सुनो ॥४॥

प्रभाते स्नान-सन्ध्यादि, मध्याह्ने जपमोक्षरि !

और्णमासनमात्मार्थं, भक्ष्यं पायस - शर्करा ॥५॥

माला रुद्राक्ष-सम्भूता, पात्रं पाषाण - सम्भवम् ।

भोगः स्वकीय-कान्ताभिर्दक्षिणाचार इत्ययम् ॥६॥

द्रव्येण मधुना देवि ! सिद्धिं हानि-करो मतः ॥७॥

हे ईश्वरि ! प्रातःकाल में स्नान-सन्ध्या आदि और दोपहर में जप करे । अपने लिए ऊनी आसन और खाने के लिए खीर तथा शर्करा रखे । माला रुद्राक्ष की और पात्र पत्थर के तथा अपनी पत्नी के साथ सुख-भोग—यह सब 'दक्षिणाचार' है । हे देवि ! 'मधु - द्रव्य' अर्थात् महुए की मदिरा से सिद्धि-हानि होती है ॥५-७॥

वामाचारं प्रवक्ष्यामि, भुवनेश्याः सु - साधनम् ।

यं विधाय कलौ शीघ्रं, मान्त्रिकः सिद्धि-भाग् भवेत् ॥८॥

[२०५]

अब वामाचार को कहूँगा, जो श्री भुवनेश्वरी की सिद्धि हेतु सुगम साधन है और जिसे पालन कर मन्त्रज्ञ साधक कलि-युग में शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥८॥

माला नूदन्त - सम्भूता, पात्रं पाषाण - मुण्डकम् ।

आसनं सिंह - चर्मादि, कङ्कणं स्त्री-कचोद्भवम् ॥९॥

द्रव्यमासव - तत्त्वाद्य, भक्ष्यं मांसादिकं शिवे !

चर्वणं बाल - मत्स्यादि, मुद्रा वीणा - रवा कथा ॥१०॥

मैथुनं वर - कान्ताभिः, सर्व - वर्ण - समानता ।

वामाचार इति प्रोक्तः, सर्व-सिद्धि-प्रदः शिवे ! ॥११॥

मनुष्य के दाँतों की माला, पत्थर या नर-कपाल के पात्र, सिंह आदि के चर्म का आसन, स्त्री के केशों के कङ्कण, पेय पदार्थों में मदिरा, मांसादि खाद्य, छोटी मछलियों का चर्वण, मुद्रा—अन्न के बने पदार्थ और वीणा—सङ्गीत के साथ कथा-वार्ता, सुन्दर स्त्रियों से सम्पर्क तथा सभी वर्णों को समान मानना—‘वामाचार’ है । हे शिवे ! यह ‘वामाचार’ सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाला कहा गया है ॥९-११॥

अन्यथा सिद्धि-हानिः स्यात् मन्त्रस्यास्य महेश्वर ! ॥१२॥

हे महेश्वर ! उक्त ‘वामाचार’ के बिना इस भुवनेश्वरी-मन्त्र की सिद्धि में हानि होती है ॥१२॥

तस्माद् वामं भजेन्नित्यं, वाम एव परा गतिः ।

दक्षिणं च कुलं चैव, वीरैः साधक - सत्तमैः ॥१३॥

त्याज्यं दूरात् कलौ देवि ! वाममेव भजेत् कलौ ।

कुलाचारं प्रवक्ष्यामि, सेव्यं भोगिभिरुत्तमैः ॥१४॥

अतः निश्चित भाव से ‘वामाचार’ का पालन करे, क्योंकि ‘वामाचार’ से ही श्रेष्ठ गति मिलती है । हे देवि ! कलियुग में ‘दक्षिणाचार’ दूर से ही त्याग करने योग्य है और वामाचार की ही उपासना करनी चाहिए । अब ‘कुलाचार’ को कहूँगा, जो उत्तम भोग करनेवालों द्वारा पालनीय है ॥१३-१४॥

कुल - स्त्रियं कुल-गुरुं, कुल-देवी महेश्वर !

नित्यं यत् पूजयेद् विश्वं, स कुलाचार उच्यते ॥१५॥

जिसमें नित्य कुल-स्त्री, कुल-गुरु और कुल-देवी—इन सबका पजन हो, उसे ‘कुलाचार’ कहते हैं ॥१५॥

कुल-स्त्रीं परमां शिवे ! ज्ञात्वा नत्वा महेश्वरि !

हठादानीय सम्पूज्य, तथा भोगं विधाय च ॥१६

रेतसा तर्पयेद् देवीं, चक्रेशी - भुवनेश्वरीम् ।

ईश्वरश्चैव विधि - वत्, जपं कुर्याद् विशेषतः ॥१७

हे महेश्वर ! श्रेष्ठ 'कुल-स्त्री' को जानकर उसे बारम्बार प्रणाम करे । आग्रह-पूर्वक उसे बुलाकर पूजन करके उसे तृप्त करे और अपने ब्रह्मचर्य से चक्रेश्वरी भुवनेश्वरी को प्रसन्न करे । ईश्वर का भी विधिवत् तर्पण करे और विशेष कर जप करे ॥१६-१७॥

तत्पूर्वकं चरेद्धोमं, कुल - कान्तां विभूषयेत् ।

पानैः पेयैस्तथा भक्ष्यैः, सन्तर्प्य कुल-योषितम् ॥१८

प्रत्यहं वै चरेदेवं, कुलाचार इति स्मृतः ।

इत्याचार - परो देवि ! कुल-स्त्री-गुरु-पूजकः ।

वामाचार-परो मन्त्री, मुक्ति-भाग् भविता ध्रुवम् ॥१९

पूर्वोक्त नियम से हवन करे और 'कुल-स्त्री' को पान-भोजन आदि से तृप्त तथा अलङ्कार-वस्त्र आदि से विभूषित करे । प्रति-दिन ऐसा ही आचरण करे । इसे ही 'कुलाचार' कहते हैं । हे देवि ! इस प्रकार आचार-परायण होकर कुल-स्त्री, कुल-गुरु का पूजन करने-वाला, वामाचार का पालन-कर्त्ता साधक अवश्य ही मुक्ति का ग्रही-कारी होता है ॥१८-१९॥

इत्येष पटलो गुह्यो, देव्याश्चार - वल्लभः ॥२०

अदातव्योऽन्य - भक्तेभ्यो, प्रकाशयो मुमुक्षुभिः ॥२०

आचार-प्रिय यह पटल गोपनीय तथा देवी का प्रिय है । जो देवी का भक्त न हो, उसे न देना चाहिए एवं मोक्षार्थियों को इसे प्रकाशित नहीं करना चाहिए ॥२०॥

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये 'आचार-विधिः' नाम षोडशः पटलः ॥



सप्तदशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

शृणुष्व कथयाम्यद्य, पूजां सामयिकीं पराम् ।
 यस्याः श्रवण-मात्रेण, कोटि-पूजा-फलं लभेत् ॥१॥
 बिना समय-पूजाभिर्देवि ! दीक्षाऽपि निष्फला ।
 तस्मात् समय-पूजान्ते, वक्ष्यामि पारलौकिकीम् ॥२॥
 न सिध्यन्ति महा-देवि ! नित्य-पूजा-जपादयः ।
 यज्ञ-होमादयो देवि ! बिना समय - पूजया ॥३॥
 अष्टोत्तर-शत-प्रख्याः, समयाः सन्ति पार्वति !
 तासु यः पूजयेद् देवि ! देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥४॥
 स याति परमेशानि ! श्रीदेवी-गणतां पराम् ।
 तेषामपि महा-देवि ! समया सन्ति चोत्तमा ॥५॥

भैरवजी बोले—हे महा-देवि ! सुनो, आज सर्वोत्तमा सामयिकी पूजा को कहता हूँ, जिसके सुनने से ही करोड़ों पूजन का फल मिलता है। हे देवि ! 'समय-पूजा' के बिना दीक्षा भी निष्फल होती है। अतः 'समय-पूजा' के अन्त में पारलौकिकी विधि को बताता हूँ। नित्य-पूजा, जप, यज्ञ, हवन आदि 'समय-पूजा' के बिना सिद्ध नहीं होते। हे पार्वति ! १०८ 'समय' प्रसिद्ध हैं, उन्हीं में जो देवी भुवनेश्वरी का पूजन करता है, वह हे परमेशानि ! देवी का गण हो जाता है। उनमें भी 'समय' के ही उपासक उत्तम हैं ॥१-५॥

सूर्य-ग्रहण - कालो वा, चन्द्र - ग्रहण-वासरः ।

भूकम्प-समयो देवि ! नवरात्र - दिनानि च ॥६॥

कन्या - संक्रान्ति - समयो, देवानामपि दुर्लभः ।

एतेषु समयेष्वेव, यः शिवां पूजयेच्छिवे ! ॥७॥

स साक्षाद् भैरवो ज्ञेयो, वरदान-क्षमः शिवः ।

अत्रादौ पूजनं वक्ष्ये, सूर्य - ग्रहण - पूर्वकम् ॥८॥

यस्मिन् काले भवेद् राहु - सूर्ययोश्च समागमः ।

तदैव साधकः स्नात्वा, पूजां सामयिकीं चरेत् ॥९॥

सूर्य या चन्द्र-ग्रहण का समय हो, अथवा भूमि-कम्प का समय हो या नवरात्रि के दिन हों। कन्या राशि में जब सूर्य हों अर्थात् कन्या की संक्रान्ति में—देव-दुर्लभ इन 'समयों' में जो देवी का पूजन करता है, हे शिवे ! वह वर-प्रदान में समर्थ शिव और साक्षाद् भैरव हो जाता है। इनमें सर्व-प्रथम सूर्य-ग्रहण का पूजन बताऊँगा। जिस समय राहु और सूर्य का समागम हो, उसी समय साधक स्नान कर सामयिकी पूजा को करे ॥६-६

स्नात्वा विलिख्य धरणीं, भूमौ यन्त्रं लिखेच्छिवे !

सिन्दूरेण महा - देवि ! सर्वाशा - परिपूरकम् ॥१०

त्रिकोणं बिन्दु - संयुक्तमष्ट - कोणं महेश्वरि !

वृत्तमष्ट - दलं देवि ! भू - गृहेणोप-शोभितम् ॥११

विभाव्य यन्त्रं देवेशि ! पूजां मन्त्री समारभेत् ।

आसनं देवि ! संशोध्य, भूत-शुद्धि विधाय च ॥१२

प्राणान् समर्प्य न्यासंश्च, देहं व्याप्य महेश्वरि !

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः मन्त्रेण, पूजां कुर्याद्धि मान्त्रिकः ॥१३

हे महा-देवि ! स्नान कर, भूमि को शुद्ध करके साधक सिन्दूर से भूमि पर 'सर्वाशापूरक' यन्त्र को लिखे। हे महेश्वरि ! बिन्दु-संयुक्त त्रिकोण, अष्ट-कोण, वृत्त, अष्ट-दल और भूपुर से शोभित यन्त्र की भावना कर मन्त्र-साधक पूजा प्रारम्भ करे। हे देवि ! आसन शुद्ध कर, भूत-शुद्धि करके प्राणों को समर्पित कर, न्यासों से शरीर को व्याप्त कर हे महेश्वरि ! 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः' मन्त्र से मन्त्र-साधक पूजन करे ॥१०-१३

सर्वाशा - पूरकायादौ, श्रीचक्राय महेश्वरि-कृत् ।

दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं देवि ! चतुरस्रे समर्चयेत् ॥१४

गणेशं धर्मराजं च, वरुणं च कुबेरकम् ।

करालं विकरालं च, संहारं हरु-भैरवम् १५॥

महा-कालं च कालाग्निं, सुप्तमुन्मत्त-भैरवम् ।

अष्ट - पत्रेषु देवेशि ! पूजयेद् गन्ध - पुष्पकैः ॥१६

पहले हे देवि ! 'सर्वाशा-पूरक श्रीचक्र' के लिए पुष्पाञ्जलि देकर चतुष्कोण में गणेश, धर्मराज, वरुण और कुबेर का पूजन करे।

अष्ट-दलों में हे देवेशि ! कराल, विकराल, संहार, रुरु, महा-काल, कालाग्नि, सुप्त और उन्मत्त भैरव का पूजन चन्दन, अक्षत तथा पुष्पों से करे ॥१४-१६

वशिनी परमेशानि ! कामेश्वरी ततः परम् ।

मोदिनी विमला चैवाप्यरुणा जयिनी तथा ॥१७

सर्वेश्वरी कौलिनी च, पूजनीयाऽष्ट-कोणके ।

वामावर्तेन देवेशि ! गन्धाक्षत - प्रसूनकैः !

पीत-पुष्पैर्महा - देवि ! पयसा मधुनाऽर्चयेत् ॥१८

गङ्गा च यमुना चैव, सरस्वती च पार्वति !

त्रिकोणेशान - क्रमतः, पूजनीया च साधकैः ॥१९

हे परमेशानि ! तव अष्ट-कोण में वाम-क्रम से वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी और कौलिनी का पूजन गन्ध, अक्षत, पीले फूल, दुग्ध और मधु द्वारा करे । हे पार्वति ! तव साधकों को ईशान-क्रम से त्रिकोण में गङ्गा, यमुना और सरस्वती का पूजन करना चाहिए ॥१७-१९

नील-पुष्पैश्च दध्ना च, घृत-मत्स्याण्ड-पद्मकैः ।

बिन्दौ श्रीपरमेशानि ! पूजयेद् भुवनेश्वरीम् ॥२०

हे परमेश्वरि ! बिन्दु में नील-पुष्प, दही, घृत, मत्स्याण्ड और कमलों से भुवनेश्वरी का पूजन करे ॥२०

ईश्वरं नन्दि - रुद्रं च, भैरवं भैरवेश्वरम् ।

ॐ ह्रीं श्रीं ऐं राहवे फट्, स्वाहा-मन्त्रेण साधकः ॥२१

बिन्दौ सम्पूजयेद् राहुं, त्रि-वारं च स्व-शक्तितः ।

तत्र प्रपूजयेद् देवि ! श्रीसूर्य - ग्रह - नायकम् ॥२२

सूर्य - मन्त्रेण देवेशि ! गन्धाक्षत - प्रसूनकैः ।

नैवेद्याचमनीयाद्यैस्तम्बूलैश्च सु-वासितैः ॥२३

तत्रोपरि महा-देवि ! ताम्रस्थ च तुला दश ।

दत्त्वा यन्त्रस्य पुरतो, जपं कुर्यान्महेश्वरि ! ॥२४

अगुतार्धं तदर्थं वा सहस्रकं च वा जपेत् ।

जपाद् दशांशतो होमः कार्यः सर्पिस्तिलैर्यवैः ॥२५

उदग्रे कवचं नाम्नां, सहस्रं स्तोत्रमेव च ।

पठेद् देवि ! ततो देव्यै, स-शिवायै समर्पयेत् ॥२६

तव ईश्वर, नन्दि, रुद्र, भैरव और भैरवेश्वर का पूजन करके 'ॐ ह्रीं श्रीं ऐं राहवे फट् स्वाहा'—इस मन्त्र से साधक बिन्दु में राहु का पूजन करे और अपनी शक्ति के अनुकूल वहीं तीन बार सूर्य के मन्त्र से ग्रह-नायक सूर्य का पूजन चन्दन, अक्षत, फूल, नैवेद्य, आचमन तथा सुगन्ध-युक्त ताम्बूल से करे। हे महा-देवि ! उसके ऊपर दश तुला ताम्र देकर यन्त्र के सम्मुख पाँच हजार, ढाई हजार या एक हजार मन्त्र जप करे। जौ, तिल और घृत से जप का दशांश हवन करे तब कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र-पाठ करके देवी श्रीभुवनेश्वरी को समर्पित कर दे ॥२१-२६॥

राहवे कुल - गुरवे, सूर्याय साधकोत्तमः ।

जपं समर्प्य विधि-वन्, नत्वा साष्टाङ्ग-मोश्वरि ! ॥२७

हे ईश्वरि ! राहु, कुल-गुरु और सूर्य को यथा-विधि जप-समर्पण कर साष्टाङ्ग नमस्कार करे ॥२७

ब्राह्मणान् भोजयेद् देवि ! दक्षिणाभिः समर्चयेत् ।

एवं तु पूजयेद् देवि ! देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥२८

ग्रहणे ग्रह-नाथस्य, सूर्यस्यामित - तेजसः ।

कोटि - वर्ष - सहस्राणां, पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥२९

हे देवि ! ब्राह्मणों को भोजन कराए और दक्षिणा-सामग्रियों से पूजन करे। अतुलनीय तेजस्वी ग्रह-नाथ सूर्य के ग्रहण-काल में इस प्रकार देवी श्रीभुवनेश्वरी का पूजन करे। इससे दस करोड़ वर्षों तक पूजन करने का फल प्राप्त होता है ॥२८-२९

इत्येष पटलो देवि ! गोपनीयो मुमुक्षुभिः ।

सूर्य - ग्रहण - पूजायाः, साधकेष्ट - फल - प्रदा ॥३०

हे देवि ! इसलिए सूर्य-ग्रहण-कालीन पूजन का यह पटल साधकों को अभिलषित फल देनेवाला है और मोक्ष चाहनेवालों द्वारा गोपनीय है ॥३०

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये सूर्य-ग्रहण-पूजा-विधिर्नाम

सप्त-दशः पटलः ॥



अष्टादशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

शृणुष्वावहितो भूत्वा, कथयामि महेश्वरि !

रहस्यं भुवनेश्वर्याः, पूजा - सारमनुत्तमम् ॥१॥

श्रीभैरव जी बोले—हे महेश्वरि ! भुवनेश्वरी का रहस्य तथा सर्वोत्तम पूजा-विधि को कहता हूँ, एक-चित्त होकर सुनो ॥१॥

चन्द्रोपराग - समये, स्नात्वा साधक - सत्तमः ।

विलिप्य धरणीं धीमान्, लिखेद् यन्त्रं महेश्वरि ! ॥२॥

हे महेश्वरि ! चन्द्र-ग्रहण के स्पर्श-काल में स्नान कर साधक भूमि को गो-मय से पवित्र करके यन्त्र को लिखे ॥२॥

त्रिकोणं बिन्दु - संयुक्तं, दशारं पञ्च - कोणकम् ।

वृत्तमष्ट - दलं देवि ! भू-गृहेणोप - शोभितम् ॥३॥

सिन्दूरेण महा - देवि ! लिखित्वाऽष्ट - हरिद्रया ।

कुर्यादासन - शुद्धिं च, भूत - शुद्धिं ततः परम् ॥४॥

प्राणान् समर्प्य देवेशि ! न्यासं कुर्याद् यथा-विधि ।

भैरवर्ष्यादि - न्यासेन, देहं व्याप्य महेश्वरि ! ॥५॥

मातृका - न्यास-भेदेन, श्रीकण्ठ - न्यासकेन च ।

ध्यात्वा सोम-स्थितां देवी, सोम-कोटि-सम-प्रभाम् ॥६॥

पात्र-स्थापन - कर्मादौ, कृत्वाऽऽवाह्य महेश्वरीम् ।

स-शिवां मनसाऽऽवाह्य, राहुं चैव स - शक्तिकम् ॥७॥

हे देवि ! बिन्दु-युक्त त्रिकोण, दशार, पञ्च-कोण-वृत्त, अष्ट-दल और भूपुर से सुशोभित यन्त्र सिन्दूर, अष्ट-गन्ध और हल्दी से लिख कर, आसन-शुद्धि तथा भूत-शुद्धि करे । हे देवेशि ! पञ्च-प्राणों को समर्पित करके, भैरव-ऋष्यादि न्यास से सम्पूरण शरीर को व्याप्त करके विधि-वत् न्यास करे । फिर विविध 'मातृका - न्यास' और 'श्रीकण्ठ-न्यास' कर करोड़ों चन्द्र के समान कान्ति-मती चन्द्र-स्थिता देवी का ध्यान करे और पहले पात्र - स्थापन का कार्य कर मन से शिव-समेत भगवती भुवनेश्वरी का ध्यान करे तथा शक्ति-समेत राहु का भी ध्यान करे ॥३-७॥

आवाह्य सोमं देवेशि ! स्वागमस्तूदीरयेत् ।
स्थाने सम्मुखे ध्याने च, कुर्यान्मुद्राः पृथक् - पृथक् ॥८
पाद्यार्घ्यादि निवेद्यादौ, पश्चात् पूजां समारभेत् ।
गणेशं नन्दि - रुद्रं च, पुष्प - दन्तं किरीटिनम् ॥९
दक्षावर्तेन गन्धाद्यैः, पूज्यास्ते चतुरस्रके ।
मङ्गला पिङ्गला धान्या, भ्रामरी भद्रिका तथा ॥१०

उल्का सिद्धा सङ्कटा च, पूजनीयाऽष्ट-पत्रके ।
वामावर्तेन देवेशि ! पीत - पुष्पैर्महेश्वरि ! ॥११
श्रीमहा - त्रिपुरा चैव, तथा त्रिपुर - मालिनी ।
त्रिपुरा - विजया देवि ! तथा त्रिपुर - वासिनी ॥१२
पञ्च-कोणे सदा पूज्याः, पञ्च-देव्यो महेश्वरि !
वामावर्तेन गन्धार्घ्य - धूप - दीप - प्रसूनकैः ॥१३

हे देवेशि ! चन्द्र का आवाहन करके 'स्वागतं अस्तु' अर्थात् 'स्वागत है' ऐसा कहे । स्थान में, सम्मुख और ध्यान में अलग-अलग मुद्राएँ करनी चाहिए । पहले पाद्य, अर्घ्य आदि देकर पीछे पूजन आरम्भ करे । चतुरस्र में गरुणेश, नन्दि-रुद्र, पुष्प - दन्त और किरीटी का पूजन गन्ध, अक्षत, पुष्प से दक्षिणावर्त-क्रम से करे । अष्ट-दल में मङ्गला, पिङ्गला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका उल्का, सिद्धा, और सङ्कटा का पीले रङ्ग के फूलों से वामावर्त-क्रम से पूजन करे । पञ्च-कोण में श्री महा - त्रिपुरा, त्रिपुर - मालिनी, त्रिपुरा - विजया और त्रिपुर-वासिनी का वामावर्त से गन्ध, अर्घ्य, धूप, दीप और पुष्पों से पूजन करे ॥८-१३

इन्द्रं देवि ! धर्म - राजं, वरुणं च कुबेरकम् ।
ईशमग्निं पलाशं च, वायुं विष्णु - कुमारकम् ।
दशारेषु सितैः पुष्पैर्दक्षावर्तेन पूजयेत् ॥१४

तब दशार में इन्द्र, धर्म-राज, वरुण, कुबेर, ईश, अग्नि, पलाश, वायु, विष्णु और कुमार का पूजन श्वेत पुष्पों से दक्षावर्त - क्रम से करे ॥१४

कामेश्वरीं वज्रेश्वरीं, पूजयेद् भग - मालिनीम् ।
त्रिकोणे साधको देवि ! पीत - पुष्पैर्विशेषतः ॥१५

सर्वानन्द - मये चक्रे, वैन्दवे पूजयेत् ततः ।
 सेश्वरां भुवनेशानीं, श्रीदेवीं भुवनेश्वरीम् ॥१६
 ईश्वरं च महा - रुद्रं, कालाग्नि भैरवेश्वरम् ।
 वरं चैवाङ्कुशं चैव, पाशं चाभयमेव च ॥१७
 तत्रैव राहुं सम्पूज्य, मूलेनैव स - शक्तिकम् ।
 चन्द्रं स - शक्तिकं चैव, कलाः षोडशकास्तथा ।
 भ-मालां पूजयेत् तत्र, रात्रिं चैव समर्चयेत् ॥१८

तब हे देवि ! साधक त्रिकोण में कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भग-
 मालिनी का, विशेष कर पीले फूल से, पूजन करे । फिर सर्वानन्द-मय
 विन्दु-चक्र में शिव के साथ देवी भुवनेश्वरी का और ईश्वर, महा-रुद्र,
 काल, अग्नि, भैरवेश्वर, वर, अंकुश, पाश तथा अभय का पूजन कर
 वहीं स-शक्तिक राहु का मूल-मन्त्र से पूजन करे । तब शक्ति - सहित
 चन्द्रमा और उनकी सोलह कलाओं तथा नक्षत्र-माला-सहित रात्रि
 का भी पूजन करे ॥१५-१८

देव्यै निवेदितान् गन्धाक्षत - पुष्प - समन्वितान् ।
 धूप - दीपादि - नैवेद्य - ताम्बूलादीन् समर्पयेत् ॥१९
 न्यासं कृत्वा जपेन्मूलं, अयुतार्धं सुरेश्वरि !
 तदर्धं वा सहस्रैकं, जप्त्वा होमं दशांशतः ॥२०

हे सुरेश्वरि ! देवी को निवेदन किए हुए गन्ध, अक्षत, धूप, दीप,
 नैवेद्य, ताम्बूल आदि समर्पित करे । पुनः न्यास करके पाँच हजार
 या ढाई हजार या एक हजार मूल - मन्त्र जप कर दशांश हवन
 करे ॥१९-२०

वर्म - नाम - सहस्रादि, स्तोत्र - पाठं चरेत् पुनः ।
 दद्याद् यन्त्राय देवेशि ! रौप्य-स्वर्ण-तुला शिवे ! ॥२१
 गुरवे देव - देवीभ्यां, जपं मन्त्री समर्पयेत् ।
 संहार - मुद्रया देवि ! देव - देव्यौ विसर्जयेत् ॥२२

तब कवच, सहस्र-नाम-स्तोत्र आदि का पाठ करे । पुनः यन्त्र के
 प्रति दक्षिणा में चाँदी-सोने की मुद्रा अर्पित करे । गुरु, देवता तथा
 देवी को जप समर्पित करे और संहार-मुद्रा से देवता तथा देवी का
 विसर्जन करे ॥२१-२२

अनया पूजया देवि ! श्रीदेवी - भुवनेश्वरीम् ।

साधकः पूजयेद् यस्तु, स साक्षाद् भैरवो भवेत् ॥२३

हे देवि ! इस प्रकार जो साधक देवी भुवनेश्वरी का पूजन करता है, वह साक्षात् भैरव हो जाता है ॥२३

नित्यं पूजां विधायात्र, कोटि - संख्यं महेश्वरि !

यत्फलं तत्फलं सद्यः, स लभेत् पूजयाऽनया ॥२४

पुरश्चर्या सहस्रस्य, चाश्वमेधायुतस्य च ।

फलं भवति देवेशि ! चन्द्र - ग्रहण - पूजया ॥२५

हे महेश्वरि ! इस संसार में नित्य नियम से करोड़ पूजन करने का जो फल होता है, वह फल इस पूजन से तत्काल साधक प्राप्त करता है और हजार पुरश्चरण का तथा दस हजार अश्वमेध - यज्ञ करने का जो फल होता है, वह केवल इस ग्रहण - कालीन पूजन से होता है ॥२४-२५

चन्द्र - ग्रहण - पूजायाः, पटलो देवि ! दुर्लभः ।

गोपनीयो विशेषेण, नान्यथा सिद्धि - हानिदः ॥२६

हे देवि ! चन्द्र-ग्रहण-पूजा का यह पटल दुर्लभ है । यह यत्न-पूर्वक गोपनीय है । गुप्त न रखने से सिद्धि की हानि होती है ॥२६

॥ श्रीभुवनेश्वरी - रहस्ये चन्द्र - ग्रहण - पूजा-विधिर्नाम

अष्टादशः पटलः ॥



एकोनविंशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

कथयामि तव प्रोत्था, रहस्यं देवि ! दुर्लभम् ।

तत्त्वं श्रीभुवनेश्वर्याः, भूकम्पार्चनमुत्तमम् ॥१॥

यत्-क्षणं कम्पते भूमिः, देवासुर - भयङ्करी ।

स एव दुर्लभः कालः, पूजायाश्चापि पार्वति ! ॥२॥

भैरवजी बोले—हे देवि पार्वति ! तुम्हारी प्रीति से दुर्लभ रहस्य, जो भुवनेश्वरी की आराधना का सार-भूत 'भूकम्प-पूजन' है, उसे कहता हूँ । देव तथा दानवों को भयभीत करनेवाली भूमि जब काँपती है, तब वह कम्पन का समय पूजन का दुष्प्राप्य काल है ॥१-२॥

उत्थाय साधकः स्नात्वा, कृत्वा विष्टर-शोधनम् ।

विभाव्य तत्र श्रीचक्रं, यथा-वद् वर्ण्यते मया ॥३॥

बिन्दु - त्रिकोण - सयुक्तं, रस-कोणं स-वृत्तकम् ।

अष्ट-पत्रं ततो वृत्तं, लिखेद् भू-मन्दिरं प्रिये ! ॥४॥

एतद् भूकम्प-पूजायाः चक्रं देवि ! सु-दुर्लभम् ।

इत्थं विलिख्य श्रीचक्रं, भूत-शुद्ध्यादिकं चरेत् ॥५॥

हे प्रिये ! साधक प्रातः उठकर, स्नान कर आसन शुद्ध कर श्रीचक्र की भावना करे, जैसा कि मैं वर्णन करता हूँ । बिन्दु, त्रिकोण, षट्-कोण, वृत्त, अष्ट-दल, पुनः वृत्त, तब भूपुर—यह 'भूकम्प-पूजन-चक्र' नितान्त दुर्लभ है । हे देवि ! उक्त प्रकार से यन्त्र लिख कर भूत-शुद्धि आदि करे ॥३-५॥

मातृका - न्यास - भागेन, देहे देव-मयं चरेत् ।

ध्यात्वा देवीं भूमि-रूपां, शेष-रूपं महेश्वरम् ॥६॥

मनसाऽऽवाह्य मूलेन, स-शिवां भुवनेश्वरीम् ।

भूमिं सशेषामावाह्य, तन्त्र-पूजां समारभेत् ॥७॥

विविध मातृका-न्यास कर अपनी देह को देव-मय करे । तब देवी भुवनेश्वरी को भूमि - रूपिणी और शिव को शेष-रूप ध्यान करे । मूल-मन्त्र से शिव-सहित भुवनेश्वरी का मानसिक आवाहन कर शेष के साथ पृथ्वी का आवाहन करे और तब तान्त्रिक पूजन आरम्भ करे ॥६-७॥

सङ्कल्पं साधकः कुर्यात्, प्राणायाम-त्रयं शिवे !
पात्राणि स्थापयेत् तत्र, देवीं सन्तर्प्य नित्य-वत् ॥८
योग - पीठार्चनं कृत्वा, पूजयेच्चतुरस्रकम् ।
गणेशं धर्मराजं च, कुबेर - वरुणौ ततः ॥९
दक्षावर्तेन सम्पूज्य, चतुर्द्वारेषु साधकः ।
करालाय फडित्येवं, तत्राशा-बन्धनं चरेत् ॥१०

हे देवि ! साधक सङ्कल्प कर तीन प्राणायाम करे । उसी स्थान पर पात्रों को रखकर देवी को नित्य की तरह तृप्त कर योग-पीठ का पूजन करे । पुनः चतुरस्र में गणेश, धर्मराज, कुबेर और वरुण का दक्षिण-क्रम से पूजन कर, 'करालाय फट्' इस मन्त्र से दिग्बन्धन करे ॥८-१०

आचम्य कुर्याद् देवेशि ! षडङ्ग-मन्त्र-बीजकैः ।
अणिमाद्यष्ट - सिद्धोश्च, पूजयेदष्ट - पत्रके ॥११
वामावर्तेन गन्धार्घ्य - सित-पुष्पैर्यथा - विधि ।
गङ्गायै नमः इत्येवं, तत्त्व-बीजैस्त्रिराचमेत् ॥१२
सर्व-रक्षा-करे चक्रे, गुरुन् सन्तर्प्य साधकः ।
श्रीदेवीं सशिवं ध्यात्वा, भूमि-देवान् समर्चयेत् ॥१३

हे देवेशि ! आचमन कर बीज-मन्त्र से षडङ्ग-न्यास करे और अष्ट-पत्रों में अणिमा आदि अष्ट-सिद्धियों का श्वेत पुष्प, गन्ध, अर्घ्यादि द्वारा वामावर्त-क्रम से पूजन कर 'ॐ गङ्गायै नमः आत्म-तत्त्वं शोधयामि, ॐ गङ्गायै नमः विद्या-तत्त्वं शोधयामि, ॐ गङ्गायै नमः शिव-तत्त्वं शोधयामि',—इस प्रकार तीन आचमन करे । फिर 'सर्व-रक्षा-कर चक्र' में गुरु-त्रय को तृप्त करे । तब शिव-सहित भुवनेश्वरी का ध्यान कर भूमि-देवताओं का पूजन करे ॥ ११-१३

शेषं कूर्मं मत्स्य-राजं, समुद्रं च हिमाचलम् ।
दिग्गजान् परमेशानि ! पूजयेद् वै षडङ्गके ॥१४

गङ्गां च यमुनां चैव, तृतीयां च सरस्वतीम् ।
त्रिकोणे पूजयेद् देवि ! देवी-श्रीभुवनेश्वरीम् ॥१५
ईश्वरं पूजयेत् तत्र, महा - प्रेतासनं ततः ।
वराकुशौ च पाशं चाभीति चैव प्रपूजयेत् ॥१६

भूमिं सम्पूजयेत् तत्र, पूजयेत्-कुल-पर्वतान् ।

गन्धाक्षत - प्रसूनाद्यैः, धूप-दीपादि - तर्पणैः ॥ १७

नैवेद्याचमनीयाद्यैस्ताम्बूलैश्च सु - वासितैः ।

तद्-बिन्दौ स्वर्ण-रतिका, दश दद्यात् स्व-सिद्धये ॥ १८

गो-दानं साधकः कुर्याद्, भूमि-दानं तथैव च ।

यन्त्राग्रे च जपेन्मूलमेक - साहस्रिकावधि ॥ १९

हे परमेशानि ! शेष, कूर्म, मत्स्य-राज, समुद्र, हिमाचल और दिग्गजों का पूजन करे । त्रिकोण में गङ्गा, यमुना और सरस्वती का पूजन कर श्रीभुवनेश्वरी देवी का पूजन करे । वहीं शिव और प्रेतासन का पूजन करे । तब वर, अंकुश, पाश और अभय का पूजन करे । वहीं पृथ्वी और सात-कुल-पर्वतों—१ हिमाचल, २ निषध, ३ विन्ध्य, ४ माल्यवान्, ५ पारि-यात्रक, ६ गन्ध-मादन, ७ हेम-कूट का पूजन करे । पूर्वोक्त सम्पूर्ण पूजन चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, तर्पण, नैवेद्य, आदि और कर्पूर-इलायची आदि से सुवासित पान द्वारा करना चाहिए । पूर्व-वर्णित 'सर्व-रक्षा-कर यन्त्र' के बिन्दु में अपनी सिद्धि के लिए दश रति सुवर्ण अर्पित करे । तब साधक गो-दान तथा भूमि-दान करे । फिर यन्त्र के आगे मूल-मन्त्र का एक हजार जप करे ॥ १४-१९

जपेद् दशांशतो होमः, कार्यः सर्पि-तिलेन्द्रुमैः ।

वर्म-नाम - सहस्राणि, स्तव-पाठं चरेत् ततः ॥ २०

देव-देव्यौ गुरुं देवि ! समर्प्य जपमादरात् ।

प्रणम्य योनि-मुद्राभिर्नत्वा दण्ड-वदोश्वरि ! ॥ २१

विसर्जयेद् देव-देव्यौ, मन्त्री संहार - मुद्रया ।

अश्वमेध - सहस्रस्य, गोमेधायुतकस्य च ॥ २२

सुवर्णाचल - दानस्य, यत्-फलं साधकेश्वरि !

तत्फलं त्वरितं मन्त्री, भूकम्पार्चनतो लभेत् ॥ २३

अर्जुन की लकड़ी, तिल और घृत से जप का दशांश हवन करे । तब कवच, सहस्रनाम स्तोत्र आदि का पाठ करे और शिव, भुवनेश्वरी, गुरुदेव को आदर-पूर्वक जप समर्पित करे । हे ईश्वरि ! साधक योनि-मुद्रा से दण्डवत्-प्रणाम कर संहार-मुद्रा से शिव और भुवनेश्वरी आदि देव-देवियों को विसर्जित करे । हजार अश्व-मेध, दस हजार

गो-मेध तथा सुवर्ण का पर्वत दान करने से जो फल प्राप्त हो सकता है, हे साधकेश्वरि ! वह फल साधक शीघ्र ही भूकम्प के समय पूजन से प्राप्त करता है ॥२०-२३

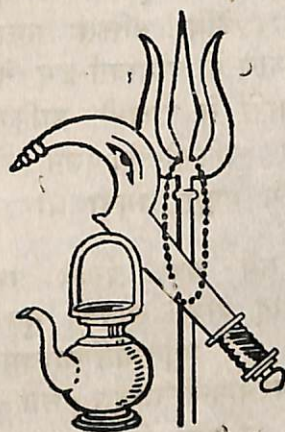
इत्येष पटलो देवि ! भूकम्पार्चि - प्रकाशकः ।

गोपनीयो गोपनीयः, सदा सेव्यः मुमुक्षुभिः ।

भूकम्पस्य च पूजायाः, साधकेष्ट-फल-प्रदा ॥२४

हे देवि ! भूकम्प-पूजन का प्रकाशक यह पटल मुमुक्षुओं से सदा सेवनीय और नितान्त गोपनीय है तथा यह भूकम्प-पूजा साधकों के अभीष्ट फल को देनेवाली है ॥२४

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये भूकम्प-पूजा-विधिर्नाम एकोनविंशः पटलः ॥



विंशः पटलः

॥ श्री भैरव उवाच ॥

अथ वक्ष्यामि देवेशि ! संक्रान्त्यार्चा यथा-विधि ।

तत्त्वं श्रीभुवनेश्वर्याः, सारात् सार-तरां पराम् ॥१॥

भैरवजी बोले—हे देवेशि ! अब भुवनेश्वरी के तत्त्व-परम सार-मय 'संक्रान्ति-पूजन' को विधिवत् कहूँगा ॥१॥

मन्दाकिनी भोगा ध्वांक्षी, अघोरा च महेश्वरि !

मिश्रका पूजनीया च, बहिः षट्-कोणके शिवे ! ॥२॥

हे महेश्वरि ! बाहर के षट्-कोण में मन्दाकिनी, भोगवती, ध्वांक्षी, अघोरा, महेश्वरी और मिश्रका का पूजन करे ॥२॥

गन्धाढ्यं - पुष्प - धूपार्घ्यैर्वाभावर्तेन पार्वति !

राक्षसी डाकिनी चैव, शाकिनी गुप्त-योगिनी ।

हाकिनी लाकिनी पूज्या, मध्य-षट्-कोणके ततः ॥३॥

गङ्गां च यमुनां चैव, तृतीयां च सरस्वतीम् ।

त्रिकोणे पूजयेद् देवि ! भक्तितः मन्त्र-साधकः ॥४॥

तब मध्य के षट्-कोण में वामावर्त-क्रम से चन्दन, अर्घ्य, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारों से राक्षसी, डाकिनी, शाकिनी, गुप्त-योगिनी, हाकिनी और लाकिनी का पूजन करे। फिर भक्ति-पूर्वक मन्त्र-साधक त्रिकोण में गङ्गा, यमुना और सरस्वती का पूजन करे ॥३-४॥

सर्वानन्द - मये चक्रे, वन्दे परमेश्वरि !

श्रादेवीं पूजयेद् देवि ! साधको भुवनेश्वरोम् ॥५॥

गन्धाक्षत - प्रसूनार्घ्यैर्नैवेद्याचमनीयकैः ।

वस्त्रैश्च परमानन्दैस्ताम्बूल - छत्र - चामरैः ॥६॥

सम्पूज्य यन्त्र - राजस्य, बिन्दौ दद्यान्महेश्वरि !

स्वर्ण-रौप्यादि-पुष्पाणि, कांस्य-पात्रं तथैव च ॥७॥

निवेद्य मूल - मन्त्रेण, सुरीति कलशं तथा ।

बिन्दौ देवीं स्मरेन्मन्त्रो, स-शिवां हसिताननाम् ॥८॥

सर्वानन्द-मय बिन्दु-चक्र में चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, आचमन, वस्त्र, ताम्बूल, छत्र, चामर आदि से तथा परमानन्द-पूर्वक

देवी श्रीभुवनेश्वरी का पूजन करे। इसी प्रकार पूजन कर साधक यन्त्र-राज के बिन्दु में सुवर्ण-रजत-कांस्य तथा पुष्प मूल-मन्त्र से अर्पित करे। तब साधक बिन्दु में शिव के साथ हास्य-मुखी भुवनेश्वरी का ध्यान करे ॥५-८

पूर्व-वद् देवि ! सङ्कल्प्य, जपं कुर्याद् यथा-विधि ।

जपाद् दशांशतो होमः, कार्यः सर्पि-यवाङ्कुरैः ॥६

हे देवि ! पूर्व-वत् सङ्कल्प करके यथा-विधि जप करे और जप का दशांश हवन घृत तथा जौ के अङ्कुरों से करना चाहिए ॥६

वर्म - नाम - सहस्राणि, स्तव-पाठं प्रकल्पयेत् ।

समर्प्य देव्यै तत्-सर्वं, विप्रान् सम्भोजयेत् ततः ॥१०

विशेषतः साधकाश्च, भक्तितः मन्त्र-साधकः ।

तथैव दक्षिणां दत्वा, प्रणमेद् योनि-मुद्रया ॥११

तब साधक कवच, सहस्र-नाम, स्तव आदि का पाठ करे और देवी को वह सब पाठ समर्पित कर ब्राह्मणों को—विशेष कर साधकों को भक्ति-पूर्वक भोजन कराए तथा उसी प्रकार दक्षिणा देकर योनि-मुद्रा से प्रणाम करे ॥१०-११

इत्येवं पूजयेद् देवीं, कन्यां संक्रान्ति - वासरे ।

गोदान-कोटि - सदृशं, फलं भवति पार्वति ! ॥१२

हे पार्वति ! इस प्रकार कन्या-संक्रान्ति में भुवनेश्वरी का जो पूजन करता है, उसे कोटि गोदान के समान फल मिलता है ॥१२

सप्त - जन्मनि यो देवीं, पूजयेन्नित्य - कर्मणा ।

यत्फलं तस्य तत्सद्यो, भवेत् संक्रान्ति-पूजया ॥१३

इत्येष पटलो देवि ! गुह्याद्-गुह्य - तरोऽमृतः ।

अभक्तेभ्यो न दातव्यो, गोपनीयश्च साधकैः ॥१४

सात जन्मों तक जो नित्य-नियम से देवी का पूजन करता है, उसे जो फल मिलता है, वही फल संक्रान्ति-पूजन से सद्यः प्राप्त होता है। हे देवि ! यह पटल अत्यन्त गोपनीय है और अभक्तों के लिए अदेय है तथा साधकों को इसे गुप्त रखना चाहिए ॥१३-१४

॥ श्रीभुवनेश्वरो-रहस्ये कन्या-संक्रान्ति-पूजा-विधिर्नाम विशः पटलः ॥

एक-विंशः पटलः

अथ वक्ष्यामि देवेशि ! शक्ति-पूजां यथा-विधि ।

तत्त्वं श्रीभुवनेश्वर्याः, सारात् सार-तरं परम् ॥१

भैरवजी बोले—हे देवेशि ! अब शक्ति-पूजा की विधि को कहूँगा,
जो भुवनेश्वरी का परम श्रेष्ठ सार-तत्त्व है ॥१

दिने शुभे महा-देवि ! स्नात्वा गत्वाऽर्चन-स्थलीम् ।

समाप्य नित्य-कर्मादौ, निशादौ शक्तिमर्चयेत् ॥२

हे महा-देवि ! शुभ दिन में स्नान कर और सन्ध्या-वन्दनादि
नित्य-कर्म समाप्त कर पूजन-स्थल में जाकर रात्रि के आरम्भ-काल
में शक्ति का पूजन करे ॥२

श्रीशक्ति-पूजा-सारस्य, ऋषिः प्रोक्तः सदा-शिवः ।

पंक्तिश्छन्दं समाख्यातं, देवता भुवनेश्वरी ॥३

ऐं बीजं तथा सौः शक्तिः, क्लीं कीलकमुदाहृतम् ।

धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थे, विनियोग इति स्मृतः ॥४

उक्त दो श्लोकों से शक्ति-पूजा का 'विनियोग' बनता है । यथा—
श्रीशक्ति-पूजा-सारस्य, श्रीसदा-शिव ऋषिः । पंक्तिश्छन्दः । श्री
भुवनेश्वरी देवता । ऐं बीजं । सौः शक्तिः । क्लीं कीलकम् । धर्मार्थ-
काम-मोक्षार्थे विनियोगः ।

विनियोग के अनुसार ऋष्यादि-न्यास कर लेना चाहिए ।

आसनं तत्र संशोध्य, भूमिं संशोध्य साधकः ।

भूत - शुद्धि विधायाथ, प्राणार्पण-विधि ततः ॥५

सदा-शिवर्षि - न्यासेन, मातृका - न्यासकेन च ।

षोढा-न्यास - क्रमेणैवं, देहं व्याप्य महेश्वरि ! ॥६

हे महेश्वरि ! तब साधक आसन को शुद्ध कर भूमि शुद्ध करे ।
फिर भूत-शुद्धि और प्राणायाम - विधि करके, सदा - शिवर्षि - न्यास,
मातृका-न्यास और षोढा-न्यास क्रम से करके देह में व्यापक न्यास
करे ॥५-६ (इन सब न्यासों की विधि षष्ठ पटल में वर्णित है ।)

भूमौ यन्त्रं लिखित्वाऽऽशु, सिन्दूरेणात्र वर्ण्यते ।

विन्दु-त्रिकोणं-षट्-कोणं, वृत्तं नाग-दलाङ्गिकम् ॥७

देवेशि ! भू - गृहं शक्ति - पूजा-यन्त्रमुदाहृतम् ।

यन्त्रं विलिख्याति-दीर्घं, विस्तृतं परमेश्वरि ! ॥८

पृथ्वी पर सिन्दूर से इस प्रकार यन्त्र लिखे—विन्दु, त्रिकोण, षट्-कोण, वृत्त, अष्ट-दल और भूपुर । इस प्रकार खूब लम्बा-चौड़ा यन्त्र लिख कर— ॥७-८

स्व-शक्ति पर-शक्ति वा, नगनां मुक्त - कचां शिवे !

मालाऽऽभरण-शोभाढ्यां, स्वर्ण-कङ्कण-राजिताम् ॥९

स्नातामानीय देवेशि ! स्वयं नग्नोऽत्र साधकः ।

करालं विकरालं च, संहारं रुह - भैरवम् ॥१०

कालाग्निं च महा - कालं, सुप्तमुन्मत्त - भैरवम् ।

अष्ट - पत्रेषु सम्पूज्य, गन्धाक्षत - प्रसूनकैः ॥११

अपनी शक्ति हो या पर-शक्ति हो, स्नान की हुई, नगना जिसके केश खुले हुए हों, माला आदि अलङ्कारों से विभूषिता, हाथ में सुवर्ण के कङ्कण सुशोभित हो रहे हों, उसे लाकर साधक भी स्वयं नग्न हो । यन्त्र के अष्ट-पत्रों में कराल, विकराल, संहार, रुह, कालाग्नि, महा-काल, सुप्त और उन्मत्त इन आठ भैरवों का गन्ध, अक्षत तथा पुष्पों से पूजन करे ॥९-११

त्रिपुरां भैरवीं तारां, बालां च सुमुखीं प्रिये !

भग-मालां च षट् - कोणे, पूजयेद् गन्ध - पुष्पकैः ॥१२

हे प्रिये ! तब षट्-कोण में त्रिपुरा, भैरवी, तारा, बाला, सुमुखी और भग-माला का गन्ध-पुष्प से पूजन करे ॥१२

षट्-कोणं चैव सम्पूज्य, त्रिकोणं पूजयेद् ततः ।

गङ्गां च यमुनां देवि ! तृतीयां च सरस्वताम् ॥१३

गन्धाक्षत - प्रसूनाद्यैर्धूप - दीपादि - तर्पणैः ।

विन्दौ सम्पूजयेद् देवि ! देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥१४

ईश्वरं चैव कालाग्निं, काम - राजं महेश्वरि !

गन्धाक्षतैश्च सम्पूज्य, तत्र घण्टा - रवं चरेत् ॥१५

हे महेश्वरि ! षट्-कोण का पूजन कर तब त्रिकोण का पूजन करे । उसमें गङ्गा, यमुना, सरस्वती का गन्धाक्षत, पुष्पादि और धूप-दीप, तर्पण से पूजन कर, विन्दु में देवी भुवनेश्वरी, शिव,

कालाग्नि और कामराज का गन्धाक्षत से पूजन कर वहाँ घण्टा बजा कर शब्द करे ॥१३-१५

भूतानुत्सार्य-मन्त्रेण, निबध्याशा स्व-मूलतः ।

शक्तिं देवी-मयीं ध्यात्वा, स्वयं शिव-मयं स्मरेत् ॥१६

मन्त्र द्वारा भूतोत्सारण कर (देखे पञ्चम से षष्ठ पटल) मूल-मन्त्र द्वारा दिग्-बन्धन कर शक्ति को देवी-मयी और अपने को शिव-मय ध्यान करे ॥१६

यन्त्रे शक्तिं निवेश्यादौ, तद्-दक्षिण-करात् तले ।

उपविश्य स्वयं चैव, पूजां कुर्याद् यथा-विधि ।

मूल - मन्त्रेण देवेशीं, गन्धाक्षत - प्रसूनकैः ॥१७

पहले शक्ति को यन्त्र पर बैठाकर, उस शक्ति के दाहिने हाथ के निम्न भाग में स्वयं बैठे और देवी श्रीभुवनेश्वरी के मूल-मन्त्र से गन्धाक्षत-पुष्पों द्वारा पूजन करे ॥१७

हल्लेखा मस्तके पूज्या, कराली कुन्तले तथा ।

ललाटे विकराली च, भ्रुवोश्चोमा प्रकीर्तिता ॥१८

नेत्रयोः कर्णयोश्चैव, श्रीः पूज्या परमेश्वरि !

देवि ! दुर्गा नासिकायां, पूषा च गण्डयोस्तथा ॥१९

मुखे लक्ष्मीः कण्ठ-देशे, श्रुतिश्च स्कन्धयोः स्मृतिः ।

धृतिश्च हस्तयोर्देवि ! श्रद्धा वक्षसि संस्मृता ॥२०

कुचयोः संस्मृता मेधा, मतिः कुक्षौ महेश्वरि !

कान्तिश्च पार्श्वयोर्देवि ! पूज्याऽऽर्या पृष्ठ-देशके ॥२१

नाभावनङ्ग - रूपा च, योनौ भुवन-पालिका ।

अनङ्ग - मदना देवि ! सम्पूज्या गुह्य-देशके ॥२३

उर्वोर्भुवन - वेगा च, जान्वोश्चानङ्ग - वेदना ।

जङ्घयोः सर्व-शिशिरा, सम्पूज्याः पादयोस्तथा ॥२३

अनङ्ग-मेखला देवि ! साधकैः मन्त्र-सिद्धये ।

पादादि - मूर्ध - पर्यन्ते, गात्रे श्रीभुवनेश्वरी ॥२४

पूजनीया महा - देवि ! गन्धाक्षत - प्रसूनकैः ।

विविधैः कुसुमैर्देवि ! भक्ष्यैर्भोग्यैर्विशेषतः ॥२५

मस्तक में 'हल्लेखा', केशों में 'कराली', ललाट में 'विकराली', भ्रू-युगल में 'उमा', नेत्रों तथा कानों में 'श्री', नासिका में 'दुर्गा',

गालों में 'पूषा', मुख में 'लक्ष्मी', कण्ठ में 'श्रुति', कन्धों में 'स्मृति', हाथों में 'वृति', वक्ष में 'श्रद्धा', कुचों में 'मेघा', उदर में 'मति', दोनों वगल में 'कान्ति', पीठ में 'आर्या', नाभि में 'अनङ्ग-रूपा', योनि में 'भुवन-पालिका', गुह्य-देश में 'अनङ्ग-मदना', दोनों ऊरु में 'भुवन-वेगा', जानु-द्वय में 'अनङ्ग-वेदना', जाँघों में 'सर्व-शिशिरा', चरण-युगल में 'अनङ्ग-मेखला' और चरण से मस्तक पर्यन्त सम्पूर्ण गात्र में 'भुवनेश्वरी' का पूजन अपनी मन्त्र-सिद्धि के लिए शक्ति के शरीर में गन्ध, अक्षत और विविध पुष्पों द्वारा करना चाहिए ॥१८-२५

द्रव्येण विविधाहारैः, शक्तिं सन्तर्प्य पार्वति !

भगं सम्पूज्य लिंगेन, लिंगं सम्पूजयेत् तथा ॥२६

हे देवि पार्वति ! शक्ति को विशेषतया भक्ष्य, भोज्य द्रव्यों तथा विविध प्रकार के भोजन से तृप्त कर भग का पूजन लिंग से और लिंग का पूजन भग से करे ॥२६

आत्मानं शिव-रूपं तां, शक्तिं देवी-स्वरूपिणीम् ।

विभावयेन्महेशानि ! साधकः सर्व - सिद्धये ॥२७

हे महेशानि ! साधक सम्पूर्ण सिद्धियों के लाभ के लिए अपने को शिव-रूप और उस शक्ति को देवी-स्वरूपिणी समझे ॥२७

रेतसा वै जपेन्मूलं, यथा - शक्त्या महेश्वरि !

रेतसा तर्पयेद्धीमान्, देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् ॥२८

सम्पूज्य विविधैः पुष्पैः, प्रणमेद् योनि-मुद्रया ।

विसर्जयेच्च तां शक्तिं, नत्वा संहार - मुद्रया ॥२९

हे महेश्वरि ! अपनी शक्ति के अनुसार रेतस से मूल-मन्त्र को जपे तथा बुद्धिमान रेतस से देवी भुवनेश्वरी को तृप्त करे । पुनः अनेक प्रकार के पुष्पों से पूजन कर योनि-मुद्रा से प्रणाम करे और संहार-मुद्रा से प्रणाम कर उस शक्ति का विसर्जन करे ॥२८-२९

इत्येष पटलो देवि ! शक्ति - पूजा - प्रकाशकः ।

अदातव्योऽप्यभक्ताय, गोपनीयः स्व-योनि-वत् ॥३०

हे देवि ! शक्ति-पूजा-प्रकाशक यह पटल अभक्तों के लिए अदेय और अपनी योनि की तरह गोपनीय है ॥३०

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये शक्ति-पूजा-विधिर्नाम एक-विंशः पटलः ॥

द्वा-विंशः पटलः

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि, कुमारीणां च पूजनम् ।

यं विधाय कलौ मन्त्री, सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥१॥

भैरव जी बोले—हे पार्वति ! अब कुमारी-पूजन की विधि कहता हूँ, तुम सुनो, जिसे करके साधक कलि-युग में सम्पूर्ण सिद्धियों का स्वामी होता है ॥१॥

मन्त्री स्नात्वाऽथ-शुद्धात्मा, कृत्वा देवि ! क्रमार्चनम् ।

कुर्यान्नव - कुमारीणां, पूजामाश्विन - मासके ॥२॥

साधक स्नान करके पहले भूतोत्सारण आदि करके पञ्च-भूतात्मक शरीर की शुद्धि कर अपने शरीर को आराधना-योग्य बना कर भुवनेश्वरी भगवती की नित्य-पूजा सम्पादन करके आश्विन मास की नवरात्रि के समय नौ कुमारियों का पूजन करे ॥२॥

प्रतिपद-दिवसे मन्त्री, कुमारीं सु-मनोहराम् ।

अभ्यङ्ग-स्नान-शुद्धां तां, पूजा-संस्थानमानयेत् ॥३॥

प्रतिपदा-तिथि के दिन साधक तैलाभ्यङ्ग तथा स्नान से पवित्र मनोहराङ्गी कुमारी को पूजा-स्थल में लाए ॥३॥

देवता - सन्निधौ वालामुपवेश्य समर्चयेत् ।

गन्ध - पुष्पाक्षतैर्धूप - दीपैश्च कदली - फलेः ॥४॥

श्रीभुवनेश्वरी के सामने बैठा कर उस कुमारी का गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप-दीप और केला आदि फलों से अर्चन करे ॥४॥

भक्ष्य-भोज्यान्न-पानाद्यैः, क्षीराज्य-मधु-मांसकैः ।

कदली - नारिकेलादि - फलेस्तां परितोषयेत् ॥५॥

भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान आदि तथा दूध, घृत, मधु, मांस, केला, नारिकेल आदि फलों से उसे सन्तुष्ट करे ॥५॥

स-शक्तिकः स्वयं देवि ! यौवनोल्लास-संयुतः ।

यथा-शक्ति जपेदेकोत्तर - वृद्ध्याऽथवा मनुम् ॥६॥

हे देवि ! अपनी शक्ति अर्थात् पत्नी के साथ साधक उत्साह-पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार एक-एक क्रम से माला की संख्या में वृद्धि करते हुए मूल-मन्त्र का जप करे ॥६॥

बालामलंकृतां पश्यन्, चिन्तयेत् स्वेष्ट-देवताम् ।

ततस्तां देवता - बुद्ध्या, नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥७

अलङ्कारों से सुशोभित कुमारी को देखते हुए अपनी इष्ट-देवी का ध्यान करे । उसके बाद उस कन्या को देवी समझते हुए प्रणाम करके विदा करे ॥७

द्वितीयायां द्वि - वर्षान्तामेक - वर्षा च पूजयेत् ।

एवं विधिना कुमारीं, यजेत् पूर्व-दिनेऽचिताम् ॥८

इसी प्रकार द्वितीया तिथि में दो वर्ष की कन्या अथवा पूर्व-दिन में पूजिता एक वर्ष की भी कुमारी का उक्त क्रम से पूजन - विसर्जन आदि करे ॥८

नवम्यामेक - वर्षादि-नव - वर्षान्त - कन्यकाः ।

बाला शुद्धा लक्षिता च, मालिनी च वसुन्धरा ॥९

सरस्वती रमा गौरी, दुर्गा च नव कीर्तिताः ।

त्रि-ताराद्यैर्नमोऽन्तैश्च, देवता - पद - पश्चिमैः ॥१०

नामाभिः स-चतुर्थ्यन्तैः, पूजयेत् तां पृथक्-पृथक् ।

बटुकं पञ्च - वर्षं च, नव - वर्षं गणेश्वरम् ॥११

गन्ध-पुष्पाम्बराकल्पैर्यथा - विभवं - विस्तरम् ।

अभ्यर्च्य देवता - बुद्ध्या, पदार्थैः परितोषयेत् ॥१२

इसी क्रम से (तृतीया में ३ वर्ष की, चतुर्थी में ४ वर्ष की, पञ्चमी में ५ वर्ष की, षष्ठी में ६ वर्ष की, सप्तमी में सात वर्ष की, अष्टमी में ८ वर्ष की और नवमी में ९ वर्ष की) एक वर्ष से लेकर नौ वर्ष तक की कन्याओं का उक्त नियम से पूजन करे । नौ कुमारियों के नाम हैं—

१ बाला, २ शुद्धा, ३ लक्षिता, ४ मालिनी, ५ वसुन्धरा, ६ सरस्वती, ७ रमा, ८ गौरी और ९ दुर्गा । इन नामों के आदि में तीन प्रणव (ॐ ॐ ॐ), अन्त में 'नमः', उसके पूर्व 'देवता' पद तथा नाम को चतुर्थी-युक्त करके पृथक्-पृथक् प्रत्येक का पूजन करे । यथा—
ॐ ॐ ॐ बालायै नमः । तब ५ वर्ष के 'बटुक' और ९ वर्ष के 'गण-पति' का वस्त्र, गन्ध आदि सामग्रियों से अपनी सम्पत्ति के अनुसार गन्ध, पुष्प, वस्त्रादि से पूजन कर, उन्हें देवता जानकर पदार्थों से सन्तुष्ट करे ॥९-१२

स्व-कार्य-फल-सिद्धयर्थं, वित्त-शाठ्य-विवाजितः।

नवरात्रं जपेदेकोत्तर - वृद्धि - क्रमेण च ॥१३

हे देवि ! अपने कार्य की सिद्धि हेतु वित्त-शाठ्य (कञ्जूसी) से रहित होकर एक-एक दिन की वृद्धि-क्रम से जप-संख्या को नवरात्र में बढ़ाता जाय ॥१३

नवरात्रि - कृतां पूजां, देवि ! देव्यै समर्पयेत्।

ताम्बूलं दक्षिणां दत्त्वा, कुमारीं तां विसर्जयेत् ॥१४

इस प्रकार नवरात्र में की गई पूजा को देवी के प्रति अर्पित करे। तब ताम्बूल और दक्षिणा देकर पूजित कुमारी या कुमारियों को विदा करे ॥१४

एवं नव - कुमारीणामर्चनं प्रति - वत्सरम्।

यः करोति सु-पुण्यात्मा, देवता - प्रीतिमाप्नुयात्।

मनोऽभिलषितं प्राप्य, निवसेत् तव सन्निधौ ॥१५

हे देवि ! इस प्रकार ९ कुमारियों का पूजन जो पुण्यात्मा प्रति-वर्ष करता है, वह देवता की प्रसन्नता को प्राप्त करता है और इस लोक में अपने अभीष्ट पदार्थों को पाकर अन्त में तुम्हारे समीप निवास करता है ॥१५

इत्येष पटलो देवि ! कुमारी - पूजनात्मकः।

गोपनीयः प्रयत्नेन, मन्त्र - सिद्धि - करो मतः ॥१६

हे देवि ! यह कुमारी-पूजनात्मक पटल मन्त्र - सिद्धि देनेवाला है और यत्न-पूर्वक गोपनीय है ॥१६

॥ श्रीभुवनेश्वरी-रहस्ये कुमारी-बटुक - पूजा - विधिर्नाम

द्वा-विंशः पटलः ॥



परिशिष्ट

प्रस्तुत 'श्री भुवनेश्वरी-रहस्य' में 'शक्ति - पूजा' के सन्दर्भ में जो विधान बताया गया है, उसका वास्तविक रहस्य शाक्त - साधना के मर्मज्ञ साधकों द्वारा सत्सङ्ग में बताया जाता है। मद्य-मांसादि पञ्च-तत्त्वों से पञ्च - महा - भूतों की शक्ति का अनुभव होता है, यह विज्ञ साधक जानते हैं। क्रमशः अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु और आकाश—इन्हीं पञ्च-महा-भूतों की पारमाणविक ऊर्जा को उक्त पञ्च-मकारों से ग्रहण करने का विलक्षण विधान शाक्त-साधना में निर्दिष्ट हुआ है।

'श्रीभुवनेश्वरी-रहस्य' में वर्णित शक्ति-पूजा-विधान का स्थूलार्थ लेने से कोई भी पथ-भ्रष्ट हो सकता है। इसी से उसका अनुवाद हिन्दी में न करके पाठकों को उसे गुरुदेव से समझने का परामर्श दिया गया है। 'शक्ति-पूजा या पञ्चम-विधान' का वास्तविक स्वरूप संक्षेप में निम्न प्रकार है—

दिन की नाड़ी 'पिङ्गला' है और रात्रि की 'इडा'। अतएव 'इडा' नाड़ी के प्रवाह में षट्-चक्रात्मक सम्पूर्ण शरीर को शुद्ध करे। अर्चना-स्थली (पूजन करने की भूमि) अर्थात् आम्नाय के अनुसार जो मन्त्र जिस स्थान पर जपना है, वहाँ बैठ कर प्राणायाम-पूर्वक 'सुषुम्णा' में 'मूल शक्ति' हल्लेखा (ह्रीं) का ध्यान-पूजन-जपादि करे।

इस 'शक्ति - पूजा'-तत्त्व को बतानेवाले 'ऋषि' सदा - शिव हैं। 'छन्द' पंक्ति है। 'देवता' श्रीभुवनेश्वरी हल्लेखा हैं। 'बीज' वाग्भव (ऐं) है। 'शक्ति' शक्ति-बीज (सौः) है। 'कीलक' काम-बीज (क्लीं) है और 'विनियोग' चतुर्वर्ग की प्राप्ति है।

'बीज' से देवता का आविर्भाव होता है, 'शक्ति' से ओजस्विता आती है और 'कीलक' से स्तम्भन अर्थात् साधना-सिद्धि को स्थिरता मिलती है। इस सारी क्रिया से चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः इसी प्रकार की मानसिक भावना के साथ 'विनियोग'-पाठ करे।

इसके बाद साधक 'स्वाधिष्ठान'-रूपी आसन को शुद्ध कर, 'भूत-शुद्धि' द्वारा पञ्च-भूतात्मक देह को शुद्ध करे। तब पुनः प्राणायाम

कर अपनी देह को शिव-स्वरूप बनाने के लिए 'शिव - न्यास' और सारी देह में शक्ति का सञ्चार करने के लिए 'मातृहा-न्यास' करे। फिर स्व-देह को विश्व-रूप समझकर षोढा - न्यास करे। तदनन्तर बिन्दु, त्रिकोण, षट्-कोण, वृत्त, नाग-दल आदि जैसा श्रीयन्त्र निर्दिष्ट हो, वैसी ही भावना सम्पूर्ण शरीर में करे।

अब बीजाक्षर की शक्ति या अर्ध-मात्रात्मिका परा-शक्ति से मूल-विक्षेप के आवरण को दूर कर, आरोह - अवरोह क्रम की माला से 'स्वर्ण-कङ्कण' अर्थात् मन्त्रों के प्रकाश से सुशोभित कर, उसे पवित्र कर, साधक ध्यान द्वारा स्वयं 'नग्न' हो अर्थात् प्रकृति के आवरणों को हटाए। कराल, विकराल आदि जिन आठ शक्तियों का विकास अष्ट-दल में होता है, उन्हीं पर ध्यान लगाकर मानसोपचार से पूजन कर, षट् - कोण में त्रिपुरा, भैरवी, तारा, बाला, सुमुखी, भग-माला का पूजन कर, बीच के त्रिकोण में गङ्गा, यमुना, सरस्वती का पूजन करे। पुनः मूल-बिन्दु में भगवती भुवनेश्वरी का पूजन करे। वहीं पर ईश्वर, कालाग्नि, काम-राज का पूजन कर अनाहत शब्द का अनु-सन्धान करते हुए ध्यान करे। पुनः इस शरीर में पञ्च-भूत-जन्य जो पाप हैं, उन्हें मन्त्रों से हट कर 'मूल-बन्ध' करे।

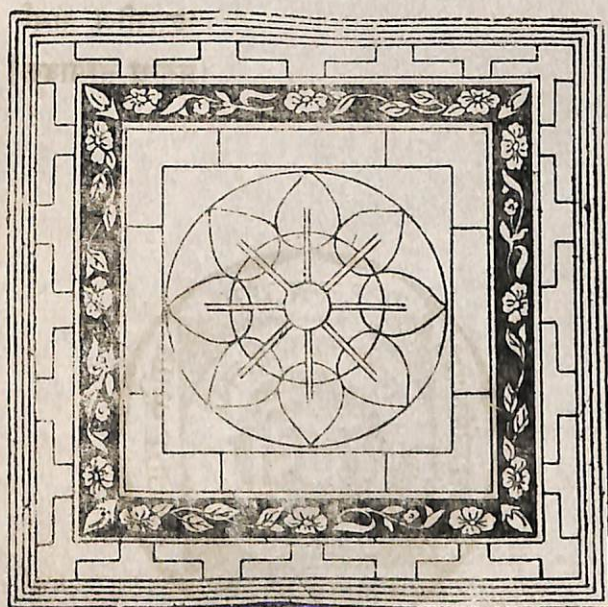
तब दिव्य-शक्ति भुवनेश्वरी का ध्यान कर 'शिवोऽहं' भावना करता हुआ उस शक्ति की मन्त्राक्षर-(ह्रौं)-मयी मूर्ति का ध्यान कर, 'कुल-कुण्डलिनी' का ऐसा ध्यान करे कि मैं उस शक्ति के दाहिनी ओर बैठा हूँ और इस प्रकार 'परा-शक्ति' महा-कुण्डलिनी का पूजन करे। पुनः मूल-मन्त्र से कुण्डलिनी-शक्ति के ऊपरी भाग में हृल्लेखा, केश-स्थान में कराली, ललाट में विकराली, भ्रूमध्य में सरस्वती, नेत्र तथा कर्ण में लक्ष्मी, नासिका में दुर्गा, गण्ड-स्थल में पूषा, मुख में लक्ष्मी, कण्ठ-देश में वेद, स्कन्धों में स्मृति, हाथों में धृति, वक्ष-स्थल में श्रद्धा, कुचों में मेधा, कुक्षि में मति, दोनों पार्श्व में कान्ति, पृष्ठ में आर्या, नाभि में अनङ्ग-रूपा, योनि में भुवन - पालिका, गुह्य - देश में अनङ्ग - मदना, ऊरु में भुवन - वेगा, जानु में अनङ्ग - वेदना शक्तियों द्वारा कुण्डलिनी-शक्ति को मूर्ति - मती ध्यान कर, पूर्वोक्त अङ्गों में तत्स्थानीय देवियों का पूजन करे और पैर में अनङ्ग-मेखला तथा पर

से शिर तक समग्र शरीर में देवी भुवनेश्वरी का ध्यान करके पूजन करे ।

अनन्तर त्रिकोण-मूल में जो आदि-शिव-लिङ्ग है, उसका पूजन करे । अपने को शिव-स्वरूप और देवी को कुण्डलिनी-शक्ति ध्यान कर ब्रह्म-रन्ध्र से अमृत-रूपी 'रेतस' का क्षरण करता हुआ मूल - मन्त्र का यथा-शक्ति जप करे । उसी अमृत-रूप 'रेतस' से देवी भुवनेश्वरी का तर्पण करे ।

अन्त में योनि-मुद्रा से प्रणाम कर, अवरोह - क्रम से संहार - मुद्रा द्वारा विसर्जन कर दे ।

यहाँ अति संक्षेप में 'शक्ति-पूजा' का तात्त्विक रहस्य बताया गया है । स्पष्ट है कि यह विषय अनुभूति-गम्य है और उच्च कोटि के हों साधक इसे हृदयङ्गम कर सकते हैं ।



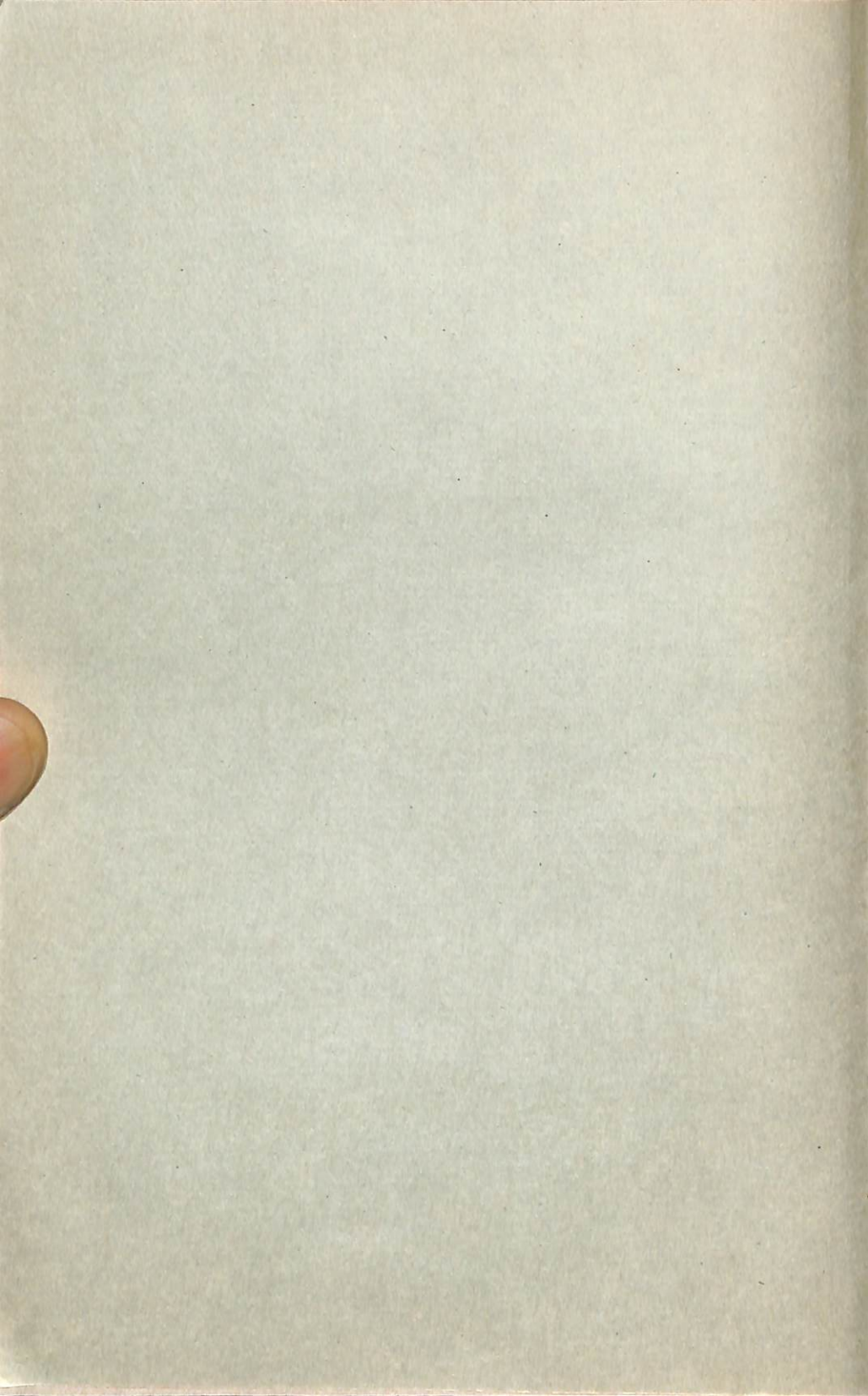
निवेदन

‘चण्डी’ मासिक पत्रिका द्वारा चुने हुए विषयों पर शोध-पूर्ण विशेषाङ्क पिछले कुछ वर्षों से प्रकाशित किए जा रहे हैं। इससे शाक्त-धर्म-सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन-कार्य नित्य वृद्धि की ओर अग्रसर हो रहा है।

आपसे निवेदन है कि ‘चण्डी’ मासिक पत्रिका एवं ‘विशेषाङ्क’-योजना के सदस्य बनकर इस महान् कार्य में हमें अपना सहयोग प्रदान करें व पुण्य के भागी बनें।

ऋतशील शर्मा
(प्रबन्ध सम्पादक)







महा-विद्या
भगवती भुवनेश्वरी

सूर्य, चन्द्र और अग्नि
जिनके
नेत्र-स्वरूप हैं,
पुस्तक और जप-माला
लिए
सिंहासन-विराजिता हैं,
उन परम तत्त्व-विद्या भ० भुवनेश्वरी
को स्मरण कर
मैं उनकी उपासना करता हूँ ।
इस तत्त्व-विद्या
में
न कोई विघ्न है
और
न कोई दोष है ।
इस विद्या से श्रेष्ठ विद्या
पृथ्वी में नहीं है ।
यह तत्त्व विद्या
कलि-युग में प्रभाव देनेवाली है ।





महा-विद्या भगवती भुवनेश्वरी

यह विद्या सभी सुखों को देनेवाली,
संसार में सौभाग्य-दात्री है ।

इस विद्या के स्मरण-मात्र से
अष्ट-सिद्धियाँ कर-गत हो जाती हैं,
अभागा भाग्य-वान् हो जाता है,
दुःख में पड़ा हुआ सुखी हो जाता है,
वन्ध्या वंश बढ़ानेवाला पुत्र पाती है,
निर्धन धन पाता है,
मूर्ख भी अच्छी विद्या प्राप्त करता है,



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

कल्याण भनि
प्रमाण-६